8

बृहत्सप्तपदी

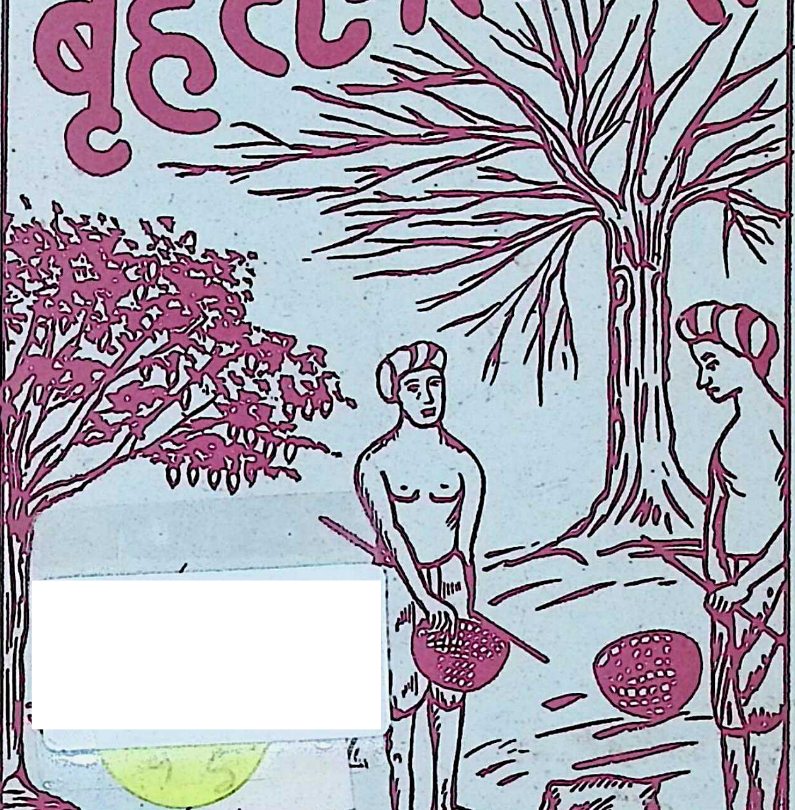

दुर्गादत्त शास्त्री

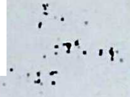

Officer on Special Duty
Kendriya Sanskrit Vid[illegible]
Sringeri (Ka[illegible])

(25)

Forwarded, free of cost with the compliments of Rashtriya Sanskrit Sansthan New Delhi

2/11/3

658

बृहत्सप्तपदी

सप्तमौलिककथालङ्कृतमभिनवम्

संस्कृतगद्यकाव्यम्

(हिन्दी-अनुवादयुतम्)

RGCSLIB
21113

प्रणेता :

दुर्गादत्त शास्त्री, विद्यालङ्कार, साहित्यरत्न

प्राप्तिकर्ता :

* राष्ट्रीय पुरस्कार,
* महाकवि श्री वाणभट्ट पुरस्कार,
* सम्मान प्रमाणपत्र (महामहिम राष्ट्रपति, भारतवर्ष)

Central Sanskrit University
CENTRAL LIBRARY
Rajiv Gandhi Campus
21112

नलेटी, तहसील-देहरा, जिला-कांगड़ा (हि० प्रदेश)

पिन—177 104

प्रथम संस्करणम् : ७००

मूल्यम् ६० रुपये
(साठ रुपये)

सर्वेऽधिकाराः प्रणेतुर् हस्तयोः

"प्रकाशक तथा पुस्तक प्राप्ति स्थान"

दुर्गादत्त शास्त्री
ग्राम एवं डाकघर—नलेटी (177 104)
द्वारा : नैहरनपुखर
तहसील : देहरा, जिला : कांगड़ा (हि॰प्रदेश)
"भारत"

मुद्रक :
गुलाब प्रिंटिंग प्रेस,
कच्चा बाजार, अम्बाला छावनी (हरियाणा)
दूरभाष : 20473

प्राक्कथनम्

समय के दर्पण में जब हम आज देश को देखते हैं तो 1947 के पूर्ववती और परवर्ती भारत में आकाश-पाताल का अन्तर दिखाई देता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के अनन्तर भारत में रामराज्य की जो मधुर धारणाएं हमने हृदय में संजो रखी थीं वह कल्पनासागर के बीचि-जाल में ही फंस कर अदृश्य हो गईं। भौतिक क्षेत्र में भारत ने जितनी उन्नति की है, आध्यात्मिक क्षेत्र में वह उस से कहीं अधिक अवनत होता गया है। संयम को कामुकता ने, परार्थ को स्वार्थ ने, त्याग को लोभ ने, ज्ञान को दम्भ ने, विनम्रता को अस्मिता ने, आस्तिकता को नास्तिकता ने, सज्जनता को दुर्जनता ने, राष्ट्रीय एकता को वर्गभेद ने, सेवाभाव को फलैषणा ने उसी प्रकार जकड़ लिया है जैसे सांप मेंढक को दबोच लेता है। वोटभिक्षु स्वार्थी राजा-महाराजाओं की तृष्णा ने देश की अर्थव्यवस्था को इतना खोखला बना दिया है कि उस में छानणी के समान सौ छेद पड़े दिखाई देते हैं और राष्ट्र भिक्षुक की पंक्ति में खड़ा जैसे दिखाई देता है।

वेश्यावृत्ति आज चरम शिखर पर है जो कि भारत की धवल कीर्ति पर एक काला धब्बा है परन्तु हमारे महाराजाधिराज प्रगाढ़ निद्रा में प्रसुप्त है। दहेज के लोभी आज भी युवतियों को जलाते हैं। हिन्दु जाति की रीढ़ की हड्डी पर प्रहार करने वाली अस्पृश्यता आज भी पर्दे के पीछे सजीव है जो देर-सबेर में एक बार फिर राष्ट्र की एकता और अखण्डता को चोट पहुंचाएगी ही। अकाल में ही कालग्रस्त युवाओं की विधवाओं के करुण क्रन्दन पर समाज दो आंसू बहाने के लिये तैयार न है। श्री राम-भरत के आदर्श को ठुकरा कर एक ही माता की कोख से जन्म लेने वाले भाई-भाई सम्पदाओं की कलह में आज न्यायालय के कटघरे में खड़े हैं। बुद्ध और गांधी के नाम का जाप करने वाले महानुभाव घड़ों भर शराब पीकर और मनों भर मांस खा कर उन की समाधियों पर फूल चढ़ाने जाते हैं। क्या यही भारत की प्राचीन

संस्कृति एवं सभ्यता है जिस के आधार पर भारत को संसार का गुरु माना जाता था ? क्या भारत फिर उसी सिंहासन पर विराजमान हो सकेगा ? यह विचार श्रृङ्खला ही इस कथाकाव्य की जननी है।

संस्कृत भाषा जो कि संसार भर में सब से समृद्ध भाषा मानी जाती है और जिसकी भावाभिव्यक्तिक्षमता के आगे संसार की कोई भी भाषा टिक न सकती है, मेरे विचार में यदि यह आज तक जन सामान्य से जुड़ न पाई है तो यह त्रुटि संस्कृत साधकों की है जो इस भाषा का युग अथवा युगधर्म से सम्बन्ध बनाने में जागरूक न रहे हैं। क्या संस्कृत के विद्वान् इस समृद्ध सम्पदा की सुगन्ध को घर अथवा पुस्तकालयों की परिधि में ही बन्द रखना चाहते हैं या जन सामान्य को उपकृत करने के लिये उन्मुक्त मस्तिष्क से इस का वितरण करना चाहेंगे ? इस भावना को ले कर ही मैंने इस कथाकाव्य की रचना की है। मुझे पूर्ण आशा है कि संस्कृत के विद्वान् इस काव्य के प्रचार-प्रसार में सहयोग देकर कृतार्थ करेंगे।

इस काव्य को सुचारु रूप देने में म० महोपाध्याय डॉ० शशिधर शर्मा, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग पत्राचार पाठ्यक्रम, पंजाब विश्वविद्यालय ने जो मुझे सुझाव दिये हैं उस के लिये मैं उन का हृदय से आभारी हूं।

गुलाब प्रिंटिंग प्रैस के अधिपति ठा० अमर सिंह का भी मैं कृतज्ञ हूं जिन्होंने बड़ी लग्न और तत्परता से थोड़े ही समय में पुस्तक का मुद्रण कर के मुझे उपकृत किया है। वह एक सत्यनिष्ठ और स्पष्टवक्ता व्यक्ति हैं।

विदुषां विधेयः

श्रावण सङ्क्रान्ति २०४६ — दुर्गादत्त शास्त्री

(15 जुलाई, 1991)

Punjab University

Mahamahopadhyya, Mahakavi,
Dr. Prof. Shashidhar Sharma, DLIT.
Recipient Certificate of Honour

श्री साहित्यसुधासदनम् ई०-28, सैक्टर 14
चण्डीगढ़ ।

"सम्मतिः"

हिमाचलप्रदेशान्तर्गते काङ्गडेति सम्प्रति विश्रुते प्राचीनतमे त्रिगर्तप्रदेशे लब्धजन्मना श्रीमता दुर्गादत्त-शास्त्रिणा सन्दृब्धां 'बृहत्सप्तपदी' तिसंज्ञितां कृतिमालोक्य परमां मुदमुद्वहामि । गद्ये पद्ये च पूर्वमनेकाः कृतीः कृतवतोऽप्यस्य कृतिवशस्य लेखनी कथासाहित्येऽपि किमप्यवदाततरमवदानमविधाय तृप्तिमनश्नुवानैवाभूत् । अत एवास्याः कृत्ते रचनाऽजायत ।

संस्कृतेऽभिनवग्रन्थनिर्माणं दुष्करतमं कार्यम् । शास्त्री महोदयस्तु प्रवया अप्यश्रान्तोऽद्यापि यत् सुरसरस्वती-मविश्रान्ततया सेवमानः, तेन महानेव कश्चानन्दः सञ्जायते सम्पश्यताम् ।

बृहत्सप्तपद्याः कथानामेष विशेषो यत् सामयिकान् सन्दर्भानिमा आधारीकुर्वन्ति कृत्स्नतया । तेन चर्वितचर्वणस्य या प्रवृत्तिः सांस्कृतानां विदुषां प्रश्रुता, तस्याः सकाशादस्या भेदः स्पष्टः । कङ्कणबन्धनम्, मस्त-करुधिरमित्याख्ययोः कथयोः क्रमशो दैवदुर्विपाकाल्लब्धवैधव्याया इन्दुबालाया उद्वाहस्य, हरिजनभीखुरामस्याऽनादरफलतया भगवन्मस्तका-द्रुधिराविर्भावस्य च वर्णनं लेखकस्य काव्यविचारसीमाप्रसारं निदर्श-यति । भारतीयापरम्परा, शास्त्राणि चैतन्न समर्थयन्ते । तथापि श्री शास्त्रिमहोदयेन तन्निबन्धनं तस्य साहसिकतां प्रदर्शयतितराम् । विधवानां हीनानां दीनानाञ्चोपेक्षा सत्यं क्षपयति समाजमेव किन्तु लेखैः प्रवचनैः कथोपकथाभिश्च न सम्भवति समस्यानामीदृशीनां समाधा-नम् । अहर्निशमीदृशविचारान् प्रचारयन्तोऽपि न व्यवहारेऽवतारयन्ति तान् विचारान् । हरिजनदुहितरं विधवाञ्च काञ्चित् स्वपुत्रार्थे समानयन् न कश्चनाऽवलोकितः । सत्प्रवृत्तेस्तु गृहा एवारम्भभूमिः । शास्त्रिमहोदय-सदृशा विद्वांस एतदवधास्यन्ति । शास्त्रिमहोदयस्य चिरजीवनं कामयेऽहम् ।

सुधियां वशम्वदः
शशिधरः

26 जुलाई, 1991

डॉ॰ रमाकान्त आंगिरसः
पूर्वः संस्कृतविभागाध्यक्षः,
पंजाब विश्वविद्यालयः, चण्डीगढ़म् ।

"सम्मतिः"

संस्कृतसाहित्ये 'गद्यं कवीनां निकषम्" इतिवदद्भिर् विद्वद्भिः संस्कृतगद्यलेखनं नातिसुकरमिति प्रकटितमासीत् । कारणानां च तत्र नाभूत् कापि न्यूनता । काव्य-कर्मणि कुशलाः पण्डितकवयः सदैवात्युदात्त-चरितोपासनेन तद्गुणगणनया च रञ्जितान्त.करणवृत्तयश्छन्दोऽनुरोधेन सद्य एव साधारणलोकप्रकृतिकजीवनमुपजीव्य यल्लिखितं तदस्माकं साहित्ये पञ्चतन्त्रहितोपदेशादिगद्यकृतिषु सहजसंस्कृतगद्यवाग्वैभव-रूपेणाद्यापि परिस्फुटम् । यतोहि गद्यमेव साधारणजनजीवतानुभव-प्रापकं वाक्साधनम् । विद्वद्वर्यैः श्री पण्डित दुर्गादत्त शास्त्रिभिः सुर-भारत्युपासनारतैः स्वकीयग्रामजीवनानुभवप्रसूतां लोकदृष्टिमात्मसात्-कृत्वा यत्किमप्यस्मै परितः प्रसृतायर्वाक्कालीनराष्ट्रवासिजनजीवनाय हितकरं सुखकरञ्च भवितुमर्हति तत्सर्वमस्यां बृहत्सप्तपदीति गद्यकृतौ सरलया सुवाचा सुनिबद्धमिति कृत्वा कृतिकाराः श्री दुर्गादत्त शास्त्रि-णोऽस्माभिः अभिनन्दनीयपक्षे वर्तन्ते । इतः परमप्यधिकेन यशसा सभाजिताः सुरभारतीसेवारताः दीर्घायुत्वमवाप्नुयुरिति च काम्यते ।

विदुषां वशम्वदः
रमाकान्तः

15 जुलाई, 1991 (आंगिरसः रमाकान्तः)

विषयानुक्रमणिका

1.	पितुर्नाम	1—29
2.	अश्रुसंयोगः	30—87
3.	कङ्कणबन्धनम्	88—127
4.	मस्तकरुधिरम्	128—149
5.	सुवर्णपादपः	150—179
6.	पुन्नाम नरकः	180—209
7.	सुतशापः	210—229

वृहत्-सप्तपदी

पितुर्नाम

प्राक्तनकाले देवभूमिभारते आसीदेकः पुण्यात्मा धर्मप्रियः, दीनेषु दयोपेतः प्रजादुःखासहिष्णुः, न्यायप्रियः मीनकेतुर्नाम महाराजः। तस्य चन्द्रधवलं यशः सकलदिक्षु प्रासरत् अष्टौ सिद्धयः तद्राज्यं धाराधराः धरणीं यथा सादरम् असेवन्त। विदेशिनः ज्ञानपिपासां शमयितुं मीनकेतुराज्यं सोत्कण्ठं समाययुः। तस्य राज्ञी परमसाध्वी प्रतिव्रता लावण्येऽनुपमा, जनमङ्गलं कामयमाना महाराजवदेव प्रजाचेतसि अवाप्तपदा शुशुभे। तत्पुण्यभूमौ कृषकाः कृषिकर्मणि, शिक्षकाः शिष्यज्ञानवर्धने, वैद्याः पररोगनिवारणे, न्यायविदः निष्पक्षं न्यायकरणे, प्रहरिणः प्रहरककर्मणि, सैनिकाः सीमासंरक्षणे, प्रशासकाः प्रशासनकर्मणि सश्रद्धं संलग्ना अवातिष्ठन्त। महर्षिर् वशिष्ठः यदा कदा तद्राज्ये धृतपदः महाराजस्य प्रजाप्रियतां निरीक्ष्य तत्प्रशंसापरो बभूव।

पञ्चदशवर्षाणां कीर्तिमत्कालेऽतीते सकलगुण-सम्पन्नोऽपि भूपतिः नीचराशिपरिगतवसुभावस्थशनेर्दशायां विलुप्तमतिकः केवलं मन्त्रिषु विनिक्षिप्त राज्यभारः, राज्ञीसौन्दर्यविमुग्धचेताः राज्य-कार्येषु क्षीणमनाः, प्रासादपरिधि-निबद्ध एव समयं निनाय मन्त्रिणोऽपि राज्यमङ्गले तदौदासीन्यं निरीक्षमाणाः श्लथमानसाः प्रजामङ्गलानां स्वल्पं विचिन्तयन्तः स्वार्थसंलिप्तचेतसः दुराचारिदमनाय, अश्वारोही सरलमार्गे तुरगकविकां[1] यथा दण्डविधिं शिथिलयामासुः।

चाराधिगतसमाचाराः तद्राज्यसीमासंलग्नासुर-राज्यनिवासिनः मीनकेतु-महाराजराज्ये विविधापदः जनयितुं भृशं प्रयत्नपराः अतिष्ठन्। सीमासुरक्षा-बलैर् दूरं विद्राविता अपि ते दुरूहपर्वतदुर्गमाधित्यकाभिः[2] पुनः पुनः प्रविश्यात्रत्य-लोकेषु जनितातङ्काः महाराज-राज्यं निर्बलमुपलभ्य आक्रमणचेष्टासंलग्नाः अदृश्यन्त। मीनकेतुप्रचण्डभुजबलधरसैनिकहुङ्कारभीताः तद्राज्यं जेतुमक्षमास्ते छद्मवेषधरासुरान् भारते प्रवेश्य अव्यवस्थां प्रसारयन्तः आनन्दं लेभिरे।

---

1. कविका खलीनः (कविका तु खलीनोऽस्त्री) इत्यमरः।
2. अधित्यका अद्रेरूर्ध्वभूमिः। 'उपत्यकाद्रेरासन्नाभूमिरूर्ध्वमधित्यका (इत्यमरः)

पिता का नाम

पुराने समय में देवभूमि भारत में एक पुण्यात्मा, धर्मात्मा, दयालु, प्रजा के दुःख को न देखने वाला, न्यायप्रिय मीनकेतु नाम का महाराजा था। उसका सफेद यश सब जगह फैला हुआ था। आठों सिद्धियां, उसके राज्य की जैसे बादल धरती की आदर से सेवा करती थीं। विदेशी लोग ज्ञान पाने के लिये उत्कण्ठा से मीनकेतु के राज्य में आते थे। उसकी रानी अच्छे स्वभाववाली, पतिव्रता, सुन्दरी जन-मंगल चाहने वाली महाराजा के समान ही प्रजाप्रिय थी। उस पुण्यभूमि में किसान खेती-बाड़ी में, अध्यापक पढ़ाने में, जज निष्पक्ष न्याय करने में, पहरेदार पहरा देने में, सैनिक सीमाओं की रक्षा करने में, अधिकारी प्रशासन के काम में श्रद्धा के साथ लगे रहते थे।

पंद्रह वर्ष के यशदायक समय के बीत जाने पर सब गुणों से भरपूर राजा, आठवें घर में नीच शनि की दशा में बुद्धिहीन, मंत्रियों पर सारा काम-काज छोड़कर रानी के सौन्दर्य पर मोहित हुआ, राज्य के काम से उदास, महल के अन्दर ही समय बिताने लगा। उस की इस उदासीनता को देखकर मन्त्री लोगों ने भी प्रजा की भलाई का ध्यान छोड़कर स्वार्थ को अपना लिया और दुराचारियों के दमन के लिये दण्डविधि को उसी प्रकार ढीला कर दिया जैसे घुड़सवार साफ सड़क पर घोड़े की लगाम को ढीला छोड़ देता है।

अपने गुप्तचरों से यह समाचार पाकर उसके राज्य की सीमा के साथ लगे असुरराज्य के निवासी, मीनकेतु के राज्य में अनेक प्रकार के उत्पात करने का प्रयास करने लगे। सीमासुरक्षाबल से दूर भगाए हुए भी वह कठिन पहाड़ों की तलहटियों से बार-बार आकर यहां के लोगों में आतङ्क पैदा करके महाराजा के राज्य को निर्बल बनाकर आक्रमण की चेष्टा करने लगे। मीनकेतु के बलवान सैनिकों से डरे हुए वह जब विजय को प्राप्त न कर सके तो कपट वेषधारी लोगों को भारत में भेज कर गड़-बड़ मचाकर आनन्द मनाने लगे।

ईर्ष्यादूषितमानसाः केचिदसुराः भारतयशः कलङ्कयितुं स्वदेशसमानीत-भ्रष्टाङ्गनाभिः देहव्यापार-प्रथां प्रचालयामासुः । शनैः शनैः सङ्क्रामकोऽय रोगः देवानां दुःखाय असुराणां च विनोदाय मीनकेतुराज्येऽपि प्रासरत् । केचिच्चञ्चल-चेतसो युवानः विस्मृतमातृशक्तयः अर्थलिप्सोपेताः असुरैः सम्भूय स्वयमप्यसुर-तामाप्ताः कुकृत्यमिदं सुकृत्यं मन्यमानाः निर्धनाबोधबालिकाः विविधप्रलोभनैः प्रवञ्च्य दुराचारकेन्द्राणि प्रापयन्तः अनङ्गीकुर्वाणाः विविधयातनाभिः प्रपीड-यन्तः एतस्मिन् नरककुण्डे अपातयन् ।

बालाः प्रतारयितुमेव गैरिकवसनधरः, तिलकालङ्कृतभालः, श्वेतश्मश्रुयुतः, दक्षिणाकरे यष्टिं वामे च कमण्डलुं गृह्णानः चंगेजासुरः महाविद्यालयपथगां सार्थभ्रष्टां निधिं निरीक्ष्य "पुत्रि, क्व प्रयासि त्वम् ?" निधिः—"महाविद्यालयं व्रजामि । सहचर्यः अग्रे प्रयाताः, अहमेकला" । चंगेजः —"जीर्णवसना कथम् ?" निधिः—"दरिद्रो मे तातः" । चंगेजः—का श्रेणीं भूषयसि" ? निधिः—स्नातकोपाधेः प्रथमवर्षे भवामि" । चंगेजः "पुत्रि, करं प्रदर्शय । अहं ते भाग्यं वदामि" । (निधिः विस्मृतमहाविद्यालयकाला पाणिं प्रासारयत्) चंगेजः—"हुं पुत्रि, त्वमतिभाग्यशालिनी । इतो नातिदूरे अस्मदाश्रमे बालिकाविद्यालयश्चलति । मामनुयाहि । तत्र ते एकसहस्रमुद्रावेतने अध्यापिकापदं प्रदास्यते । समातृ-पितृका सुखिनी भव ।" चंगेजापहृतनिधिं तत्पितरौ सकलजीवनं विलपन्तौ-अपि पुनरालोकितुं नापारयताम् ।

शिष्टवेषधरः हैदरः आखेटाय बृहत्तरनगरसङ्कीर्णवीथ्यां परिभ्रमन् सूची-कर्मकेन्द्रं प्रयान्तीं शुष्कमुखीं संयोगितामेकलां निरीक्ष्य "पुत्रि, त्वया क्व गम्यते" ? संयोगिता—(तस्य शिष्टवेषे विश्वसन्ती) अहं सूचीकर्मशिक्षणेप्सु-रेतत्केन्द्रं प्रयामि" । हैदरः "क्व ते निवासः" ? संयोगिता—"अत्रैव नगरपूर्व-कोणे" हैदरः—"ऊढाऽनूढा वा" ?[1] संयोगिता—"विवाहिताऽप्यविवाहिता" । हैदरः "तत्कथम्" ? संयोगिता—"यौतुकार्थिश्वशुरकुलप्रताडिता पितृसदने निवसामि", हैदरः "अस्माकमेका असहायमहिलासाहाय्यकरी परिषद् वर्तते । अहमेव तस्याः अध्यक्षः । वयं श्वशुरकुलोपेक्षितमहिलानाम् आजीविकाप्रबन्ध-कराः भवामः । मामनुयाहि मुम्बां प्रति" । हैदरापहृतसंयोगितां तत्पितरौ सकलं वयः प्रतीक्षमाणौ पुनर्द्रष्टुं न त्राभवताम् । संयोगितापहरणसमाचारः सकलनगरे अनल इव प्रासरत् ।

---

1. ऊढा – विवाहिता ।

ईर्ष्या से दूषित मन वाले कुछ असुर लोगों ने भारत के यश को कलङ्कित करने के लिये अपने देश से भ्रष्ट युवतियों को लाकर देहव्यापार की प्रथा प्रारम्भ कर दी। धीरे-धीरे यह संक्रामक रोग देवताओं के दुःख के लिए और और असुरों की प्रसन्नता के लिये मीनकेतु के राज्य में भी फैल गया। कुछ चञ्चल युवा लोग मातृशक्ति की गरिमा को भूल कर धन के लालच में पड़े असुरों से मिल कर स्वयं भी असुर बने हुए इस खोटे काम को अच्छा समझ कर गरीब अनजान लड़कियों को अनेक प्रलोभनों से ठगकर दुराचार केन्द्रों मे ले जाकर स्वीकार न करने वालियों को अनेक पीड़ाएं देकर इस नरक कुण्ड में धकेलने लगे।

लड़कियों को ठगने के लिये ही भगवां वस्त्र पहने हुए, माथे पर तिलक लगाए, सफेद दाढ़ी वाले दाएं हाथ में लाठी और बाएं में कमंडल लिये हुए चंगेज असुर ने कालेज जा रही, साथ से बिछुड़ी निधि को देखकर पूछा 'पुत्री तुम कहां जा रही हो'। निधि—"मैं कालेज जा रही हूं साथ से बिछुड़ गई हूं।' चंगेज—"कपड़े फटे क्यों हैं?" निधि—'मेरा पिता गरीब है।' चंगेज—"किस श्रेणी में पढ़ती हो?" निधि—"बी० ए० के प्रथम वर्ष में"। चंगेज—"पुत्री जरा हाथ दिखाओ, मैं तेरा भाग्य बताऊं"। निधि कालेज का समय भूल गई और हाथ आगे फैला दिया। चंगेज—'अरे पुत्री तू तो बड़ी भाग्यवाली है। यहां निकट ही हमारे आश्रम में लड़कियों का स्कूल चलता है। तुम मेरे साथ चलो। एक हजार रुपये वेतन पर अध्यापक का पद दे देंगे। माता-पिता के साथ सुखी रहो। चंगेज से अपहरण की गई निधि को उसके माता-पिता सारी उम्र विलाप करने हुए भी फिर देख न पाए।

सभ्य भेष धारण किया हुआ शिकार के लिए महानगर की तंग गलियों में घूमता हुआ हैदर सिलाई सैंटर को जाती हुई, सूखे मुखड़े वाली संयोगिता को अकेली देखकर बोला—"पुत्री तुम कहां जा रही हो"। संयोगिता उस के सभ्य भेष पर विश्वास करती हुई "मैं सिलाई केन्द्र को जा रही हूं"। हैदर—"तुम कहां रहती हो"? संयोगिता—"यहीं नगर के पूर्व कोणे में". हैदर—'तुम्हारा विवाह हुआ है या नहीं'? संयोगिता—'हुआ है परन्तु न होने के बराबर'। हैदर—'यह कैसे'? संयोगिता—'दहेज के लोभी सास-ससुर से दुखी यहां पिता के घर में ही रहती हूं'। हैदर—'बेसहारा नारियों की सहायता के लिये हमने एक सभा बनाई है। मैं ही उस का अध्यक्ष हूं। हम ससुर कुल से

सप्ताहमनु अपराखेटगवेषणेप्सुः परिवर्तितवेषः हैदरः कलिकातामायातः सूर्यास्तमनकाले दुग्धकेन्द्रं व्रजन्तीं प्रतिभामेकलां निरीक्ष्य "पुत्रि, त्वं क्व प्रयासि"? प्रतिमा—"अहं कुत्रापि प्रयायाम्। तवैतेन किं प्रयोजनम्। पुंश्चलीपुत्रः, गर्दभः, कुक्कुरः। (संदष्टोष्ठपुटा उपानहमवतार्य) पलायस्वेतः। अहं खल्वाटशीर्षं करिष्यामि। लोकाः! धावत, धावत। अयं गुण्डाकः मामपजिहीर्षति"। कर्णपतितकोलाहलाः लोकाः पलायमानं तमनुधावन्तः प्रस्तराघातैर्निहत्य यमलोकं प्रापयन्। नगरसकलजनाः समुन्नतसाहसाम् अपरबालाप्रस्तुतादर्शां प्रतिभां विविधपारितोषिकैः सभाजयन्तः तत्पितरौ प्रशंसन्तः सुखश्वासं जगृहुः।

नागविहारे परसदनपात्रप्रक्षालनपरभार्याशकुन्तलासहायः, वीथीषु हरितशाकान् विक्रीणानः पञ्चकन्यातातः जावेदः परिवारं कृच्छ्रेणापालयत्। तद्वीथीकोणगता कलङ्कितकाया गविन्द्रा नाम पुंश्चली[1] अबोधबालाः प्रलोभ्य अनाचारिणः प्रापयन्ती धनार्जनपरा दूषितजीवनं निनाय। एकदा सा शकुन्तलाजावेदपरोक्षं तज्ज्येष्ठसुतां सुजातां प्राह—"तव जननी परोच्छिष्टपात्रमार्जनपरा समयं गमयति। किं त्वमपि तामेवानकर्तुकामा? चल, मामनुयाहि। अहं ते क्वचित्कार्यं प्रदापयामि"। सरलस्वभावा सुजाता तत्सदनमाप्ता मद्यगन्धवहं दुराचारिणं निरीक्ष्य तद्गृहीतदुकूलकोणं धक्कया उन्मोच्य व्याघ्रमुखमुक्ता सप्राणमृगी यथा द्रुतं गृहं दधाव। सदनागतशकुन्तला विनिवेदितवृत्तां सुजातां 'त्वं स्वैरिणीसदनं कथं प्रयाते' ति भूरि भूरि प्राताड़यत्। ततस्तद्वीथीमहिलाः तनयानां चिन्तापरा सम्भूय कुलटालयगतास्तां बहिर् निष्कास्य कृष्णमस्यपलेपितवदनां सकलवीथ्यां भ्रामयामासुः। एवं न केवलं गुण्डाकाः अपितु पांसुलाः अपि अबोधाऽसहाययुवतीः प्रतार्य अनाचाराचरणाय प्रेरयामासुः। शतं युवतयः देहव्यापारस्थलकोष्ठकेभ्यः सम्मानसंरक्षणाय कूर्दिताः प्राणान् विससृजुः परं शनिच्छायाप्रसुप्तो महाराजो मीजकेतुर् न मनागपि बुबुधे। ऋतम्भरा भूपतिरिष्टनिवारणेप्सुः शनौ निराहारा तन्मुखं तैले प्रदर्श्य तत् चतुष्पथप्रक्षेपणपराऽतिष्टत्।

एकदैका धनिया नाम वाराङ्गना मनस्यचिन्तयत्—"मम बालः सुनीतः पूरितसप्तहायनः। एनं पाठशालाप्रविष्टं कथं नोपालभेय। परमहमपावना नारी

---

1. पुंश्चली—पुंसोभर्तुः सकाशाच्चलति पुरुषान्तरं गच्छतीति पुंश्चली। 'पुंश्चली चर्षणी बन्धक्यसती कुलटेत्वरी' (इत्यमरः)।

लताड़ी नारियों को नौकरी भी देते हैं। 'तुम मेरे साथ बम्बई चलो'। हैदर से अपहरण की गई संयोगिता को उसके माता-पिता सारी उमर प्रतीक्षा करते हुए भी फिर देख न पाए। उसके अपहरण का समाचार आग की तरह सारे नगर में फैल गया।

एक सप्ताह के बाद दूसरे शिकार की इच्छा से हैदर भेष बदल कर कलकत्ता में आया और सायं दूध के बूथ को अकेली जाती हुई प्रतिभा को देख कर बोला. 'पुत्री, तुम कहां जा रही हो?' प्रतिभा—'मैं कहीं भी जाऊं, तुम्हें इससे क्या प्रयोजन। वेश्यापुत्र, गधा, कुत्ता'। दांतों से होंठ भींच कर और जूती उतार कर 'भाग जा यहां से नहीं तो मैं तेरा सिर गंजा कर दूंगी। लोगो, दौड़ो, दौड़ो। यह गुंडा मेरा अपहरण करना चाहता है।' शोर सुन कर लोग दौड़ पड़े और भागते हुए उस गुंडे को पत्थरों से मार-मार कर यमलोक भेज दिया। नगर के लोगों ने हौंसले वाली, दूसरों को आदर्श दिखाने वाली प्रतिभा को अनेक प्रकार के इनामों से सत्कृत किया। उस के माता-पिता की प्रशंसा की और सुख का सांस लिया।

नागबिहार में गलियों में सब्जी बेचने वाला जावेद दूसरों के घरों में बर्तन मांजने वाली अपनी पत्नी शकुन्तला की सहायता से परिवार को बड़ी कठिनाई से पालता था। उसी गली के कोणे में रहने वाली कलङ्कित शरीर वाली गविन्द्रा नाम की पुंश्चली अनजान लड़कियों को ठग कर दुराचारियों को पहुंचाती हुई धन कमा कर अपना दूषित जीवन बिताती थी। एक बार उसने शकुन्तला और जावेद की अनुपस्थिति में उनकी बड़ी लड़की सुजाता को कहा—'तेरी माता दूसरों के जूठे बर्तन मांज कर समय बिताती है। क्या तूं भी यही कुछ करना चाहती है? मेरे साथ चल। मैं तुझे कहीं काम दिला देती हूं'। सीधे स्वभाव वाली सुजाता जब उस के घर में गई तो शराब के नशे में धुत्त दुराचारी को देख कर उस से पकड़े हुए दुपट्टे को धक्के से छुड़ा कर बाघ के मुख से प्राणों के साथ निकली हुई हिरणी के समान जल्दी घर को भाग गई। घर आई माता शकुन्तला को जब सुजाता ने यह समाचार सुनाया तो उसने 'तूं दुराचारिणी के घर कैसे चली गई'। इस प्रकार अपनी पुत्री को बहुत झिड़का। फिर उस गली में रहने वाली स्त्रियां अपनी पुत्रियों की चिन्ता में पड़ी उस के घर गईं तथा उस के मुंह में काली स्याही पोत कर सारी गली में घुमाया। इस प्रकार केवल गुण्डे ही नहीं बल्कि दुराचारणियां भी भोली-

कथं मुखं दर्शयिष्यामि। किमध्यापकाः प्रवेशमनुमंस्यन्ते ? अपरबालाः एनं पार्श्वगतं सहिष्यन्ते ? चाण्डालाः मां प्रतार्य बलात् कुकृत्ये अपातयन्। अहमेतद्-दूषितदेहं चिरं कथं वक्ष्यामि। कलङ्कितकायभीतं विषमपि न मिलति अन्यथोपभुज्य क्षणेषु विगतासुः स्याम्। दुष्टै। मया सहानीता पुनिया धन्या या देहदूषणात्पूर्वमेव प्राणान् विजहौ[1]। (निःश्वस्य) हा, अहं कथं न मृता। आस्तां तावद्। नाहं स्वयं पाठशालां प्रयास्यामि। महिलासुधारसमितिसदस्यां सरोजिनीं प्रार्थयिष्ये। सा मामुपकरिष्यति।

अपरदिवसे सरोजिनी सुनीतयुता पाठशालामुख्याध्यापकं प्राह— "श्रीमन्तः, बालमिमं प्रवेशयितुकामा समायाताहम्।" मुख्याध्यापकः— "नातिक्रान्तः साम्प्रतं प्रवेशावधिः। सुलभः प्रवेशः। भवती प्रपत्रमिमं पूरयतु। अहं प्रवेशसञ्चिकां समानयामि। (प्रपत्रं प्रदायोत्थितः) एतस्य पितुः किं नाम ?" सरोजिनी—"नाहं विजानामि न चास्य जननी।" मुख्याध्यापकः—"हुं, एतत्किम् ?" सरोजिनी–(तत्कर्णाभ्यर्णगता)"एष वेश्यासुतः।" मुख्याध्यापकः— "पितुर्नाम विना न प्रवेशः सुलभः।" एषः अप्रविष्टः समायातु। वयमेनं पाठयिष्यामः।" सरोजिनी विफलप्रयासा बालं पाठशालायां विहाय गृहमाययौ। प्राथमिकपाठशालाचञ्चलवटवः सरोजिन्युक्तं सम्यङ् निबुध्य अर्धावकाशे 'ते पितुर्नाम किमि'ति मुहुर्मुहुर् भाषमाणाः सुनीतमतुदन्। अधिगतवेश्यासुत-प्रवेशवृत्ताः ग्राम्यजनाः परस्परं प्राहुः "एष महाननर्थः।" मुख्याध्यापकश्चेद् वेश्यात्मजाङ्गीकृतप्रवेशः न वयं स्वबालान् पाठशालां गमयिष्यामः। न वर्ण-सङ्कराः नः बालाः। अपरेऽह्नि पाठशालायां सुनीतवर्जं न कोऽपि वटुः विद्यालय-द्वारघृतपदोऽवालोकि। अध्यापकाः सकलदिवसमवकाशमिव मन्यमानाः अर्धा-ङ्गिन्युपहारीकृतभोजनानि शरदातपे, सम्भूयोपभुज्य वृत्तमिदं गृहिणीकर्णकुहरे पातयितुमुत्काः[2] सायं द्रुतपदं गृहाणि प्रत्यावर्तन्त।

सायं गृहमाप्तो रुदन् धनियासुतः—"अम्ब, मम पितुर्नाम ब्रूहि माम्। पाठशालार्भकाः अतुदन् माम् एतदर्थम्। भण मातर् मे ताताभिधानम्।"। आकर्णितकरुणासंलिप्त-सुनीतवाग्धनिया शतवृश्चिकदष्टा यथा रुदती "हा, मे बालकस्य पितुर्नामानभिज्ञाहम्। धिङ् मां धिङ् मामि'ति भाषमाणा निश्चेतना

---

1. विजहौ—ओहाक् त्यागे।
2. उत्काः—उत्कण्ठिताः।

माली गरीब युवतियों को ठग कर दुराचार के लिये प्रेरणा देने लगी। सैंकड़ों युवतियों ने सम्मान की रक्षा के लिये देह-व्यापार के कोठों से कूद कर अपने प्रारण त्याग दिये परन्तु शनि की छाया में सोए महाराजा मीनकेतु को जरा भी होश न आई। ऋतम्भरा रानी राजा के रिष्ट को दूर करने के लिये शनिवार को निराहार रहती थी और उस के मुंह को तेल में दिखा कर उस तेल को चौराहे में फैंक देती थी।

एक बार एक धनिया नाम की वेश्या मन में सोचने लगी—'मेरा लड़का सुनीत सात वर्ष का हो गया है। इसे पाठशाला में प्रविष्ट क्यों न करवा दूं। पर मैं तो अपवित्र नारी हूं। मुंह कैसे दिखाऊंगी। क्या अध्यापक इसे प्रविष्ट कर लेंगे? दूसरे बच्चे इसे पास बैठाना पसन्द करेंगे। चाण्डालों ने मुझे ठग कर जबरदस्ती इस खोटे काम में डाल दिया। इस दूषित शरीर को कब तक धारण करूंगी। कलंकित देह के डर से मुझे जहर भी न मिलता है नहीं तो खाकर कुछ ही क्षणों में मर जाऊं। दुष्टों द्वारा मेरे साथ लाई गई पुनिया भाग्यशाली थी जिसने शरीर दूषित होने से पहले ही अपने प्राण त्याग दिये। (हौका भर कर) हाय मैं क्यों न मर गई। अच्छा कोई बात नहीं। महिला सुधार समिति की सदस्या सरोजनी को कहूंगी। वह मेरा उपकार करेगी।"

दूसरे दिन सरोजनी सुनीत के साथ पाठशाला जा कर मुख्याध्यापक से कहने लगी 'मैं इस बच्चे को प्रविष्ट करवाने के लिये लाई हूं'। मुख्याध्यापक—'हां अभी प्रवेश की तिथि बीती न है। मैं दाखला रजिस्टर लाता हूं।' फार्म देकर उठता हुआ 'इस के बाप का क्या नाम है? सरोजनी—'यह तो मैं नहीं जानती और न ही इस की मां जानती है'। मुख्याध्यापक—'अच्छा, यह क्या बात'। सरोजनी उस के कान के पास जाकर 'यह वेश्या का लड़का है'। मुख्याध्यापक—'बाप के नाम के बिना तो प्रवेश नहीं मिल सकता। यह बिना प्रवेश के ही आता रहे। हम इसे पढ़ाते रहेंगे'। सरोजनी की बात न मानी गई और वह लड़के को पाठशाला में छोड़ कर घर चली आई। प्राइमरी पाठशाला के चञ्चल बच्चे सरोजनी की बात को भांप गये और आधी छुट्टी के समय 'तेरे बाप का क्या नाम है'। इस प्रकार बार बार पूछते हुए सुनीत को चिढ़ाने लगे। ग्राम के लोगों को जब यह पता लगा तो आपस में कहने लगे—'यह तो बड़ा अनर्थ है। यदि मुख्याध्यापक ने वेश्या के बच्चे को प्रवेश दिया तो हम अपने बच्चों को पाठशाला नहीं भेजेंगे। हमारे बालक क्या कोई वर्णसङ्कर हैं'?

धरायां पपात । अवगतवृत्ताः तामालोकितुमायाताः वासना, वामना, कामना, मञ्जरीप्रभृतिवेश्याः स्वशिशुपितुर्नामाज्ञानाघातमसहमानाः सवक्षःस्थलप्रताडनं क्रन्दन्त्यः विगतचैतन्याः धरणीपतिताः अदृश्यन्त । तासु पञ्चदश स्वसहचरीप्रबोधिताः अपि हृदयस्तम्भनाक्षमाः विगतप्राणाः बभूवुः । मातृविकलताभग्नमानसास्तदर्भकाः सकरुणम् उच्चैः अक्रन्दन् । आकर्णितनभःस्पर्शिकोलाहलाः नगरनिवासिनः परस्परं प्राहुः । एकः "सार्भकवेश्यानां क्रन्दनकोलाहलोऽयम् । रण्डाभिः[1] देशोऽयं दूषितः ।" अपरः "एतासां को दोषः । ये दुष्टचाण्डालाः एताः प्रतार्य एतत्कुकर्मणि अपातयन् ते दण्ड्याः ।" तृतीयः - "ते मृत्युदण्डमर्हन्ति" । चतुर्थः—"ते चतुष्पथे तीव्रदंष्ट्रवृकदभयदकुक्कुराग्रतः निष्करुणं प्रक्षेपणीयाः ।" पञ्चमः—"बान्धवाः, निश्चेतनभूपालराज्यानामियमेव दशा । भवन्तः भगवदाश्रये कालं गमयन्तु ।

एवंविधमातृशक्ति-अवमाननाप्रकुपिता भगवती चण्डी प्रसुप्तात्मानं महाराजमीनकेतुं प्रबोधयितुं महामारीरूपेण प्रकटयांबभूव । लक्षं जनाः शीतला-निगडिता रुग्णशय्या भेजिरे । सर्वत्र हाहाकारः अश्रूयत । विकृतरूपाः सहस्रं जनाः अन्धत्वमुपजग्मुः । चिकित्सापरवैद्याः क्लान्ताः बभूवुः । भीताः प्रजाजनाः कोपवारणाय मातृमन्दिरमुपगताः भगवतीं बद्धाञ्जलि प्रार्थयन्तः हवनयज्ञाद्यकुर्वन् । ततः प्रजाजनकरुणोपेता भगवती चण्डी महाराजपरीक्षार्थं शीतलारूपं सञ्जहार । । परं मीनकेतुर्न बुबुधे । नारीजीवितमांसविक्रयोऽविरामं प्राचलत् ।

ततः षण्मासमनु भगवती प्लेगनाममहामारीरूपे पुनरुद्भूता प्रजां पीडयामास । एवंविधप्रकोपः राज्ये पूर्वं कदापि नावलोक्यत । शवान् श्मशानभूमिं प्रापयितुम् उद्वाहकाः नालभ्यन्त । भार्याःभर्तृभ्यः, स्वसारः भ्रातृभ्यः मातरः आत्मजेभ्यः वक्षःस्थलानि प्रताडयन्त्यः भृशं रुरुदुः । सदनकोणेषु मृतमूषिकान्[2] बहिः प्रक्षिपन्तः लोकाः क्लान्ताः बभूवुः । दीनप्रजोदितकरुणा भगवती चण्डी राज्ञः परीक्षार्थं पुनः भयदरूपं सञ्जहार । परं लङ्कायां प्रसुप्तः कुम्भकर्णः भालविद्धोऽपि यथा मीनकेतुः नारीगरिमाणं न परिचिचाय ।

ततः वर्षपर्यन्तमनावृष्ट्या सस्यशून्यकेदाराः सलिलकणपानाय व्यग्राः व्यतिष्ठन्त । कासारसरितः शुष्कतां प्रययुः । चतुष्पदाः जलाभिलाषिणः

---

1. सूचीमुखी दुराचारा रण्डा पण्डितवादिनी । (पञ्चतन्त्रम्)
2. प्लेग महामारी मूषिकमाध्यमेन पदंप्रसारयति ।

दूसरे दिन सुनीत को छोड़कर कोई बच्चा पाठशाला के द्वार तक भी न आया। आध्यापकों ने सारा दिन अवकाश जैसा बिताया और अपनी पत्नियों से दिये भोजन को सरदी की धूप में इकट्ठा बैठ कर खाया फिर इस समाचार को उन्हें सुनाने के लिये जल्दी ही घरों को लौट गये।

शाम को घर आया धनिया का बेटा सुनीत बोला 'मां, मेरे बाप का क्या नाम है ? पाठशाला के बच्चों ने मुझे इसके लिये बहुत तंग किया'।

मां मेरे बाप का नाम बताओ।'' पुनीत के दया भरे वचन को सुन कर मानों उसे सौ विच्छुओं ने डंस दिया हो, इस प्रकार रोती हुई 'हाय, मैं अपने बच्चे के बाप का नाम नहीं जानती। मुझे धिक्कार है' इस प्रकार कहती हुई मूर्छित हो कर धरती पर गिर गई। यह समाचार पाकर उसे देखने के लिये आई हुई वासना, कामना मंजरी आदि वेश्याएं अपने बच्चों के बाप के नाम के अज्ञान की चोट को न सहती हुई, छाती पीट कर चीखनें लगीं और चेतनाहीन हो कर भूमि पर गिर गईं। उन में पन्द्रह अपनी सहेलियों के समझाने पर भी दिल को न सम्भाल सकीं और प्राण त्याग दिये। माताओं की व्याकुलता से उन के बच्चों का दिल भी टूट गया और वह ऊंचे स्वर में रोने लगे। आसमान को छूने वाले इस कोलाहल को सुनकर नगरनिवासी आपस में कहने लगे—'वेश्याओं और उनके बच्चों के रोने का शोर है। इन रांडों ने देश को दूषित कर दिया'। दूसरा बोला—'इन का क्या दोष है। जिन दुष्ट चाण्डालों ने इन्हें ठग कर इस खोटे काम में डाला है उनको दण्ड मिलना चाहिये'। तीसरा—'वह मृत्युदंड के अधिकारी हैं'। चौथा—'उन्हें चौराहे में तेज दाढों वाले, भौंकते हुए भयानक कुत्तों के आगे बिना किसी दया के फैंक देना चाहिये'। पांचवां—'भाइयो, जिस देश का राजा चेतनाहीन हो उस की यही दशा होती है। आप भगवान के भरोसे पर समय बिताते रहो'।

इस प्रकार मातृशक्ति के अपमान से कुपित हुई भगवती चण्डी, सोई आत्मा वाले महाराज मीनकेतु को जगाने के लिये महामारी के रूप में प्रकट हो गई। लाखों लोग चेचक से पीड़ित होकर सो गये। सब जगह हाहाकार होने लगा। हजारों लोग अन्धे हो गये। डाक्टर लोग इलाज करते थक गये। डरे हुए लोग माता के कोप को शान्त करने के लिये मंदिर में जाकर हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए हवन यज्ञ करने लगे। तब प्रजा पर दया करके

क्रोशान् यावद् बभ्रमुः। महिष्यः धेनवः, वृषभाः, उष्ट्राः, तुरगाः, गजाः तृषिताः भूलुठिताः विगतासवः बभूवुः।

ततः त्रिमासाविरामवृष्ट्या लोकानां सहस्रं सदनानि धरामालिलिङ्गुः। सरित्तटेषु तृणानि चरन्तः अनेकसहस्रं पशवः आपगाप्रवाहेऽवहन्। तटगत-वप्राः[2] गर्तंतां प्रयाताः कृषिशून्यतां प्रययुः। अशनिपातेन पातालबद्धमूला अपि पादपाः शतशः खण्डिताः क्रोशान् अपतन्। धारासारप्रताडिताः लक्षं खगाः भारतीयमहिलासम्मानं याचमाना एव विगतासवः महीसुप्ताः अभवन्। फल-पत्रविहीनपादपाः राज्ये नारीदेहव्यापारप्रकुपिताः विरोधज्ञापनाय सत्याग्रहार्थं स्थिताः यथा निश्चला अदृश्यन्त। नभसि उत्थितः शलभवृन्दः लोकान् अभापयत्।

एवं विफलसकलोपाया भगवती चण्डी स्वीकृतकालीस्वरूपा, विमुक्तकेशा, बहिर् निस्सृतरक्तरसना, कपालहस्ता निशीथे मुहुर्मुहुः 'अब्रह्मण्यम्' 'अब्रह्मण्यम्' इति घोषयन्ती राजप्रासादं परितः परिबभ्राम। तां समीक्ष्य विगतार्धप्राणा इव भीताः वेपमानाः प्रहरिणः शस्त्राणि सन्त्यज्य इतस्ततः दधावुः। काली पुनर् 'अब्रह्मण्यम्' 'अब्रह्मण्यम्' इत्युवाच। एतच्छब्दसम-कालमेव महाराजप्रासादे भूकम्पतरङ्गा अन्वभूयन्त। अनुभूतशय्याप्रकम्पना प्रबुद्धा राज्ञी ऋतम्भरा भर्तारं प्राह—"महाराज, कृपया विजहातु निद्रां भवान्। राज्ये दैवप्रकोपस्य द्वितीयोऽयं वर्षः। प्रजा प्रलयकालसमदुःखानि भुञ्जाना त्राणाय भवन्मुखमवलोकते। असुरा राज्यमाक्रान्तुं विहितप्रयासाः श्रूयन्ते। एषा मातृशक्तिः 'अब्रह्मण्यं'[1] ब्रुवाणा नारीजातेः संरक्षणं याचते"। मीनकेतुः (सविस्मयम्) "किं मे राज्ये नारी विपद्ग्रस्ता"? ऋतम्भरा—"महाराज, अहं चिराद् दुःस्वप्नान् पश्यामि। यथा कैश्चित्पापैरबोधबालाः प्रतार्य विविक्त[3] स्थलेषु प्रणीय देहव्यापराय वाध्यन्ते"। मीनकेतुः—ऋतम्भरे, चेदिदं सत्यं, नारी सम्मानसंरक्षणाक्षमं धिङ् माम्। ऋतम्भरा—"महाराज, भवतां चारा[4]

---

1. अब्रह्मण्यम् 'अब्रह्मण्यमवध्योक्तौ स्यात् ब्रह्मण्यं ब्रह्मणो हितम' अत्युत्पातात् रक्षार्थं क्रन्दनम्।
2. वप्राः-क्षेत्राणि। 'पुंनपुंसकयोर्वप्रः केदारः क्षेत्रमस्य तु' (इत्यमरः)
3. विविक्तस्थलेषु-विजनस्थलेषु।
4. चाराः—गूढपुरुषाः।

चण्डी माता ने महाराजा की परीक्षा के लिये चेचक के रूप को त्याग दिया। पर राजा मीनकेतु न समझ पाया और वेश्याप्रथा लगातार चलती रही।

छः महीने के बाद भगवती फिर प्लेग के रूप में प्रकट होकर प्रजा को पीड़ित करने लगी। राज्य में इस प्रकार का कोप पहले कभी न देखा गया था। मुर्दों को श्मशान भूमि तक ले जाने के लिये उठाने वाले न मिल रहे थे। पत्नियां पतियों के लिये, बहनें भाइयों के लिये, माताएं पुत्रों के लिये छाती पीटती हुई रोने लगीं। घरों के कोणों में मरे हुए चूहों को उठाते हुए लोग थक गये। दीन प्रजा पर दया करके भगवती चण्डी ने इस भयद रूप को फिर त्याग दिया। परन्तु लङ्का में सोया हुआ कुम्भकर्ण भालों से बिधा हुआ भी जैसे राजा नारी की गरिमा को न पहचान पाया।

फिर लगातार एक वर्ष तक वर्षा न होने से खेती से सूने खेत पानी की बूंद के लिये तरसने लगे। नदियां और तालाब सूख गये। चौपाये जल के लिये कोसों दूर भागने लगे। भैंसे, गौएं, बैल, ऊंट, घोड़े, हाथी प्यासे धरती पर लोटते हुए प्राणहीन हो गये।

फिर तीन मास तक लगातार बारिस से लोगों के हजारों घर ढह गये। नदियों के किनारे घास चरते हुए हजारों पशु नदियों के प्रवाह में बह गये। नदियों के किनारे के खेत गढ़े बन कर खेती के अयोग्य हो गये। बिजली गिरने से पाताल तक जड़ों वाले खेत भी उखड़ कर सौ टुकड़ों में कोसों दूर जा गिरे। मुसलाधार वर्षा से प्रताडित लाखों पक्षी भारतीय नारी का सम्मान मांगते हुए ही प्राणहीन हो गये। फल-पत्तों से हीन पेड़ राज्य में वेश्यावृत्ति से कुपित हुए मानों अपना विरोध जताने के लिये सत्याग्रह पर बैठे जैसे निश्चल दिखाई देते थे। आकाश में उठा टिड्डी दल लोगों को डराने लगा।

इस प्रकार सब उपायों के निष्फल होने पर भगवती चण्डी ने काली का रूप धारण कर लिया। खुले केश, लाल जीभ मुंह से बाहर और हाथ में कपाल लिये आधी रात को बार-बार 'अब्रह्मण्यं' शब्द बोलती हुई राजमहल के चारों ओर घूमने लगी। उस को देखकर पहरेदारों के मानो आधे प्राण ही बाहर निकल गये और वह कांपते हुए शस्त्रों को वहीं फेंक कर इधर-उधर दौड़ गये। काली ने फिर 'बचाओ' 'बचाओ' कहा। इस शब्द के साथ ही राजमहल में 'भूकंप' के झटके प्रतीत हुए। रानी ऋतम्भरा की सेज हिली तो

अनाचाराः । मन्त्रिणोऽपि कुकृत्येषु सुतसंलिप्ततया अवरुद्धाधराः[1] । भवन्तः धर्मप्रियाः विवेकिनोऽपि आलस्याभिभूताः मन्त्रिनिक्षिप्तराज्यभाराः कुम्भकर्णसमनिद्राप्रियाः प्रजां चिरादुपेक्षमाणाः वर्तन्ते । मम मोहपतिताः विस्मृतसंसारसाराः दिवानिशं मामेव ध्यायन्ति । मीनकेतुः—"प्रिये, शनैश्चरदूषितमतिरहं व्यस्मरं मे विशालराज्यकार्यभारम् । साम्प्रतं शीर्षापगतशनिच्छायः प्रबुद्धो भवामि।" परोक्षं गता काली पुनर् 'अब्रह्मण्यं' बभाषे । एतेन किञ्चिद्भीतो—महाराजो राज्ञीं प्राह—"प्रिये, अहं भवत्याः मार्गदर्शनं कामये" । ऋतम्भरा - "भवन्तः प्रासाददक्षिणकोणस्थचण्डीमन्दिरे मातृशक्तिसम्मानसंरक्षणविहितपणाः भवन्तु ।" मीनकेतुरविलम्बं स्नातः चण्डीमन्दिरमुपगम्य क्षमापूर्वकं नारी-आदरार्थं प्रतिजज्ञो । अत्रान्तरे काली अब्रह्मण्यभाषणविरता अन्तर्दधे .

ततो वेपमानां राज्ञीं मीनकेतुः प्राह—"प्रिये, किं शीतं बाधते ?" ऋतम्भरा - "नहि राजन्, बिभेम्यहम् । विकम्पते मे हृदयम ।" मीनकेतुः—"किंनिमित्तम्" ? ऋतम्भरा – भर्तः, महर्षिवशिष्ठकृपयैव भवन्तः विशालं राज्यमिदं शासति[2] । तस्यैवानुग्रहेण नः कुलं वर्धते । त्रिकालदर्शिमहात्मनां न किमप्यगम्यम् । राज्ये विगतवर्षेषु निन्द्यजातानि न तस्याविदितानि । अत एव महर्षिश्चिराद्राज्ये पदं न दधार । अहमाशङ्के, असौ शप्स्यते[3] । आवां श्वः एव तदाश्रमं गमिष्यावः" । मीनकेतुः—"यथा भवती अनुमन्यते" ।

वेदमन्त्रोच्चारणसंलग्नशुकसारिकास्वरमुखरितः, पुष्पसमिदाहरणपरापणवटुयुतः, वाटिकाजातविविधपुष्पगन्धलुब्धषट्पदभूषितः, होमगन्धव्याप्तव्योमतलः, कामधेनुवत्सरम्भणविहितविनोदः, ऋषिपत्नीपदतलपावनभूतलः वशिष्ठाश्रमः · प्रातर् मार्जितपूजापात्राणि अर्चनास्थलं प्रापयन्त्याः स्खलितपादारुन्धत्याः करच्युतभाजनानि निरीक्ष्य वशिष्ठः—"अरुन्धति, पादस्खलनस्य किं निमित्तम् ?" अरुन्धती—"भगवन्, विकलाहम्" । वशिष्ठः—"अरुन्धति, ते वैकल्यनिमित्तं मे मनोगतम् । मीनकेतुराज्ये नार्यपमानेन दूयते मे मानसम् । असौ नः दिदृक्षुः एतत्क्षणेषु वाटस्थः । अहं तं शप्स्ये" । पत्याश्वासितारुन्धती पुनर्मार्जितपात्राणि यथास्थलम् अधारयत् ।

1, अवरुद्धाधराः मौनभाजः

2. शासति-शासु-अनुशिष्टौ-शास्ति, शिष्टः, शासति ।

3. शप-आक्रोशे (स्वरितेत्)

वह जाग पड़ी और पति को कहा—'महाराज, अब जाग पड़ो। राज्य में दैवी प्रकोप का यह दूसरा वर्ष है। प्रजा प्रलयकाल जैसे कष्टों को भोगती हुई रक्षा के लिये आप की ओर देख रही है। सुना है असुर राज्य पर आक्रमण करने की तैयारी में है। यह मातृशक्ति 'बचाओ' 'बचाओ' बोलती हुई नारी जाति का संरक्षण मांगती है"। मीनकेतु—(अचम्भे के साथ) क्या मेरे राज्य में नारी आपत्ति में है'? ऋतंभरा—'महाराज, मैं देर से बुरे स्वप्न देख रही हूं। जैसे—कुछ पापी लोग अनजान लड़कियों को ठग कर एकान्त में ले जाकर उन्हें देह व्यापार के लिये विवश कर रहे हैं। मीनकेतु—रानी, यदि यह सच है तो नारी के सम्मान की रक्षा न करने वाले मेरे जैसे राजा को धिक्कार है'। ऋतंभरा, 'महाराज, आपके गुप्तचर आचारहीन हैं। मंत्री अपने पुत्रों के खोटे काम में संलिप्त होने से मौन साधे हुए हैं। आप ने धर्मात्मा ज्ञानवान होते हुए भी आलस्य में फंस कर राज्य का सारा भार मंत्रियों पर छोड़ दिया। कुम्भकर्ण के समान निद्रा में मस्त आप को प्रजा का कुछ भी ध्यान न है। मेरे मोह में पड़कर आप को संसार की वास्तविकता भूल गई और मेरे ही ध्यान में डूब गये'। मीनकेतु—'प्रिये, शनैश्चर ने मेरी बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया और अपने राज्य के कार्यभार को भूल गया'। काली ने परोक्ष होकर फिर 'बचाओ' कहा। इससे महाराजा कुछ डर गया और रानी को बोला—'प्रिये, मैं तुम्हारा मार्गदर्शन चाहता हूं'। ऋतंभरा—'आप महल के दक्षिण कोण में स्थित चण्डी मंदिर में मातृशक्ति की रक्षा के लिये प्रतिज्ञा करें। राजा मीनकेतु ने झट स्नान किया और मंदिर में जाकर नारी के आदर के लिये प्रतिज्ञा की। इतने में काली ने 'बचाओ' बोलना बन्द कर दिया और छिप गई।

फिर कांपती हुई रानी को राजा ने कहा—'प्रिये' क्या सरदी लग रही है?' रानी—'नहीं महाराज, मैं डर रही हूं। मेरा हृदय कांप रहा है।' राजा—'क्यों, क्या कारण?' रानी—'महाराज, महर्षि वशिष्ठ की कृपा से ही आप इस विशाल राज्य पर शासन कर रहे हैं। उनकी कृपा से हमारे वंश की वृद्धि है। तीनों कालों की बात जानने वाले महात्माओं से कुछ छिपा न रहता है। पिछले वर्षों में राज्य में जो बुरी बातें हुई हैं उनका उन्हें जरूर पता होगा। इसी लिये महर्षि देर से यहां आए नहीं। मुझे डर है कि वह हमें शाप दे देंगे। हम कल ही उसके आश्रम में जाएंगे। मीनकेतु—जैसा आपको ठीक लगता है।

ऋतम्भरानुगम्यमानो महाराजः मध्याह्ने वशिष्ठाश्रमं प्राप्तः शिष्यमुखेनाज्ञामाप्तुं प्रायतत। शिष्यावाप्तसन्देशः महर्षिः—"असौ भ्रष्टभूपतिः। तद्राज्ये नारीदेहव्यापारः प्रचलति। नासौ ममाश्रमप्रवेशार्हः। अहं ममाश्रमरेखापरतः स्थितं तम् उपासनामनु द्रक्ष्यामि"। शिष्याः महर्षिप्रोक्तं महाराजाय न्यवेदयन्। आकर्णितशिष्यवचाः ऋतम्भरा महाराजं प्रति—"भर्तः, ममाशङ्कितं सत्यतामुपगच्छत् प्रतिभाति। त्रिकालज्ञमहात्मानः परोक्षघटितमपि प्रत्यक्षमिव पश्यन्ति। ऋषि-मुनयः शापोन्मुखास्तिष्ठन्ति। असौ यदि शप्स्यते आवां किं करिष्यावः।

मध्याह्नमनु शिष्ययुगलानुगम्यमानो महर्षिर् वशिष्ठः पादस्पर्शोद्यतं मीनकेतुं "नहि नहि, मा स्पृश मे चरणौ। तव राज्ये नारी अनैतिकव्यापारपरा। अहं त्वां—"। ऋतम्भरा शापशङ्कायुता बद्धकरा साश्रुमुखी कतिचित् पदानि अग्रतः प्रयाता—"नहि भगवन्, नहि। मा शपतां मे भर्तारम्। क्षमतां महर्षे क्षमताम्। विशालहृदयाः महर्षयः करुणासागराः। ऋषिवर, अहं दयाब्धेः जलकणमेकं संयाचे क्षमतां मे महाराजम्। प्रायश्चित्तं वदतु भवान्। आवां भवदाज्ञां सादरं पालयिष्यावः।" नारीवाचं निशम्य करुणोपेतः अवरुद्धशापवचाः महर्षिर् वशिष्ठः प्राह—"राजन्, देवभूमिभारते नार्यवमाननातः परं न किमपि क्लेशकरम्। स्त्रीषु दूषितासु वर्णसङ्करः सञ्जायते। वर्णसङ्करोद्भवः राज्यविध्वंसकरः। विविधदैवकोपप्रपीडितप्रजोऽपि भवान् न बुबुधे। ते भार्या ऋतम्भरा साध्वी सदाचारपरा। एतयाऽभ्यर्थितोऽहं शापवाचं मार्गे एव अरुणधम्। भवान् वर्षमेकं भूतलशय्यागतः, फलाहारपरः गोदुग्धसन्तृप्तः ब्रह्मचर्येण कालं गमयतु।" तरुशिखरपतितः शाखासंलग्नः स्वस्थकायो नरो यथा ऋषिशापसान्निध्यविमुक्तः प्रसन्नमानसो महाराजो बद्धाञ्जलिः प्राह—"भगवन्, अहं भवदादेशे अल्पविराममात्रव्यवधानकरोऽपि न भविष्यामि। मम राज्ये नारीदेहव्यापारं भविष्यद्विद्लुप्तमेव विजानन्तु भवन्तः। अहं दूषितनारीणां पुनर्वासाय तदर्भकाणां च अपरसभ्यसमाजसम्मानदासनार्थं प्रयतिष्ये"। महाराजाश्वासनेन प्रशान्तकोपो महर्षिः प्राह—"राजन्, पश्य असौ भयदकालः साम्प्रतं दूरस्थः। कलियुगान्तिमचरणे पदलोलुपाः वर्णसङ्कराः सिंहासनस्थाः धर्मपरिवर्तनेन, नृशंसगोवधेन, नार्यनाचारेण, देवदासीदम्भेन, बहुविवाहसुविधाभिः देवेतरमतिकान् प्रसादयन्तः, स्वसंस्कृतिं विनिन्दन्तः अपरसंस्कृतिं च प्रशंसन्तः न्यायविधिषु प्रजां विभज्यापि प्रजातन्त्रदम्भं विरचयन्तः देशमिमं दूषयिष्यन्ति।

वेदमंत्रोंच्चारण में लगे तोता-मेनाओं के स्वर से मुखरित, फूल और समिधा ला रहे ब्रह्मचारियों से युक्त, वगीचों के अनेक प्रकार के फूलों की सुगन्ध के लोभी भौरों से सजा हुआ, आकाश में फैले होमगन्ध से भरा, कामधेनु के बछड़े के रंभाने से विनोद करने वाला, ऋषिपत्नियों के पदतल से पवित्र महर्षि वशिष्ठ का आश्रम। प्रातः काल साफ किये हुए पूजापात्रों को पूजा-स्थल तक ले जा रही, फिसले पैर वाली अरुन्धती के हाथ से गिरे पात्रों को देखकर वशिष्ठ -'अरुन्धती, पैर कैसे फिसल गया।' अरुन्धती—'भगवन्, मैं व्याकुल हूं।' वशिष्ठ—'मैं तुम्हारी विकलता के कारण को जानता हूं। मीनकेतु के राज्य में नारी के अपमान से मेरा मन दुःखी है। वह इस समय हमें मिलने की इच्छा से रास्ते में है। मैं उसे शाप दे दूंगा।' पति से आश्वासन पाकर अरुन्धती ने दूसरी बार साफ किये पात्रों को यथास्थान रख दिया।

महाराजा मीनकेतु रानी के साथ दोपहर के समय वशिष्ठ के आश्रम में पहुंच गया और शिष्यों के द्वारा अन्दर जाने की आज्ञा मांगी। परन्तु महर्षि ने कहा—'वह भ्रष्ट राजा है। उस के राज्य में वेश्यावृत्ति चल रही हैं। उसे मेरे आश्रम में आने की आज्ञा नहीं है। मैं पूजा के वाद आश्रम से बाहर ही उसे मिल लूंगा।' शिष्यों ने राजा को यह सब कुछ बता दिया। शिष्यों के वचन को सुनकर रानी राजा को बोली—'महाराज, मेरे मन की शङ्का ठीक उतरती मालूम हो रही है। तीनों काल की बात जानने वाले महात्मा लोग परोक्ष की बातों को भी प्रत्यक्ष जैसा देख लेते हैं। ऋषि-मुनि लोग हर समय शाप देने के लिये तैयार रहते हैं। अगर वह शाप दे देगा तो हम क्या करेंगे।

दोपहर के बाद दो शिष्यों के साथ बाहर आये महर्षि वशिष्ट ने पैर छूने को तैयार राजा को कहा—'नहीं नहीं, मेरे पैरों से हाथ न लगाना। तुम्हारे राज्य में नारी वेश्यावृत्ति में है। मैं तुम्हें—'। शाप की शंका से डरी हुई हाथ बांधे कुछ पैर आगे जाकर रानी—'नहीं महाराज' नहीं, मेरे पति को शाप न दें। क्षमा करो महर्षि जी, क्षमा करो। विशाल हृदय वाले महर्षि दया के सागर होते हैं। ऋषिवर, मैं दया के समुद्र से एक जलकण चाहती हूं। मेरे महाराज को क्षमा कर दें। आप प्रायश्चित्त बताएं। हम आप की आज्ञा का पालन करेंगे'। नारी के वचन को सुन कर दयालु महर्षि ने शाप के वचन को बीच में ही रोक लिया और कहा—'राजन, देवभूमि भारत में नारी के अपमान से बढ़ कर और कोई कष्ट की बात नहीं हो सकती। स्त्रियों के दूषित

ततः पापभराक्रान्तधराप्रार्थितो महादेवः उन्मीलिततृतीयलोचनः सृष्टिमिमां संहरिष्यति ।" इत्यभिधाय महर्षिः पुनराश्रमं प्रविवेश ।

पथि महाराजो राज्ञीं प्राह —"प्रिये, त्वयोद्धृतोऽहम् ऋषिशापात् । भवत्प्रार्थितो दयोपेतो महर्षिरन्वगृह्णान्माम् । राज्ये चिरात्कृतपदं कलङ्कमहं कथं नाजानामिति शतं विचिन्तयन्नपि न बोद्धुं क्षमः ।" ऋतम्भरा —"विस्मृतातीताः भविष्यत्समर्पितबुद्धयः भवन्तु भवन्तः । एतस्मिन् कुकृत्ये चेन् मन्त्रिणः कृतागसस्तदा[1] तेऽपि दण्ड्याः । अन्यथा वारिदावृतप्रभाकरप्रभेव पुनरुदितो महर्षिशापो न रोद्धुं क्षमः ।

मीनकेतोर् मन्त्रिपरिषदः पञ्च मन्त्रिणः । प्राच्यवाचीप्रतीच्युदीचीनामेकैकः—गजेन्द्रः, महेन्द्रः, सुरेन्द्रः, राजेन्द्रश्च । निखिलराज्यगृहविभागावलोकनपर एक एव धीरेन्द्रः । महाराजोऽपरदिवसे मन्त्रिपरिषदमाह्वातुमाज्ञापयत् । मन्त्रिणोऽपि एतज्जघन्यप्रसङ्गगूहनाच्चोरा यथा भीताः 'महाराजकोपं कथं सहिष्यामहे' इति चिन्तापरा भार्याभर्त्सिता रात्रौ निद्रां न लेभिरे । प्रभाते संसद्भवनप्रबन्धसंलग्नाधिकारिष्वेकः—"मित्राणि, अद्य भद्रं न पश्यामः । दक्षयज्ञे उमापमानप्रकुपितशूली[2] यथा राज्यनारीदूषणात् प्रचण्डरोषमाश्रितः राजा न जानेऽद्य किं करिष्यति । स्वयं सम्राज्ञी ऋतम्भरा महाराजभर्त्सने न सङ्कोचमाश्रयत् ।" अपरः—"मया तु श्रुतं, महाराज-शापोद्यतो महर्षिर् वशिष्ठः राज्ञ्या बहुलायासेन वारितः । भूपालप्रासादः शुभं फलतु न वा फलतु परं कोपः प्रलयानलवत्[3] शून्य-परिणामो नोपशाम्यति । वस्तुतः मन्त्रिणामवहेलनयैव कलङ्कोऽयं भुजगफटेवोन्नतशीर्षः ।" तृतीयः—"सुतसंलिप्ततयैवैते मौनमभजन् । पङ्कसंलिप्तकरो नरः[4] परपाणिशोधनाक्षमः ।' ततः परिषदः धीरेन्द्रगजेन्द्रमहेन्द्रसुरेन्द्रराजेन्द्राभिधानाः पञ्चापि मंत्रिणः समागत्य आसनानि जगृहुः । पलान्यनु समायातो महाराजो मीनकेतुरपि रथादवतीर्य सभागारप्रविष्टः सिंहासनमलञ्चकार । महाराजादराय समुत्थिताः मन्त्रिणः पुनरासनानि भेजिरे ।

---

1. कृतागसः कृतापराधाः । 'आगोऽपराधोमन्तुश्च' (इत्यमरः)
2. शूली—महादेवः ।
3 शून्यपरिणामः—विफलः ।
4, परस्य पाणेः हस्तस्य शोधने स्वच्छीकरणे अक्षमः असमर्थः ।

होने पर वर्णसंकर पैदा होते हैं। वर्णसंकर का पैदा होना राज्य के विनाश के लिये होता है। अनेक प्रकार की दैवी आपत्तियों से प्रजा के पीडित होने पर भी आप जाग न सके। तुम्हारी पत्नी ऋतम्भरा सदाचारिणी पतिव्रता हैं। इस की प्रार्थना पर मैंने शाप की वाणी को रास्ते में ही रोक लिया। आप दूध और फलाहार लेते हुए, एक वर्ष तक धरती पर सो कर ब्रह्मचर्य से समय विताओ'। पेड़ के ऊपर से गिरे हुए, शाखा पर लटक जाने से स्वस्थ शरीर वाले मनुष्य के समान ऋषि के शाप से बाल बाल बचा हुआ राजा प्रसन्न मन वाला हाथ जोड़कर बोला—'भगवन्, मैं आप की आज्ञा में तनिक भी भूल नहीं करुंगा। मेरे राज्य में वेश्यावृत्ति को आप सदा के लिये लुप्त समझें। मैं दूषित नारियों के पुनर्वास के लिये और उनके बच्चों को समाज में सम्मानप्रदस्थान दिलाने का प्रयत्न करूंगा'। महाराज के आश्वासन से शान्त क्रोध वाले महर्षि बोले—'राजा, देखो। अभी वह भयानक समय दूर है। कलियुग के अन्तिम चरण में पद के लोभी वर्णसंकर सिंहासन पर बैठ कर धर्मपरिवर्तन से, निर्दयतापूर्वक गोवध से, वेश्यावृत्ति से, देवदासी के ढोंग से, बहुविवाह की सुविधाओं से देवताओं से भिन्न बुद्धि रखने वाले लोगों को प्रसन्न करते हुए, अपनी सभ्यता की निन्दा और पराई सभ्यता की प्रशंसा करते हुए, कानून की परिधि में प्रजा का विभाजन करके भी प्रजातंत्र का ढोल पीटने वाले इस देश को दूषित करेंगे। तब पापभार से दबी धरती मुक्ति के लिये महादेव के पास जायगी। तब शिव जी तीसरा नेत्र खोल कर सृष्टि का संहार करेंगे।

रास्ते में महाराजा ने रानी को कहा—'प्रिये, तूने ऋषिशाप से मेरा उद्धार कर दिया। आप की प्रार्थना पर ही दयालु महर्षि ने मुझ पर कृपा की। प्रतीत नहीं राज्य में चिर से चल रहे इस कलङ्क का मुझे कैसे पता न चला।' ऋतम्भरा—'अब पिछली बातों को छोड़ो। भविष्य पर ध्यान दो। यदि इस खोटे काम में मंत्री अपराधी हों तो उन्हें भी दंड देना चाहिये। नहीं तो बादलों से ढके सूर्य की कान्ति के समान फिर से उदय हुआ महर्षि का शाप रोका न जा सकेगा।

मीनकेतु की मंत्री परिषद के पांच ही मंत्री थे। पूर्व; दक्षिण, पश्चिम, उत्तर का एक एक—गजेन्द्र, महेन्द्र, सुरेन्द्र, राजेन्द्र तथा संपूर्ण राज्य के गृह-विभाग को देखने वाला धीरेन्द्र। महाराजा ने अगले दिन मंत्रीपरिषद को बुलाने की आज्ञा दे दी। मंत्री भी इस नीच प्रसंग के छिपाने से चोरों की

तत आसनग्रहणमनु कोपप्रस्फुरिताधरः, रक्तलोचनः, त्रिवलिवेष्टित-भालतलः महाराजः प्राह—"मन्त्रिणः, भारतं देवभूमिः । एतत्समुज्ज्वल-संस्कृतिविमुख एव संसारः देशमिमं गुरुं मन्यते । सतीनारीपदरेणुपावनराज्ये नार्यनैतिकव्यापारावगतोऽहं दूनमानसः । भवद्भिर्नाविरोधोऽकारि न चायं दुरा-चारसमाचारो मे श्रवणयोः पातितः । नारीदेहव्यापारप्रकुपितविबुधकृत-विविधदैवापद्भिः सङ्कटापन्नप्रजामवलोक्यापि प्रस्तरसमं भवन्मानसं न द्रवतां गतम् । भवन्तो विश्वासभङ्गकरा अतो दण्ड्याः । गृहावलोकनभारवहो धीरेन्द्रो विशेषतः प्रजाविपन्निमित्तम् ।" राज्ञः कोपसंलिप्तवाग्भिर् मन्त्रिणः वेपितुमारेभिरे । ततः कृतसाहसो धीरेन्द्र उत्थाय "महाराज, क्षन्तव्यो भवामि । एतत्समस्तं विदेशियासुरप्रेरितम् । मम समस्तप्रयत्नाः विफलतां प्रययुः । ते अस्मत्सैनिकैः दूरं द्राविता अपि पुनर् दुर्गममार्गप्रविष्टा नः प्रयत्नानबाधन्त । तत्सङ्गविलुप्तमतय एव केचिज्जनाः जघन्यकर्माचरन्तः[1] अस्मान् सङ्कटसागरे न्यपातयन ।" अपरमन्त्रिणोऽपि गुणगृणायन्तस्तन्मतमपोषयन् । महाराजः—"भवत्तर्को न मे बुद्धिगम्यः । भवन्तः विदेशजनमिषेण उत्तरदायित्वादात्मानं मोचयितुकामाः लक्ष्यन्ते । भवद्भिः सकलसंसृतिलब्धप्रतिष्ठोऽयं देश अवन-तताम् अनायि । भवन्तः सर्वे राज्याभ्युदयाय प्रयतन्ताम् । धीरेन्द्रः सकल-दुराचारिणः कारागारप्रापितान् न्यायाधीशसमीपे सम्पुष्टापराधान् मे समक्ष-मानेष्यति । कोऽपि अपराधी देशाद् बहिर्गन्तुं न प्रभवेत् । भूगर्भगतोऽपि गवेष-णीयः । एतत्कुत्सितकर्मावसानाय विहितपणोऽहम् । कवन्धाहतभुजगःपुनरपि प्रचलति । पूर्णविरामाय फटाटोपभङ्गोऽनिवार्यः । गजेन्द्रमहेन्द्रौ मर्यादाश्रमे दूषित-नारीणां पुनर्वासाय प्रयतिष्येते । सुरेन्द्रराजेन्द्रौ बालाश्रमे तदर्भकाणां शिक्षा-दीक्षाप्रबन्धपरायणौ स्थास्यतः । व्ययभारं राज्यकोषो वक्ष्यति । त्रिदिवसाभ्यन्तरे मां विज्ञापयन्तु कार्यजातेन ।"

राजदण्डभीतो धीरेन्द्रः नवतिदुराचारिणः न्यायाधीशसमीपे स्वीकृता-पराधान् महाराजसमक्षमुपास्थापयत् । अनुमोदितन्यायाधीशनिर्णयो भूपति-स्तेभ्यो मृत्युदण्डमश्रावयत् । क्षमार्थं विलपन्तस्ते महाराजवर्जं सर्वैरश्रूयन्त । शिशुपितुर्नामान्वेषणसन्दर्भमरणावशिष्टाः दूषिताङ्ग्यष्टयः सन्ततिमहिलाः मर्यादाश्रमे ग्लानिमारनताः समयं निन्यु, । बालाश्रमे पञ्चषीतिर्बाल-

1. जघन्यं—निन्दितम् ।

तरह डरे हुए 'महाराजा के क्रोध को हम कैसे सहेंगे' इस चिन्ता में पड़े अपनी पत्नियों से लताड़े हुए उनको रात को नींद न आई। प्रातःकाल संसदभवन के प्रबन्ध में लगे अधिकारियों में से एक बोला-मित्रो, आज भलाई न है। दक्ष के यज्ञ में पार्वती के अपमान से कुपित महादेव के समान प्रचण्ड गुस्से में आए महाराजा पता नहीं आज क्या करेंगे। स्वयं महारानी ने राजा को लताड़ने में कोई कसर न छोड़ी।' दूसरा—'मैंने तो सुना है, महाराजा को शाप देने के लिये तैयार महर्षि वशिष्ठ को रानी ने बड़ी कठिनाई से रोका। राजा की प्रसन्नता कोई भला फल दे न दे परन्तु इन का क्रोध प्रलयकाल की आग के समान कोई परिणाम दिखाए बिना शान्त न होता है। असल में मंत्रियों की लापरवाही से ही इस कलंक ने सांप की फिण के समान सिर उठाया। तीसरा —'अपने पुत्रों के संलिप्त होने से ही यह लोग चुप रहे। जिस मनुष्य के अपने ही हाथ कीचड़ से गंदे हों वह दूसरे के हाथ कैसे साफ करेगा।' फिर परिषद् के पांचो मंत्री आकर आसनों पर बैठ गये। कुछ ही क्षणों के बाद महाराजा मीनकेतु भी रथ से उतर कर सभा में आया और सिंहासन पर बैठ गया। महाराजा के आदर के लिये उठे हुए मंत्री फिर बैठ गये।

फिर आसन पर बैठने के बाद क्रोध से फड़कते होठों वाले, लाल नेत्रों वाले मस्तक में त्रिवलि वाले महाराजा ने कहा 'मंत्रीगण, भारत देवभूमि है। इस की उत्कृष्ट संस्कृति से मुग्ध ही संसार इस को गुरु मानता आया है। सती नारियों की चरणधूलि से पवित्र राज्य में वेश्यावृत्ति से मेरे मन को बहुत ठेस लगी है। आप ने न स्वयं इस दुराचार को रोका और न ही मुझे बताया। वेश्यावृत्ति से कुपित देवताओं द्वारा भेजी अनेक विपदाओं से पीडित प्रजा को देख कर भी आप का पत्थर जैसा मन पिघला नहीं।

आप ने विश्वास भङ्ग किया, आपको दण्ड मिलना चाहिये। गृहमन्त्री धीरेन्द्र विशेष करके प्रजा के संकट का कारण है। राजा की क्रोधभरी वाणी से मन्त्री कांपने लगे। तब धीरेन्द्र हौंसला करके उठकर बोला—'महाराज, क्षमा करें। यह सब विदेशी असुरों की प्रेरणा से ही हुआ है। मेरे सब प्रयास निष्फल हो गये। हमारे सैनिकों से दूर भगाए हुए भी उन्होंने दुर्गम रास्ते से प्रवेश करके हमारे सब प्रयत्नों को विफल कर दिया। उन असुरों की संगत से ही भ्रष्ट बुद्धि वाले, इस नीच कर्म को करते हुए लोगों ने हमें संकट सागर में धकेल दिया दूसरे मंत्रियों ने भी गुणगुणाते हुए उसके मत का अनुमोदन किया।

वालिकाः पितुर्नामान्वेषणविकला अन्योन्यं बालासुलभवचांसि भाषमाणास्तत्रस्थानां हृदये करुणोत्पादकाः बभूवुः ।

मर्यादाश्रमे रामचरितमानसपाठः प्रत्यहं[1] प्राचलत् । सीताचरितश्रवणपावनमानसैका वेश्या मनस्यचिन्तयत् - "रावणः पञ्चवटीकुटीरात्सीतां समुद्रपारं प्रणीय तदनुमतिं प्रतीक्षमाणः लङ्काविध्वंसं यावदपि तामशोकवाटिकातः प्रासादेषु न प्रावेशयत् । असुरेभ्योऽपि निकृष्टतमाः एते भयदचाण्डाला नःबलादपहृत्यास्मत्प्रतिरोधमुपेक्षमाणा एतद्देवस्थले एव अस्माकं चरित्रमदूषयन् । हे विधातः, त्वया एवंविधाततायिहस्तात् स्वचरित्रं रक्षितुं नारी पुरुषसमबला कथं नाऽकारि । किं भवान् स्वयं पुरुषः, अतो मोदकान् विभजन्नन्धः स्वीयानेव यथा पुरुषान्नोपाकरोत् ? यत्र स्रष्टैव पक्षपातपरस्तत्र तत्करसृष्टानां का कथा । अहं चेत् समबला, दुराचारिणः वक्षःस्थलं द्विधा विभज्य तद्रुधिरं नापास्यम् ? समशक्तिधरा द्रौपदी दुःशासनप्रतिकाराय त्रयोदशवर्षाणि विमुक्तकेशा भीमं न प्रत्यैक्षत । अमर्दितमृदा विनिर्मितघटः खण्डतां गतश्चेत्पादाघातं सहते, एष कुम्भकारस्य दोषो न मृत्तिकायाः । अस्माकमेक एव दोषः यदेवंविधनारकीययातना भुञ्जाना अपि प्राणधराः भवामः । वयं मरणेऽपि परायत्ता.[2] । नार्याश्चरित्रमेव जीवनम् । तस्मिन्गते लोहकारभस्त्रेव श्वासं सङ्गृह्णानापि सा मृतैव । अस्माकं प्राणाः भारभूताः । महाराजो मीनकेतु रेतन्निमित्तमापतद्दैवापद्भिः कथं न बुबुधे । असौ भुजगफटामिव शिरः उन्नमयन्तं कलङ्कमिमं प्रतिरोद्धुं कथं न प्रायतत । वाष्पयानयोः परस्परमाहतयोः सहस्रेषु अपाङ्गेषु सङ्केतस्य को लाभः। प्रजापापपुण्ययोर्निमित्तं भूपतिः । तज्जागरणं पुण्याय प्रेरयते । अलसता पापसागरे निक्षिपति । असौ मर्यादाश्रमस्थानां कं लाभमालोकते । वयं शिशून् पितुर्नाम किं वदेम । समाजाक्षिषु रजःकणसमाः कथं जीविष्यामः । महाराजः कथं नास्मान् प्राणदण्डेन दण्डयति । एवं विचिन्तयन्ती अश्रूणि मुमोच । तां समीक्ष्य अपरा अपि रोदितुमारेभिरे ।

---

1. प्रत्यहम्—अहः अहः प्रति-प्रत्यहम् प्रतिदिवसम् ।

2. परायत्ताः—परतन्त्राः ।

राजा बोला—'आप की दलील मुझे ठीक न लग रही है । आप विदेशी लोगों का वहाना बना कर जिम्मेवारी से छूटना चाहते हो । आपने सारे संसार में यश वाले देश को नीचा दिखाया । आप सभी राज्य की उन्नति के लिये प्रयास करें । धीरेन्द्र सभी दुराचारियों को कैद कर के जज के सामने अपराध की पुष्टि होने पर मेरे सामने लाए । कोई भी अपराधी देश से बाहर न जाने पाए पाताल में भागने वाले को भी ढूंढ लिया जाये । इस कुकृत्य का अन्त करने के लिये मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूं । सांप के धड़ पर लाठी मारी जाए तो वह फिर भी चल पड़ता है । पूर्ण अन्त के लिये फिण को नष्ट करना जरूरी है । गजेन्द्र, महेन्द्र मर्यादा आश्रम में दूषित नारियों के पुनर्वास के लिये प्रयत्न करेंगे। सुरेन्द्र, राजेन्द्र बालाश्रम में उनके बच्चों की शिक्षा दीक्षा का प्रबन्ध करेंगे । व्यय-भार राज्यकोष उठाएगा । तीन दिन के अन्दर अपनी कार्य-प्रणाली से मुझे सूचित करें ।

राजदण्ड से डरे हुए धीरेन्द्र मंत्री ने नब्वे दुराचारियों को जज के सामने अपना अपराध स्वीकार करने के अनन्तर महाराजा के सामने खड़ा कर दिया । महाराजा ने जज के निर्णय के अनुसार उनको मृत्युदण्ड सुना दिया । क्षमा के लिये विलाप करते हुए उनको सब ने सुना परन्तु राजा ने उनकी बात पर ध्यान न दिया । बच्चों के बाप के नाम की खोज के प्रसंग में मरने से बची हुई सहत्तर महिलाएं ग्लानि के भार से झुकी हुई मर्यादा आश्रम में समय बिताने लगी । पचासी बालक-बालिकाएं बाप के नाम की खोज में व्याकुल बचपन की बातें करते हुए वहां के लोगों के हृदय में दया पैदा करने लगे ।

मर्यादा आश्रम में रामचरितमानस का पाठ हर रोज चलता था। सीता के चरित्र श्रवण से पवित्र मन वाली एक वेश्या सोचने लगी—'रावण पंचवटी की कुटिया से सीता को समुद्र पार ले जाकर उसकी अनुमति की प्रतीक्षा में उसे अशोकवाटिका से महलों में न ले गया । असुरों से भी नीच यह भयानक चाण्डाल छल से हमारा अपहरण कर के हमारे प्रतिरोध की चिन्ता न करते हुए हमें ले आए और इस देवभूमि में हमारे चरित्र को दूषित कर दिया । हे विधाता, तूंने इस प्रकार के जालमों के हाथ से अपने चरित्र की रक्षा करने के लिये नारी को मनुष्य के बराबर बल वाला क्यों नहीं बनाया । क्या आप स्वयं पुरुष थे इस लिये लड्डू बांटने वाला अन्धा जैसे अपनों को ही, आपने उन का पक्षपात न किया है ? जहां बनाने वाला ही स्वयं पक्षपाती हो

तृतीयदिवसे धीरेन्द्रः लब्धाज्ञः राजसभायां प्रविश्य महाराजं नमस्कृत्य प्राह—"महाराज, भवदादिष्टं सकलं प्रपूरितम्। परमेकः प्रश्नः समाधानमपेक्षते।" मीनकेतुः—"को नाम प्रश्नः?" धीरेन्द्रः –"महाराज, वेश्याशिशूनां पितुर्नाम बिना पाठशालाप्रवेशः न सुलभः। कस्य नामोल्लेखः स्यात्, एतदर्थं महाराजपादाः प्रार्थ्यन्ते'। मीनकेतुः—जटिलोऽयं प्रश्नः। राजद्वारालङ्कारभूताः सकलशास्त्रज्ञानविभूषिताः पण्डिताः मनुस्मृतिप्रभृति ग्रन्थानालोड्य निर्णयं प्रदास्यन्ति। प्रज्ञादत्तः, धर्मदत्तः, देवदत्तः एते पण्डिताः सम्यक् विवेच्य श्वः मां निर्णयेनावगमयन्तु"। धीरेन्द्रः पण्डितत्रयकृतसम्पर्कस्तानपरदिवसे राजानं द्रष्टुं निवेद्य मन्त्रालयं प्रययौ।

अपरदिवसे उष्णीषालङ्कृतशीर्षाः, यज्ञोपवीतविभूषिताः, मस्तके त्रिपुण्ड्र[1] स्कन्धयोश्च क्षौमदुकूलं धारयन्तः त्रयोऽपि पण्डिताः सभाप्रविष्टाः सिंहासनस्थमहाराजमभिवाद्य तेनापि तथा सत्कृतास्तदाज्ञया आसनानि भेजिरे। महाराजः—"विद्वांसः, दूषितनार्यर्भकाणां[2] पितुर्नामोल्लेखे का शास्त्रमर्यादा। किं पितृस्थाने मातुर्नामोल्लेखः शास्त्रसम्मतः व्यवहार्यश्च?" प्रज्ञादत्तः—"महाराज,

बीजानि भूमौ कृषका वपन्ति
धराङ्कुरं दर्शयते तथैव।
वीर्यं प्रधानं न रजः प्रधानं
पितुः पदं नार्हति योषिदत्र॥

अतो मातुर्नामोल्लेखः न शास्त्रसम्मतः न चैव व्यवहार्यः"। धर्मदत्तः—महाराज, "मातुर्नामाङ्कनं सर्वथा परिहार्यम्। वयं भारतीयनारीं सश्रद्धं सम्मानयामः। परं कोटिकोटिनार्यः समशीलधराः एतत्सन्देहास्पदम्। गोधूमक्षेत्रे

1. त्रिपुण्ड्रं – त्रिरेखातिलकम्।

2. अर्भकः—शिशुः।
'पोतः पाकोऽर्भकोडिम्भःपृथुकः शावकः शिशुः' (इत्यमरः)

वहां उसके हाथ से बनाये गये लोगों की क्या बात कही जाय। अगर मैं बराबर बल वाली होती तो दुराचारी की छाती को फाड़ कर उसका खून न पी जाती ?

यदि द्रौपदी में बराबर ताकत होती तो दुःशासन से बदला लेने के लिये वह तेरह वर्ष खुले केश भीम की प्रतीक्षा न करती। बिना गून्धी मिट्टी से बनाया गया घड़ा टूट कर यदि पैरों की ठोकर खाता है तो इस में दोष घुमार का हैं मिट्टी का नहीं। हमारा एक ही दोष है कि हम इस प्रकार की नरक जैसी यातनाएं भोगती हुई भी जीवित हैं। हम तो मरने में भी पराधीन हैं। नारी का चरित्र ही जीवन है। उसके चले जाने पर लोहार की धौंकनी (खाल) के समान श्वास लेती हुई भी वह मरी हुई ही है। हमारे ज़िये प्राण भार बने हुए हैं। महाराजा मीनकेतु इस निमित्त से आने वाली दैवी आपत्तियों से क्यों नहीं जागा। सांप की फिण के समान सिर उठाने वाले इस कलङ्क को उसने क्यों नहीं रोका। दो गाड़ियों के भिड़ने पर हजारों लोगों के अपंग होने पर सिगनल करने से क्या लाभ। प्रजा के पाप-पुण्य का कारण राजा ही होता हैं। उसकी जागरूकता पुण्य की प्रेरणा देती है और आलस्य पाप के सागर में फैंक देता है। मर्यादा आश्रम में रखकर वह हमारा क्या लाभ देखता है। हम अपने बच्चों को बाप का नाम क्या बताएं। समाज की आंख में धूल के कण के समान हम कब तक जीएंगी। महाराजा हमें मौत का दण्ड क्यों न देता है। इस प्रकार सोचते–सोचते उसकी आंखों से आंसू निकल पड़े। यह देखकर और भी रोने लग पड़ी।

तीसरे दिन धीरेन्द्र आज्ञा पाकर राजसभा में गया और राजा को नमस्कार कर के कहा—'महाराज, आपकी आज्ञानुसार सब कुछ पूरा कर दिया परन्तु एक प्रश्न का समाधान होने को है'। राजा—'कौन सा प्रश्न'? धीरेन्द्र—'महाराज, वेश्याओं के बच्चों को बाप के नाम के बिना पाठशाला में प्रवेश सुलभ न है। किस का नाम लिखा जाए। इसके लिये महाराज से प्रार्थना है।

मीनकेतु – 'यह प्रश्न बहुत जटिल है। सब शास्त्रों के ज्ञाता राजदरबार के पण्डित मनुस्मृति आदि ग्रन्थों को देखकर अपना निर्णय देंगे। प्रज्ञादत्त, धर्मदत्त और देवदत्त यह तीनों पण्डित अच्छी तरह सोचकर कल मुझे बता दें। धीरेन्द्र तीनों पण्डितों से मिल कर अगले दिन राजा से मिलने के लिये कहकर मंत्रालय को चला गया।

पवनान्दोलितस्वर्णवर्णसहस्रमञ्जरीषु काचिदेका कालिमान्विताप्यवलोक्यते । सा च तत्समीपमुपगतस्य वसनानि मलिनीकरोति । सुरम्यलतास्वेका आकाशवल्ली अपि जीवति । सा हरितपादपानुवृतापि तं बलादाश्लिष्य दिवसेषु शुष्ककाष्ठं विदधाति। देवदत्तः—महाराज, कामं नारी सकलक्षेत्रस्वातन्त्र्ययुता स्यात्परं शिशुप्रजननार्थं सा पतिपारतन्त्र्यमेवार्हति। पितृस्थाने मातुर्नामोल्लेखे शिशुप्रसूतौ पतिबन्धनोन्मुक्ता सा भारतीयनारीस्वरूपमेव विहास्यति । एवं वर्षतौ भेकसङ्घवत् समायातः वर्णसङ्करप्रवाहः देशमिमं दूषयिष्यति" । मीनकेतुः—"भवतां पूर्वपक्षप्रस्तुतिः श्लाघ्या, एकमतोऽहं विद्वद्भिः। साम्प्रतं पितृकोष्ठके कस्य नामोल्लेखः स्यादिति उत्तरपक्षं प्रस्तुवन्तु भवन्तः।" प्रज्ञादत्तः—"महाराज, भवदभिधानपुण्याक्षराण्येव तत्कोष्ठकमलङ्करिष्यन्ति ।" मीनकेतुः—(क्षुब्धः) हुं, वेश्यार्भकाणामहं पिता स्याम् ?

धर्मदत्तः—"महाराज, राजा हि सकलप्रजापिता । देवदत्तः—"महाराज, एतच्छास्त्रसम्मतम् । यतः—

"राजा प्रजापिता प्रोक्तः प्रजायाः पालनात्सदा"

मीनकेतुः—"भवन्तो मां धर्मसङ्कटे पातयितुकामाः"।

प्रज्ञादत्तः—"महाराज, प्रजापापपुण्ययोर् भूपालो निमित्तम्" । धर्मदत्तः—"महाराज, अयं कलङ्कः भवन्नयननिमीलनपरिणामः। भवन्त श्चेन् नारीसम्मानलुण्टाकान् प्राणदण्डेनादण्डयिष्यन्, नायं कलङ्कः राज्ये प्रासरिष्यत् । मनुनोक्तं भवद्भिः कथं व्यस्मरि । शृण्वन्तु भवन्तः—

परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान्नॄन् महीपतिः :
उद्वेजनकरैर् दण्डैश्छिन्नयित्वा प्रवासयेत् ॥
तत्समुत्थो हि लोकस्य जायते वर्णसङ्करः
येन मूलहरोऽधर्मः सर्वनाशाय कल्पते ॥ म. स्मृ. अ. 8

दूसरे दिन सिर पर पगड़ी बांधे, यज्ञोपवीत से सजे, माथे पर तिलक और कन्धों पर रेशमी दुपट्टा रखे हुए तीनों पंडित सभा में सिंहासन पर बैठे राजा को नमस्कार करके उससे सत्कार किये हुए आसनों पर बैठ गये। महाराजा 'पण्डितवर, दूषित नारियों के बच्चों के बाप के नाम के बारे में शास्त्र की क्या मर्यादा हैं ! क्या बाप के स्थान पर माता का नाम लिखा जाना शास्त्रसम्मत और व्यावहारिक हैं'? प्रज्ञादत्त—'महाराज, किसान भूमि में बाज बोते हैं। धरती बीज के अनुसार ही अंकुर पैदा करती है। प्रधान वीर्य है, रज नहीं। इसलिये नारी का नाम पिता के स्थान पर नहीं लिखा जा सकता है। यह न शास्त्र-अनुकूल है और न ही व्यावहारिक है'। धर्मदत्त - 'महाराज, माता का नाम कभी न लिखा जाना चाहिये। हम भारतीय नारी को बहुत ही श्रद्धा से देखते हैं परन्तु सभी नारियां एक ही प्रकार का चरित्र धारण करती हैं, इसमें तो संदेह ही है। गेहूं के खेत में हवा से झूल रही सोने के रंग वाली हजारों मिंजरों में एक कोई काले रंग की भी होती है। उसके पास जो भी जाता है, उसके कपड़ों को काला कर देती है। सुन्दर वेलों में एक आकाशवेल भी होती है। वह हरे पेड़ की प्रार्थना के बिना भी जबरदस्ती उससे लिपट जाती है और कुछ ही दिनों में उसे सुखा कर लकड़ी का रूप दे देती हैं। देवदत्त—'महाराज, नारी को भले ही सब क्षेत्रों में स्वतंत्रता दे दी जाये परन्तु बच्चा पैदा करने के लिये उसका पति के आधीन होना परमावश्यक है। नहीं तो वह भारतीय नारी के स्वरूप को ही खो बैठेगी। इस प्रकार तो वर्षा ऋतु में मेंडक की टोली के समान आने वाला वर्णसंकरों का प्रवाह इस देश को दूषित कर देगा'। महाराजा—'आपके पूर्वपक्ष की अवतारणा बहुत सुन्दर हैं। मैं आप से सहमत हूं। अब पिता के कोष्ठक, में किस का नाम लिखा जाये। इस उत्तर पक्ष पर प्रकाश डालें'। प्रज्ञादत्त—'महाराज, आपके नाम के पवित्र अक्षर ही पिता के कोष्ठक में लिखे जाएंगे'। मीनकेतु—(कुछ गुस्से में) क्या, मैं वेश्याओं के बच्चों का बाप बन जाऊं'? धर्मदत्त—'महाराज, राजा सारी प्रजा का ही पिता होता हैं'। देवदत्त—'महाराज, यह शास्त्रसम्मत है। क्योंकि प्रजा का पालन करने से राजा प्रजा का पिता ही कहलाता है'। मीनकेतु—'आप मुझे धर्मसंकट में डाल रहे हैं'। प्रज्ञादत्त—'महाराज, प्रजा के पुण्य और पाप का राजा ही कारण होता है। धर्मदत्त—'महाराज, यह कलङ्क आपकी लापरवाही से ही जन्मा है। यदि आप नारी का सम्मान लूटने

देवदत्तः—"महाराज, स्वपाणिपाचितम् अस्वादु अपि स्वादुवद् भोज्यम्। भवत्पुण्यनामोल्लेखः बहुफलदः ।" मीनकेतुः—'तत्कथम्" देवदत्तः—"नारी शिशुप्रजनने परतन्त्रा स्थास्यति । राज्ये वर्णसङ्कराः नोदेष्यन्ति । एते बाला-श्रमगताः अनाथाः सनाथताम् अनुभविष्यन्ति । अथ च भवन्तः एतत्कलङ्कस्य पुनरनुदयाय प्रयत्नपराः स्थास्यन्ति । मीनकेतुः—(मनसि) "एते पण्डिताः स्पष्टवादिनः न चाटूकारोक्तिप्रियाः । एतैः पराजितोऽहम्" । (प्रकाशम्) "विद्वांसः, अहं भवन्मतं न परिवर्तयितुकामः । 'हितं च पथ्यं च वचः सुदुर्लभम्' कोष्ठके(पालनात्)इति शब्दानुगम्यमानः मे नामोल्लेखः नापरकरः । एतेनानाथाः सनाथाः । अहं चापि निष्कलङ्कः । भुजगोऽपि मृतः । दण्डोऽपि स्वस्थः ।" पण्डितास्तन्मतमनुमोदमानाः 'साधु साधु' इत्यभाषन्त । ततो महाराजेन सविधि सभाजिताः सदसि लब्धप्रतिष्ठास्ते पण्डिताः स्वाश्रमान् प्रययुः ।

अथ नारीदेहव्यापारविमुक्ते मीनकेतुराज्ये व्यापारः धातूनां न नारी-देहानाम् । विक्रयः खाद्यवस्तूनां न कन्यानाम् । उदयः सज्जनानां न दुर्जनानाम् । दाहः शवदेहानां न निर्यौतुकयुवतीनाम् । दन्तभङ्गः विषगर्भसर्पाणां न वृद्धानाम् । तत्र न दुराचारो न व्यभिचारो न भ्रष्टाचारः । एवं सकलकलङ्कविमुक्ते मीन-केतुराज्ये प्रभाकरः सुप्रभः, चन्द्रश्चन्द्रिकान्वितः, मेघाः सलिलधराः, केदाराः सस्यैः शुकवर्णयुताः, भूगर्भः धातुसम्भृतः नगा विविधवनस्पत्यलङ्कृता अदृश्यन्त । ततोऽरुन्धत्यनुगम्यमानो महर्षिर् वशिष्ठः यदा कदा मीनकेतुराज्यं पुनः पदार्प-णेन भूषयामास ।

**

1. व्यालान् निर्विषान् कर्तुं तेषां दन्तभङ्गः क्रियते ।
मीनकेतुराज्ये वृद्धानां दन्तपातो नालक्ष्यत ॥

वालों को प्राणदंड दे देते तो यह कलंक राज्य में पैर न पसारता। मनु के वचन को आप कैसे भूल गये। सुनो—राजा को चाहिये कि दूसरों की नारी को छूने वाले लोगों को भयानक दण्ड देकर उनके हाथ पैर काटकर राज्य से बाहर निकाल दे नहीं तो फिर वर्णसंकरों के पैदा होने से उपजा हुआ पाप राज्य का सर्वनाश ही कर देता है'। देवदत्त 'महाराज, अपने हाथ से बनाया भोजन यदि फीका भी हो तो भी उसे स्वादिष्ट समझ कर खा लेना चाहिये। आप के नाम के लिखे जाने से बहुत लाभ होंगे'! मीनकेतु—'यह कैसे?' देवदत्त—'महाराज, नारी बच्चा पैदा करने में परतन्त्र रहेगी। राज्य में वर्ण-संकर पैदा न होंगे। बालाश्रम में रहने वाले यह बच्चे अपने को अनाथ न समझेंगे। आप इस कलंक को दबाने के लिये सावधान रहेंगे'। मीनकेतु—(मन में) 'यह पंडित स्पष्टवादी हैं। इन्हें चापलूसी अच्छी न लगती है। मैं इनसे हार गया हूं'। (प्रकट) 'पण्डितवर, मैं आपके मत को बदल न सकता हूं। 'हितकारी और प्यारा वचन दुर्लभ होता है'। पिता के कोष्ठक में मेरे नाम के साथ यदि (पालने से) ऐसा शब्द लिख दिया जाये तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। इससे अनाथ सनाथ हो जाएंगे और मैं भी निष्कलंक रहूंगा। 'सांप मरे न लाठी टूटे'। पंडितों ने 'बहुत अच्छा' कहते हुए उसके मत का अनुमोदन कर दिया। फिर महाराज के द्वारा विधिपूर्वक सत्कृत किये हुए, सभा में मान पा कर वह पंडित अपने घरों को चले गये।

इसके बाद वेश्यावृत्ति से छुटकारा पाये मीनकेतु के राज्य में व्यापार धातुओं का था, नारी शरीर का नहीं। विक्रय खाने-पीने की चीजों का था, कन्याओं का नहीं। उन्नति सज्जनों की थी, दुर्जनों की नहीं। दाह मुर्दों का था दहेज न लाने वाली युवतियों का नहीं। दन्तभंग विषैले सर्पों का था, बूढ़ों का नहीं। वहां न दुराचार था, न व्यभिचार था और न भ्रष्टाचार था। इस प्रकार सब कलंकों से हीन मीनकेतु के राज्य में सूर्य सुन्दर प्रभा वाला, चांद छिटकती चांदनी वाला, बादल पानी से भरे, खेत खेती से हरे-भरे, भूमि-गर्भ धातुओं से भरपूर और पर्वत अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियों से सजे हुए थे। तब महर्षि वशिष्ठ अरुन्धती के साथ मीनकेतु के राज्य में फिर पदार्पण करने लगे।

**

अश्रुसंयोगः

अथ मङ्गलक्षणेषु तनयावरान्वेषणे विलुप्तगतिविरामः सुखरामो विप्रपुरं प्रचचाल। मनोहरणालये सुरम्यःकक्षः विविधविधिविभूषितः। मञ्चककोणयोः गुल्मस्तवकौ विद्युद्व्यजनप्रकम्पमानौ कुलद्वयमिलनमिव सूचयतः। वरतातः मनोहरणः मुखद्वारमुपगम्य कन्यापक्षाश्रितानां कृतस्वागतस्तानन्तः प्रवेशयति। वामासनेषु कन्याकुलजनाः दक्षिणासनेषु च वरवंशभवाः स्थानान्यलङ्कुर्वन्।

मनोहरणः—(वरतातः) श्रीमच्चरणारविन्दपातेनालङ्कृतं मे निकेतनम्।

सुखरामः—भवत्पुण्यदर्शनैर् वयं धन्याः भवामः।

मनोहरणः जलपाने भवन्तः किमादास्यन्ति, उष्णं शीतलं वा?

सुखरामः—अहो श्रीमन्तः, किमुच्यते भवद्भिः किं कन्याकुलजानां वरतातालये कदाचिज्जलपानाधिकारः वर्तते?

मनोहरणः—परं साम्प्रतम् आवयोः सम्बन्धविनिश्चयः लतायाम् उर्वारुकमिव नभसि एव लम्बते। परिहरतु सङ्कोचम्।

सुखरामः—(आत्मगतम्) न जाने कीदृशः पणः एभिः अस्मत्समक्षम् उपस्थापयिष्यते। (प्रकाशम्) श्रीमन्तः, वटपादपाधस्तात् बहवः क्षुपाः[1] जीवनं लभन्ते समयं च गमयन्ति। कल्पतरुतलमाप्तः[2] न कश्चिज्जनः शून्यपाणिर्निवर्तते। भवन्तः महाजनाः वयं केवलं कन्याधनाः। अस्माकं कुलजनाः कन्याश्वशुरग्रामकूपसलिलम् अपि अपेयं बुबुधिरे, जलपानादेस्तु का कथा।

मनोहरणः—(मनसि) अतिशालीनः, शिष्टाचारयुतः विनम्रोऽयं जनः नैनं 'नेति' वदिष्यामः। (प्रकाशम्) कन्या कियत्-शिक्षिता?

---

1. क्षुपाः-लघुपादपाः। 'स्थाणुर्वा ना ध्रुवःशङ्कुः ह्रस्वशाखाशिफः क्षुपः' (इत्यमरः)

2. कल्पतरुः—देववृक्षः। ''पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः।
सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसिवा हरिचन्दनम्''॥
(इत्यमरः)

आंसुओं का संयोग

अब अच्छे मुहूर्त में पुत्री के लिये वर ढूंढने के निमित्त लगातार घूम रहा सुखराम विप्रपुर को चल पड़ा। मनोहरण के घर में अनेक प्रकार से सजाया हुआ एक कमरा। मेज के कोणों पर दो गुलदस्ते पंखे की हवा से कांपते हुए मानों दो कुलों के मिलाप को सूचित कर रहे हैं। लड़के का पिता मनोहरण मुख्य द्वार पर जा कर कन्यापक्ष वालों का स्वागत करके उन्हें अन्दर ले आता है। बाईं ओर कन्याकुल के लोग और दाईं ओर वरपक्ष के लोग आसनों पर बैठ गये।

मनोहरण —आप के चरण पड़ने से मेरा घर पवित्र हो गया।

सुखराम —आप के पवित्र दर्शनों से हम कृतार्थ हो गये।

मनोहरण —जलपान में आप कुछ ठंडा लेंगे या गर्म ?

सुखराम —ओहो महाराज, आप क्या बोल रहे हैं। कन्या कुल के लोग वर-पिता के घर में क्या जलपान कर सकते हैं ?

मनोहरण —परन्तु अभी हमारे सम्बन्ध की बात तो बेल पर कद्दू के समान आकाश में ही लटक रही है। आप संकोच न करें।

सुखराम —(मन में) मालूम नहीं यह कैसी शर्त हमारे सामने रखेंगे। (प्रकट) श्रीमान जी, वटवृक्ष के नीचे बहुत से पौदे जीवन पाते हैं। कल्पतरु के नीचे गया कोई भी आदमी खाली हाथ न लौटता है। आप बड़े आदमी हैं। हमारे पास तो कन्या ही धन है। हमारे पूर्वज कन्या के ससुरग्राम के कुएं का पानी तक न पीते थे जलपानादि की तो बात ही क्या।

मनोहरण —(मन में) यह आदमी बहुत ही सभ्य शिष्टाचारी एवं विनम्र है। इसको 'नहीं' न करेंगे। (प्रकट) लड़की कितनी पढ़ी है ?

सुखराम —बी० ए० के अन्तिम वर्ष में है।

माधव —(मनोहरण का भाई) लड़की लम्बी कितनी है। हमारा अनिल ऊंचे कद का है। लम्बाई का समन्वय जरूरी है।

सुखराम —यह ठीक ही है।

सुखरामः —अन्तिमोऽयं वर्षः स्नातकोपाधेः ।

माधवः —(मनोहरणसहोदरः) बाला कियती लम्बा । अस्माकं बालकोऽनिलः समुन्नतकायः । उन्नततासामञ्जस्यम् अपेक्ष्यते ।

सुखरामः —तत्तथा वर्तते ।

माधवः —बालायाः घनालये कियद्धनं सञ्चितम् ?

सुखरामः - (मनसि) अमङ्गलोऽयं प्रसङ्गः प्रारब्ध एतेन महानुभावेन । न विलज्जन्ते एते जना एवं भाषमाणाः । एतेनैतेषां यौतुकतृष्णा स्पष्टं लक्ष्यते । उमया पूर्वमेव मातृमुखेनाभाणि यत्सा यौतुकेप्सूनां सदने बलिदानार्थं न प्रयास्यति । परमहं प्रतिकूलं न वदिष्यामि न च विनम्रतातिक्रमणं करिष्ये । अद्यत्वे कन्यायै वरान्वेषणम् उडुपेन सागरतरणमिव न सुकरम् । (प्रकाशम्) श्रीमन्तः, कन्याकुलजनाः प्रथमदिवसादेव वरवंशजातानां दासाः गण्यन्ते । एतस्मिन् कूपकुण्डे समस्तकन्यापितरश्चिरादचिराद् वा निपतन्ति । परं परेषां विवशतां न बुध्यन्ते । वयमकिञ्चनाः । कन्याशिक्षापूर्तिरपि दुष्करा प्रतीयते ।

मनोहरणः—परिहरतु प्रसङ्गमिमं, प्रस्तुतमनुसरामः ।

माधवः - (मनसि) अहञ्चेद् रुद्धवागिह, सहोदरेण किमर्थमाहूतः । (उत्थातुमिच्छन् प्रकाशम्) अहं गच्छामि । कार्यालयसमयः अतिक्राम्यति ।

मनोहरणः—(तस्य भावं विजानन्) तिष्ठन्तु भवन्तः स्वल्पकालाय । द्रुतमेव कृतकृत्याः भविष्यामः ।
(ततः सुखरामं प्रति) किं कन्या दृष्टिपाताय समुपस्थापयिष्यते ?

सुखरामः —भवदाज्ञावशंवदाः वयम् । परं साम्प्रतं भवतां राजकुमारोऽपि न नः नयनपथमायातः ।

मनोहरणः—(उच्चैः) भो अनिल, आयाहि इतः ।
(उद्भिद्यमानश्मश्रुसमलङ्कृतमुखः[1] युवा प्रविश्य भाविश्वशुरपादौ अभिवन्द्य वेत्रासने समुपविशति)

सुखरामः —(अनिलं प्रति) जात, कां श्रेणीम्) अलङ्कुरुते भवान् ?

---

1. उद्भिद्यमानेन निर्गच्छता श्मश्रुणा समलङ्कृतं मुखं यस्य सः ।

माधव —लड़की का बैंक के खाते में कितना धन है ?

सुखराम —(मन में) इस महानुभाव ने यह तो असुहावना प्रसंग छेड़ दिया। ऐसा कहते हुए इन लोगों को शर्म नहीं आती। इस से इन की दहेज की तृष्णा का आभास हो रहा है। उमा ने माता के द्वारा यह पहले ही कह दिया है कि वह दहेज के लालचियों के घर में बलिदान के लिये न जायेगी। परन्तु मैं प्रतिकूल न बोलूंगा न ही सभ्यता का उलङ्घन करूंगा। आजकल कन्या के लिये वर ढूंढना किश्ती से समुद्र को पार करने के समान आसान न है। (प्रकट) महाराज, कन्याकुल के लोग पहले दिन से ही वरवंश के दास गिने जाते हैं। सब कन्याओं के पिता देर-सबेर में इस कूपकुण्ड में गिरते हैं परन्तु दूसरों की मजबूरी को न समझते हैं। हम गरीब लोग हैं। लड़की की पढ़ाई पूरी करनी भी कठिन हो रही है।

मनोहरण —इस प्रसङ्ग को छोड़ों, अब की बात करते हैं।

माधव —(मन में) यदि मुझे यहां कुछ नहीं बोलना है तो भाई ने मुझे बुलाया ही क्यों था। (उठने के लिये तैयार प्रकट) मैं जाता हूं। आफिस के लिये लेट हो रहा हूं।

मनोहरण —(उसके मन को पहचानता हुआ) आप थोड़ी देर के लिये ठहरें। अभी निवृत्त हो जाएंगे। (फिर सुखराम के प्रति) क्या आप लड़की को दिखा सकेंगे ?

सुखराम —हम आप के आज्ञाकारी हैं। पर अभी तो हमने आप के राजकुमार को भी न देखा है।

मनोहरण —(ऊंचे से) अनिल, इधर आओ।
(निकल रही दाढ़ी से सजे मुख वाला, युवा लड़का आकर अपने भावी सास-ससुर को प्रणाम करके कुर्सी पर बैठ जाता है।

सुखराम —(अनिल के प्रति) बेटे, आप किस श्रेणी में पढ़ते हो ?

अनिल —अर्थशास्त्र की अन्तिम वर्ष की परीक्षा देने वाला हूं। (पिता को देख कर) आप को माता अन्दर बुला रही है।

मनोहरण —(अन्दर जा कर नये वस्त्र पहने कल्याणी को देख कर) आप क्या बोलना चाहती हैं।

अनिलः —अर्थशास्त्रान्तिमवर्षपरीक्षायै प्रयतमानो भवामि ।
(पितरं निरीक्ष्य) तात, जननी भवन्तमन्तः दिदृक्षति ।

मनोहरणः—(अन्तः प्रविश्य नवोज्ज्वलवसनालङ्कृतकल्याणीमालोक्य) किं भाषते भवती ?

कल्याणी—यौतुकविषये सकलं पूर्वमेव निर्धारयताम् । अस्माकं सुतः विद्यालङ्कृतः, सर्वगुणसम्पन्नः रूपवांश्च । एतत्कृते कन्यापितरः लक्षं मुद्रा अपि दातुं प्रस्तुता अवलोक्यन्ते । दूरदर्शनाभिशीतनयन्त्रवस्त्रप्रक्षालन-यन्त्रादिसकलवस्तूनि अद्यत्वे उपहारीक्रियन्ते ।

मनोहरणः—किं भवती तनयविक्रयमनाः ?

कल्याणी —अहं वदामि, एष कालः पुनर् हस्ते नायास्यति ।

मनोहरणः—परं वयमपि त्रितनयायुताः । कथमुन्मुक्ताः भविष्यामः ।

कल्याणी —भवन्तो मम मतानादरकराः । किमहं कुर्याम् । अनवधानतया खर्गे करोन्मुक्ते तद्ग्राही सदा पश्चात्तापमनुभवति ।

मनोहरणः—(मनसि) लूताकीटः[1] स्वबन्धनाय स्वयं जालं वयते । नारी एव नार्याः रिपुः । (सकोपं भार्यां निरीक्ष्य प्रकाशम्) अस्तु द्रक्ष्यामि । (इत्यभिधाय पुनरतिथिकक्षं प्रविश्य सुखरामं भाषते) गृहस्वामिनी भोजनार्थं पृच्छति ।

सुखरामः —अलमायासेन । वयं साम्प्रतं जिगमिषामः ।

मनोहरणः—(प्रयातुमुद्यतं सुखरामं प्रति) कुमारीनिरीक्षणदिवसं न निश्चितम् ।

सुखरामः भवन्तः स्वसुविधामनुसरन्तः कस्मिन्नपि दिवसे आयातुमर्हन्ति । 'सुखरामः सबान्धवो निर्गच्छति । मनोहरणोऽपि सत्कारज्ञापनाय मुख्यद्वारं यावत् अनुयाति ।'

कल्याणी —(पत्युः समीपमेत्य) निर्गता अतिथयः ?
कुमारीमालोकितुं किं दिवसं सुनिश्चितम् ?

---

1. लूताकीटः—ऊर्णनाभः । (मकड़ी इति ख्याता) 'लूता स्त्री तन्तुवायोर्ण-नाभमर्कटकाः समाः' (इत्यमरः)

कल्याणी —दहेज के बारे में पहले ही सारी बात निश्चित कर लेना। हमारा लड़का सुशिक्षित गुणी और सुन्दर है। इसके लिये कन्याओं के पिता लाख रुपया देने को भी तैयार हो जाएंगे। टी० बी०, फ्रिज और कपड़ा धोने की मशीन यह सब कुछ लोग आज कल दहेज में देते हैं।

मनोहरण —क्या आप लड़के को बेचना चाहती हो?

कल्याणी —मैं कहती हूं यह समय फिर हाथ न आएगा।

मनोहरण —पर हमारी भी तीन लड़कियां हैं। कैसे छुटकारा पाएंगे।

कल्याणी —आप मेरी बात को मानते न हैं। मैं क्या करूं। लापरवाही से पक्षी हाथ से छूट जाता है तो पकड़ने वाला सदा पछताता रहता है।

मनोहरण —(मन में) मकड़ी अपने बंधन के लिये स्वयं जाल बुनती है। नारी ही नारी की शत्रु। (कुछ गुस्से में पत्नी को देख कर प्रकट) कोई बात नहीं, देख लूंगा। (ऐसा कह कर फिर अतिथि कक्ष में आकर सुखराम के प्रति) घर की मालकिन भोजन के लिये पूछती है।

सुखराम —आप कष्ट न करें। हम अब जाना चाहते हैं।

मनोहरण —(जाने के लिये तैयार सुखराम के प्रति) लड़की को देखने का दिन निश्चित नहीं किया।

सुखराम —आप अपनी सुविधा से किसी भी दिन आ सकते हैं। (सुखराम अपने बन्धुओं के साथ चला जाता है। मनोहरण भी सत्कार जताने के लिये मुख्यद्वार तक पीछे जाता है)

कल्याणी —(पति के पास आकर) अतिथि चले गये? लड़की देखने के लिये कौन सा दिन निश्चित किया है?

मनोहरण —हम कभी भी उन के घर जा सकते हैं।

कल्याणी —मुहुर्त पूछ कर जाएंगे।

मनोहरण जिससे तुम्हें बहुत सारे उपहार मिल सकें।

कल्याणी —आप के व्यङ्ग्य वचन तलवार के प्रहार से भी ज्यादा बींधते हैं। वहां पीड़ा खून के प्रवाह के साथ बाहर निकल जाती है। यहां तो केवल अन्दर ही अन्दर जलना पड़ता है।

मनोहरणः—वयं कदापि तद्गेहं गन्तुमर्हामः ।

कल्याणी —मुहूर्तं सम्पृच्छ्य गमिष्यामः ।

मनोहरणः– येन भूयांस्युपायनानि[1] प्राप्नुयास्त्वम् ।

कल्याणी —भवतां व्यङ्ग्यवचनानि करवालप्रहारादपि तीव्रं विध्यन्ति । तत्र वेदना रुधिरप्रवाहेण बहिः प्रयाति । अत्र तु केवलमन्तर्दाहः ।

मनोहरणः—अपरैरसह्या ते रसनामधुधारा केवलं मया सोढा ।

कल्याणी —मया भवद्भिः समं यथा जीवनक्षणाः नीतास्तदहमेव जानामि ।

मनोहरणः—प्रार्थय परमेश्वरं परजन्मनि मादृशभर्तुः समागमाभावाय ।

कल्याणी —भवान् कथं विजानाति यदहं परजन्मन्यपि नारीजन्मनाभिशप्ता भविष्यामि ।

मनोहरणः—भवादृशी कर्कशा नारी कदाचित् पुरुषयोनिमाप्तुमर्हति ? (मनोगतम्) न जाने मम प्राक्तनजन्मनः कीदृशदुष्कर्मपरिणामोऽयम् । ईदृशी कटुतायुता पतिव्यवहारानभिज्ञाऽर्धाङ्गिनी मयाऽत्रापि । सूर्यकिरणप्रसारसममेवैतस्या भाले कोपरेखा निस्सरन्ति । (निःश्वस्य) ममानर्गलव्यसनितयैवाहमेतादृशानादरतां प्रापितः । नास्याः दोषः ।

कल्याणी —(कृत्रिमहास्यं विहस्य) भवन्तः सरलप्रसङ्गेष्वपि एवमेव क्षुब्धतामाश्रयन्ति । (इत्यभिधायान्तः प्रयाति । मनोहरणो लेखापुस्तकमुद्घाटय निरीक्षितुमारभते) ततः सा (आत्मगतम्) पुरुषाः सदा पुरुषस्वास्मितायुताः नारीषु अभिमानं प्रदर्शयन्ति । परं नः संस्कृतौ पतिः परमेश्वरः । अतोऽहं विनम्रतां धारयेयम् । ततः क्षीरमुष्णीकृत्य चषकमादाय भर्तृपादस्थिता समन्दस्मितं प्राह— अहं क्षन्तव्या भवामि । स्वीकुर्वन्तु एतत्पयः । सौभाग्यात् सुतस्य सत्यङ्कारक्षणाः समायाताः । मङ्गलवेलायां वैमनस्यं व्यतिकरकरं न सिध्येत् । कन्यासाक्षात्काराय कदा यास्यामः ।

मनोहरणः—(पयसा द्रवीभूतमानसः) आगामिगुरुवारे प्रयास्यामः ।

---

1. उपायनानि उपहाराः ।

मनोहरण —दूसरों से न सहने योग्य तेरी जीभ की मीठी धारा को मैंने ही सहन किया है ।

कल्याणी —मैंने आप के साथ जैसे जीवन बिताया है उस का मुझे ही पता है ।

मनोहरण —परमात्मा से प्रार्थना करो कि अगले जन्म में मेरे जैसे पति का समागम न बने ।

कल्याणी —आप को कैसे पता है कि मैं अगले जन्म में भी नारी बनूंगी ।

मनोहरण आप जैसी कर्कश नारी कभी पुरुषयोनि को प्राप्त कर सकती है ? (मन में) पता नहीं मेरे पूर्व जन्म के कैसे दुष्कर्म का परिणाम है । इस प्रकार की कटुस्वभाव वाली पतिव्यवहार को न जानने वाली पत्नी मुझे मिली है । सूर्य की किरणों के साथ ही इसके मस्तक पर तेबर पड़ जाते हैं । (सांस ले कर) मेरी अति व्यसनिता ने ही मुझे यह अनादर दिखाया है । इस का क्या दोष है ।

कल्याणी —(बनावटी हंसी हंस कर) आप छोटी छोटी बातों पर भी ऐसे ही नाराज हो जाते हैं । ऐसा कह कर अन्दर चली जाती है । मनोहरण अपना वही—खाता देखने लग जाता है । कल्याणी (मन ही मन) पुरुष सदा पुरुषत्व के अभिमान में नारी पर अपना प्रभुत्व जमाते हैं । परन्तु हमारी संस्कृति में पति ही परमेश्वर है । इसलिये मुझे झुक जाना चाहिये । फिर दूध गर्म कर के प्याले के साथ पति के पास जा कर मुस्कराती हुई बोली- 'मुझे क्षमा कर दो, यह दूध पी लो । सौभाग्य से पुत्र की सगाई का समय आया है । शुभ काम में मनमुटाव विघ्नकारक न हो । लड़की को देखने कब जाएंगे ।

मनोहरण —(दूध से, पिघले मन वाला) अगले वृहस्पति को जाएंगे ।

कल्याणी —अपनी भावज और बहन को भी साथ ले जाना चाहती हूं ।

मनोहरण —यह मुझे ठीक न लग रहा है । वह गरीब हैं । सत्कार का भार कैसे सहेंगे ।

कल्याणी —(निर्धन शब्द के वाण से बिंधी हुई जैसे) जैसा आप को अच्छा लगता है । यह कहकर चुपचाप अन्दर चली गई । (रामपुर में मध्यवर्ग के परिवार का घर । धरती पर चटाई बिछी है । दीवारों

कल्याणी —मम भ्रातृजायां भगिनीं चापि सह निनीषामि ।

मनोहरणः—नैतन्मे रोचते । निर्धनास्ते सत्कारभारं कथं सहिष्यन्ते ।

कल्याणी —(निर्धनशब्दशल्यविद्धेव) यथा भवद्भ्यो रोचते । (इत्यभिधाय तूष्णीमन्तः प्रयाति) रामपुरे मध्यमवर्गपरिवारस्य निकेतनम् । कक्षतलं कटास्तृतम् । भित्तौ देवतानां चित्राणि । मङ्गलवेलासूचकः ईशानकोणे जलपूर्णकुम्भः । मञ्चके कुसुमस्तवकद्वयम् । तदन्तराले मसीपात्रम् लेखनी, कानिचित्, पुस्तकानि च धारितानि । अतिथिसत्काराय द्वारे गोधूमचूर्णविनिर्मित-अष्टदलालेख्यम् । अष्टदलानि विभूषयितुं मध्ये कुङ्कुमविन्दवः) ।

भामिनी —(पतिं प्रति) अनुमिनोमि, एकादशहोराभ्यर्णे समायास्यन्ति ।

सुखराम! विप्रपुरप्रचलितवाष्पयानमत्र पादोनैकादशहोरायां प्राप्नोति ।

भामिनी - उपहारप्रसङ्गे किं विनिश्चितम् ।

सुखरामः —वरायैकाधिकशतं, श्वशुराभ्यामेकैकविंशतिं तनयाभ्यश्च एकादशैकादशमुद्राः प्रदास्यामः ।

भामिनी —किमेतेन ते सन्तुष्टाः भविष्यन्ति ?

सुखरामः —यात्रादिमभागे एव चेत्पाथेयं[1] समाप्तं स्यातदा मार्गान्तं यावत् यात्रिणः का स्थितिः ।

भामिनी —एतद्भवन्तः सत्यं भाषन्ते परं कश्चिदन्तरायो नापतेत् । उमायै तत्समक्षमुपस्थितिर् न रोचते ।

सुखरामः - हुं, एतत्किम् । वयमपमानिता न स्याम । उमां पूर्वमेव प्रबोधयतु भवती ।

भामिनी —प्रयासपरा भवामि । साऽवगतरहस्या तेषां लोलुपतायाः । स्थानद्वये कन्यापितरौ प्रवञ्च्य पश्चात् 'नेति' कृतम् ।

सुखरामः —ईर्ष्यालुबान्धवाः अपरेषां कार्यव्याघाताय तथ्यविपरीतमपि प्रजल्पन्ति । कच्चित् अस्मान् व्यापदि क्षेप्तुम् उमामनो विपरीतयितुमेवायमारम्भः स्यात् ।

---

1. शल्यं—शङ्कुः । पाथेयं—मार्गभोजनम् ।

पर देवताओं के चित्र लटके हैं। ईशाण कोण में शुभ समय का सूचक जलकुंभ। मेज पर दो गुलदस्ते। उनके बीच में पैन, दवात और कुछ पुस्तकें रखी हुई हैं। अतिथियों के स्वागत के लिये द्वार पर गेहूं के आटे से बना अष्टदल। उसे सजाने के लिये बीच-बीच में लाल चन्दन के बिन्दु)

भामिनी (पति के प्रति) मेरे विचार में ग्यारह बजे के लगभग आएंगे

सुखराम —विप्रपुर से चली गाड़ी पौने ग्यारह बजे यहां पहुंचती है।

भामिनी —भेंट देने के बारे में क्या सोचा ?

सुखराम – लड़के को एक सौ एक, सास-ससुर के लिये इक्कीस-इक्कीस और पुत्रियों के लिये ग्यारह-ग्यारह देंगे।

भामिनी – क्या इससे वह प्रसन्न हो जाएंगे ?

सुखराम —यात्रा के पहले भाग में ही यदि रास्ते का भोजन समाप्त हो जाए तो रास्ते के अन्त तक यात्री की क्या दशा होगी।

भामिनी —यह आप सच कहते हैं परन्तु कोई विघ्न न हो जाए। उमा उनके सामने जाना पसन्द न करती है।

सुखराम —अच्छा, यह क्या। हमारा अपमान न होना चाहिये। उमा को पहले ही समझा लेना।

भामिनी —प्रयत्न कर रही हूं। उसे इस रहस्य का पता चल गया है कि वह लालची हैं। दो जगह कन्या के माता-पिता को ठगकर पीछे से इन्कार कर दिया।

सुखराम – ईर्ष्यालु बन्धु दूसरों का काम बिगाड़ने के लिये झूठ भी बोल देते हैं। हमें संकट में डालने के हेतु उमा के मन को बदलने के लिये ही यह शरारत न हो।

भामिनी —बन्धुओं का विद्वेष आग के ताप से भी भयानक होता है। पर दूसरी ओर दहेज के लालचियों की भी विचित्र ही गति होती है।

सुखराम —अरे, वह आ रहे हैं। स्वागत के लिये आगे जाते हैं।

(फिर मनोहरण, उसकी पत्नी तथा अनिल प्रवेश करते हैं। उमा खिड़की से देखती हुई (मन में) लड़का सुन्दर है। पार्वती की कृपा से यदि समागम हो गया तो मेरा भाग्योदय हो जाएगा)

भामिनी —बान्धवविद्वेषोऽनलतापादपि समधिकं भीतिप्रदः । परमपरतो यौतुकार्थिनामपि विचित्रैव गतिः ।

सुखरामः —अहो ! समायान्ति ते । स्वागतार्थम् अग्रतो व्रजामः ।

(ततो मनोहरणस्तस्य पत्नी अनिलश्च प्रविशन्ति) उमा वातायनान्निरीक्षमाणा (मनसि) युवा रमणीयाकृतिः । पार्वतीप्रसादादेतत्समागमो मे भाग्योदयकरः ।

सुखरामः —भवत्पादपातेन मे निकेतनं पावनतां गतम् । (अङ्गुलिसङ्केतेन) अलङ्क्रियन्तामिमान्यासनानि । (ततः सर्वे उपविशन्ति)

भामिनी —(उमां प्रति) प्रयाहि सजलपात्रा । अहं चायं प्रस्तुतं करोमि । (प्रयान्तीं पुनराह) अवधेहि, नग्नशिरस्का मा भूयाः (उमा वेणीद्वयम् उभयस्कन्धयोः नर्तयन्ती दक्षिणाक्ष्णा अनिलं वामेन च कल्याणीं निरीक्षमाणा जलपात्राणि मञ्चके संस्थाप्य प्रयाति)

अनिलः —(मनसि) बाला गौरवर्णा स्फूर्तियुता च, मातुर्यौतुकेप्सा चेन्न बाधाकरी, अङ्गीकृतैषा मया ।

सुखरामः —(वार्ताप्रसङ्गमुत्पादयितुम्) केन वाष्पयानेन समायाताः भवन्तः ?

मनोहरणः—अष्टवादनवाष्पयानेन समायाताः वयम् । सार्धहोराद्वयेनात्र प्राप्ताः ।

सुखरामः —सदनमाप्तुं कच्चित्कष्टं तु नानुभूतम् ?

मनोहरणः –नहि, त्रिचक्रिकावाहकेनानायासमत्र प्रापिताः । (ततो भामिनी उमा च अल्पाहारनिमित्तं पक्वमधुरलवणपदार्थपूरितपात्राणि सुचारुमञ्चके अधारयताम् ।)

सुखरामः —प्रारभन्तां कृपया ।

कल्याणी —स्वादवः सकलपदार्थाः ।

भामिनी —उमा पाककर्मणि सिद्धहस्ता[1] वर्तते ।

सुखरामः —(उमां प्रति) पुत्रि, प्रयाहि त्वमभ्यन्तरम् । परीक्षा ते सन्निहिता । स्वाध्यायलग्नमानसा भवेस्त्वम् । (उमा तिर्यङ्नेत्रेणानिलं वीक्षमाणा निर्गच्छति ।

1, सिद्धहस्ता—निपुणा ।

भामिनी —(उमा के प्रति) तूं पानी ले जा । में चाय तैयार करती हूं। (जा रही को फिर बोली) देखो, नंगे सिर न जाना । (उमा दो गुतों को कन्धों पर नचाती हुई दाईं आँख से अनिल को ओर बाईं आँख से कल्याणी को देखती हुई जलपात्र मेज पर रखकर चली गई)

सुखराम —आप के चरण पड़ने से मेरा घर पवित्र हो गया। (उंगली से दिखाता हुआ) यह आसन ग्रहण करो (फिर सब बैठ जाते हैं)

अनिल —(मन में) लड़की गौरवर्ण और चुस्त है।यदि माता की दहेज की इच्छा बाधक न हुई तो मैंने इसे स्वीकार कर लिया है।

सुखराम —(प्रसङ्ग छेड़ने के लिये) आप किस गाड़ी से आए।

मनोहरण —हम आठ बजे की गाड़ी से आए हैं। अढ़ाई घण्टे में यहां पहुंचे।

सुखराम —घर पहुंचने में कोई कष्ट तो न हुआ है?

मनोहरण —नहीं रिक्षा वाले ने हमें आसानी से पहुंचा दिया। (फिर भामिनी और उमा ने अल्पाहार के लिये तैयार किये मीठे नमकीन पदार्थों से भरे पात्रों को मेज पर रख दिया)

सुखराम —कृपया प्रारम्भ करो।

कल्याणी —सभी चीजें स्वादिष्ट हैं।

भामिनी —उमा रसोई के काम में कुशल है।

सुखराम —(उमा के प्रति) पुत्री, तुम अन्दर जा कर पढ़ो। आप की परीक्षा निकट है। 'उमा टेढ़ी आंख से अनिल को देखती हुई चली जाती है'।

मनोहरण विवाह की प्रथा निभाने के लिये कौन सा दिन निश्चित किया है?

सुखराम —हमारा कुलपुरोहित मार्गशीर्ष का पन्द्रहवां दिन शुभ बताता है।

मनोहरण —हम इस का अनुमोदन करते हैं। तैयारी के लिये पर्याप्त समय है।

सुखराम —हम गरीब हैं। हमारे पास केवल कन्या ही धन है।

कल्याणी —(पति की ओर देखती हुई तेवर के साथ मन में) यदि गरीब हैं तो हम क्या करें। आज के युग में लड़कियों की कमी नहीं।

मनोहरण —(पत्नी के भावों को समझ कर) यथाशक्ति प्रयत्न करें जिससे समाज के सामने हमारा सिर न झुके।

मनोहरणः—परिणयप्रथापूरणाय कः समयः विनिश्चितः भवद्भिः ?

सुखरामः —अस्माकं कुलपुरोहितः मार्गशीर्षपञ्चदशदिवसं शुभं वदति ।

मनोहरणः—वयमनुमोदामहे भवन्मतम् । पर्याप्तः समयः अपेक्षितसङ्ग्रहणाय ।

सुखरामः —अकिञ्चना वयं केवलं कन्याधनमेव धारयामः ।

कल्याणी —पत्यौ विनियोजितनयना त्रिवलिविकृतमस्तका (मनसि) अकिञ्चनाश्चेद् वयं किं कुर्याम । अद्यत्वे बालानां नाभावः ।

मनोहरणः—(भार्याभावानवबुध्य) यथाशक्यं प्रयतन्तां येन वयं समाजे नतमस्तकाः न भवेम ।

सुखरामः –प्रयतिष्यामहे ।

भामिनी —(मनसि) प्रभुरेव नः सहायकः । कथम् उन्मुक्ताः भविष्यामः ।

मनोहरणः—आज्ञापयन्तु साम्प्रतम् ।

सुखरामः —(निश्चितोपहारान् प्रददानः) अङ्गीकुर्वन्तु श्रीमन्तः पुष्पाक्षतानिमान् । (भामिनी कल्याण्यै मोदकपिटकं प्रददाति । सापि अन्यमनस्केव[1] गृह्णाति) ।

मनोहरणः—गच्छामः साम्प्रतम् । अन्तराले यदा कदा दर्शनानि भवेयुः । (भामिनी सुखरामश्च मुख्यद्वारं यावत् सम्मानज्ञापनाय व्रजतः । उमा कोष्ठद्वारादनिलं सस्नेहं पश्यति)

भामिनी —भर्तः, बालकस्तु निर्व्यसनः सौम्यप्रकृतिश्च परं मातुर्भावविकृतिं निरीक्ष्य विकम्पते मे हृदयम् ।

सुखरामः —भवती मा क्लेशयतु मानसम् । उमानिर्वाहः अनिलेन न तत्पितृभ्याम् ।

भामिनी —अद्यत्वे यौतुकार्थिनः वधूभिः सह अवर्णनीयाभद्रव्यवहारम् आचरन्ति । तेन बिभेति मे मनः ।

सुखरामः —मङ्गलप्रसङ्गाः नैवंविधविचारास्पदम् ।

भामिनी —परं दूरदर्शनाभिशीतनयन्त्रयोः कुतः प्रबन्धं करिष्यामः । महार्घता मुखं व्यादाय भक्षयितुमिव धावति । भवद्वेतनेन परिवारनिर्वा-

1. अन्यमनस्का—उदासीना यथा ।

सुखराम प्रयास करेंगे।

भामिनी —(मन में) भगवान ही सहायक है। कैसे छुटकारा होगा ?

मनोहरण — अब आज्ञा दें।

सुखराम —(निश्चित भेंट को देता हुआ) श्रीमान् जी, यह हमारे फूल-अक्षत ग्रहण करो। (भामिनी लड्डू का डिब्बा कल्याणी को देती है) वह भी ऊपर के मन से उसे ले लेती है)

मनोहरण — अब हम जाते हैं। बीच में कभी कभी मिलते रहिये। (भामिनी और सुखराम आदर जताने के लिये मुख्य द्वार तक जाते हैं। उमा ऊपर की छत से अनिल को प्यार के साथ देखती है)

भामिनी —पतिदेव, लड़का तो बहुत अच्छा है परन्तु माता के भावों को देख कर मेरा दिल कांप रहा है।

सुखराम —आप अपने मन को दुखी मत करो। उमा का निर्वाह अनिल से होगा, उस के माता-पिता से नहीं।

भामिनी आजकल दहेज के लोभी लोग बहुओं के साथ अत्यन्त अभद्र व्यवहार करते हैं। इस लिये मेरा मन डर रहा है।

सुखराम —शुभ कार्यों में ऐसे विचारों के लिये कोई स्थान न है।

भामिनी परन्तु टी० वी० और फ्रिज का कहां से प्रबन्ध करेंगे। महंगाई तो पहले ही मुंह फाड़ कर खाने को दौड़ रही है। आप के वेतन से परिवार का निर्वाह भी कठिन है। बारात के स्वागत में कोई कमी रह गई तो भी शर्म से सिर झुक जायेगा।

सुखराम — संदेह में फंसे मन का कोई ठिकाना नहीं।

भामिनी —पतिदेव, दहेज के लोभियों के मन का भूमि में छिपे द्रव्य के समान जानना आसान नहीं।

सुखराम — अब आप प्रसङ्ग की बात करो।

भामिनी — विवाह की तिथि से उन्हें सूचित कर देना चाहिये।

सुखराम - अगले बृहस्पतिवार को कुलपुरोहित को भेजेंगे। वह लग्न का समय निश्चित कर उन्हें बता देगा।

(मनोहरण का घर। अतिथि कक्ष में कुछ कुर्सियां पड़ी हैं। आंगन में खिले फूल घर की शोभा को बढ़ा रहे हैं। मुख्य द्वार के किवाड़ों पर शोभा बढ़ाने के लिये मछली के शकलें चित्रित हैं।

ह्रोऽपि दुष्करः । वरानुयायिन्याः स्वागते चेत्काचिन्न्यूनता तदापि लज्जावनतशीर्षाः स्थास्यामः ।

सुखरामः —भवती साम्प्रतं प्रसङ्गान्तरमनुसरतु ।

भामिनी —विवाहदिवसस्य ते सूचनीयाः ।

सुखरामः —आगामिगुरुवासरे कुलपुरोहितं प्रेषयिष्यामः । असौ लग्नवेलां विचार्य तान् सूचयिष्यति ।

(मनोहरणस्य गेहम् । अतिथिकक्षे कतिचित् आस्यन्दिकाः । प्राङ्गणे विकसितकुसुमानि सदनशोभां समेधयन्ते । मुख्यद्वार-फलकयोः शोभां विवर्धयितुं मत्स्याकृतयः आकीर्णाः । भित्तिषु पुष्पमालाः प्रलम्बिताः दृश्यन्ते । विप्रम् आयान्तं निरीक्ष्य मनोहरणः अग्रतः गत्वा "आयान्तु महाभागाः" एवं स्वागतं व्याहरंस्तमन्तः[1] आनिनाय ।)

मनोहरणः—विप्रवर, कुशलिनः नः सबन्धिनः ?

विप्रः —आं क्षेमवन्तस्ते भवतां मङ्गलं कामयन्ते ।

सरोजिनी—(मनोहरणपुत्री अक्षिणी भ्रामयन्ती अनुजां माधवीं प्रति) मोदका-स्तथानीता यथात्र मूषका निवसन्ति । प्रतिवासिभ्य एकैकमपि दातुं न पारयिष्यामः ।

माधवी —प्रतीयते, अतिकृपणास्ते । समयगतिमपि न परिचिन्वन्ति ।

चन्द्रिका —अयि, भवत्यौ किमर्थं परापवादपरायणे । अस्माकं समयोऽपि सन्निहितः[2] ।

कल्याणी —(ग्रन्थिमन्यमनस्का संस्पृश्य पतिं प्रति) आयाताः महोपहाराः अनिलश्वशुरनिलयात् । मनःपूरं पश्यन्तु भवन्तः । धान्यक्षेत्रं पलालेनैव[3] ज्ञायते । अधुनापि शरस्तूणीरे । ममानुरोधं माऽनाद्रियन्तां भवन्तः ।

मनोहरणः— नाहं सुतं विक्रेष्यामि । विप्रं भोजनेन सत्करोतु भवती ।

---

1. व्याहरन्—वदन् ।
2. सन्निहितः—निकटस्थः ।
3. पलालेन-निष्फलकाण्डेन "नाडी नालं च काण्डोस्य पलालोऽस्त्री स निष्फलः" (इत्यमरः)

दीवारों पर फूलमालाएं लटकाई हैं। ब्राह्मण को आता हुआ देख कर मनोहरण आगे जा कर 'आइये श्रीमान् जी। इस प्रकार आदर के साथ उसे अन्दर ले जाता है।

मनोहरण —पण्डित जी, क्या हमारे सम्बन्धी कुशल से हैं ?

विप्रः —हां, वह ठीक हैं आपके मङ्गल की कामना करते हैं।

सरोजिनी—(मनोहरण की पुत्री आंखें मटकाती हुई छोटी बहन माधवी के प्रति) लड्डू ऐसे लाए हैं जैसे यहां चूहे रहते हैं। पड़ोसियों को एक एक भी न दे पाएंगे।

माधवी —मालूम होता है, बहुत ही कंजूस हैं। समय की चाल को भी न पहचानते हैं।

चन्द्रिका —अरी, आप दोनों दूसरों की निन्दा क्यों करती हो। हमारा समय भी निकट आ रहा है।

कल्याणी —(गांठ को उदास मन से छूकर पति के प्रति)
अनिल के श्वशुरालय से यह बड़ा उपहार आ गया है। जी भर देख लो। धान का खेत पलाल से ही मालूम हो जाता है। अभी भी तीर तरकस में है। मेरे अनुरोध का अनादर मत करो।

मनोहरण —मैं पुत्र को बेचूंगा नहीं। आप ब्राह्मण को भोजन करवाएं।

कल्याणी —(मन में) बूढ़ों का कहा और चबाया हुआ आमला पीछे से स्वाद देता है। अपने अज्ञान का कटु फल इसे मिलेगा परन्तु समय बीतने पर। (प्रकट) भोजन तैयार है। आप पुरोहित को रसोईघर में ले आएं।

मनोहरण —(ब्राह्मण को भोजन के बाद पैसे एवं वस्त्र से सत्कृत कर के) संबंधियों को हमारी ओर से आदर देना।

विप्र —(मन में) यहां दाल में कुछ काला है। (प्रकट) जैसे आप की आज्ञा है। (ऐसा कह कर नमस्कार कर के चला जाता है)

कल्याणी —(पति के प्रति) रात को महिलाएं गीत गाने आएंगी। लड्डुओं का प्रबन्ध अपनी ओर से ही करना होगा। उन्होंने तो बांटने के लिये शक्कर भी न भेजी है।

मनोहरण —मैं सब कुछ आपके मन के अनुकूल ला दूंगा। आप सङ्कट के जाल दहेज के कीचड़ से ऊपर उठो।

कल्याणी —(मनसि) वृद्धभाषितं चर्वितञ्चामलकं पश्चात्स्वादं प्रददाति । एष स्वाबोधस्य कटु फलम् अनुभविष्यति । परं समयेऽतीते । (प्रकाशम्) भोजनं परिपक्वं वर्तते । भवन्तः पुरोहितं पाकशालायां प्रवेशयन्तु ।

मनोहरणः— (विप्रं भोजनालये प्रणीय विहितभुक्तिं वसनमुद्राभिः सत्कृत्य) प्राह-सम्बन्धिनः नः पक्षतः सभाजनीयाः ।

विप्रः —(मनसि) अत्र सूपे काचित्कालिमाऽवलोक्यते (प्रकाशम्) यथाज्ञापयन्ति भवन्तः। (इत्युक्त्वा नमस्कृत्य प्रयाति) ।

कल्याणी - (पतिं प्रति) निशायां महिलाः सङ्गीताय समायास्यन्ति । मोदकप्रबन्धः स्वपक्षत एव विधेयः। तैस्तु वितराणार्थं शर्करापि न प्रहिता ।

मनोहरणः—अहं भवत्याः मनोनुकूलं सकलं साधयिष्यामि । भवती व्यापज्जालभूतात् यौतुककर्दमादात्मानमुद्धरतु ।

विवाहदिवसं यथा निकटप्रायाति, मनोहरणसदनामोदश्चन्द्रं निरीक्ष्य सागरतरङ्गवदवर्धत । कल्याणी विवाहसंभारायोजनपराऽतिष्ठत् । परमेकः शङ्कुस्तस्याः हृदयवेधनान्न व्यरमत् । अनवधानतया शूर्पेण तण्डुलान् शोधयन्ती स्वच्छीकृताक्षतान् माषेषु माषांश्च चणकेष्वक्षिपत् । परमनोभावविज्ञानकुशला प्रतिवासिनी सुमित्रा विहस्य प्राह —

कल्याणि, किमिदम् । वधूपदार्पणात्पूर्वमेव स्नेहविहला भवती एवंविधान्यमनस्कतयाऽग्राहि यद्द्रव्यविवेकोऽपि बालुकापतितसलिल कणवत्-प्रलुप्तः। तण्डुलान् माषेषु माषांश्च चणकेषु निक्षिपसि ।

विभावरी—एतद्गेहं दाडिमं बीजैर्यथा यौतुकधनेन परिपूर्णतां प्रयास्यतीति हर्षातिरेकेणैव लुप्तबोधतां प्रयाता ।

कल्याणी —(विभावर्याः वचनं सिद्धवाक्यं प्रमाणितं स्यादिति मनसि प्रभुं ध्यायन्ती) अद्य रात्रौ निद्रैव कुपिता मयि ।

विभावरी—निद्रा कुपिता कान्तो वा । इहि निशम्य सकलाः साट्टहासं हसन्ति)

(वरानुयायिनः रक्तोष्णीषालङ्कृतशीर्षास्तत्राजग्मुः । ललनाः सस्वरं गीतान्यगायन् । भावर्याः वरनयनयोरञ्जनं विदधानास्तं

विवाह का दिन जैसे जैसे समीप आने लगा, मवोहरण के घर की प्रसन्नता चांद को देखकर समुद्र की लहरों के समान बढ़ने लगी। कल्याणी विवाह की सामग्री जुटाने में व्यस्त थी। पर एक कांटा उसके हृदय को बींधने से पीछे न हट रहा था। लापरवाही से छाज द्वारा साफ किये चावलों को उड़द में और उड़द को चणों में गिराने लगी। दूसरों के मन की बात को जानने में चतुर पड़ोसिन सुमित्रा हंस कर बोली—कल्याणी, यह क्या। बहू के पैर धरने से पहले ही प्यार में डूबी इस प्रकार सुध-बुध खो बैठी हो कि तुम्हारा द्रव्यज्ञान भी रेत में पड़े जलकण के समान लुप्त हो गया। चावल को उड़द में और उड़द को चणों में फैंक रही हो।

विभावरी—इस का घर अनार जैसे बीजों से दहेज भण्डार से भर जायगा। इस अति प्रसन्नता में ही सुधबुध खो बैठी है।

कल्याणी —(विभावरी का वचन सिद्धवाक्य सिद्ध हो, ऐसा मन में ध्यान करती हुई) आज रात को नींद ही नाराज हो गई।

विभावरी—नींद नाराज हो गई या पतिदेव नाराज हो गये।

(ऐसा सुन कर सभी ठहाका मार कर हंसती हैं)

'बाराती लाल पगड़ियां पहने वहां आ गये। महिलाएं स्वर मिला कर गीत गाने लगीं। भावियां वर की आंख में अञ्जन लगाती हुई उसे ससुरकुल व्यवहार सिखाने लगीं। बहनें दुपट्टे की हवा से पसीने की बूंदे दूर करती हुई वस्त्रों में सुगन्धित तेल लगाती हुई मुकुट को ठीक करने लगीं।

बारात के चले जाने पर कानों में कुण्डल और पैरों में घुंघरु पहने हुए, महिलाएं बनावटी भेष धारण कर अपने शरीर को भूल कर जैसे नाचने लगीं। कल्याणी नाचने वालियों के सिर पर नोट घुमा कर उनको देने लगी'।

'उधर सुखराम के घर में बहुत व्यस्तता थी। कुछ लोग रसोई बनाने में लगे थे। भाई-बन्धु वेदी बनाने के काम में जुटे थे। कुछ लोग घर को सजा रहे थे। बच्चे कूदते हुए शोर मचा रहे थे। कन्याकुल के लोगों ने मिलणी के बाद बारात को निश्चित स्थान पर ठहरा दिया।

श्वशुरकुलव्यवहारमुपादिशन् । स्वसारः दुकूलकोणव्यजनेन स्वेद-बिन्दूनपनयन्त्यः, वसनानि सुगन्धिततैलेन वासयन्त्यः मुकुटश्लिष्ट-तन्तून् व्यश्लेषयन् । वरानुयायिन्यां विगतायां कुण्डलालङ्कृतकर्णाः, पादनिबद्धक्षुद्रघण्टिकानिनदश्रुतिसुखकराः, कृत्रिमवेषधरा अन्योन्यं चुम्बनपरायणा, विस्मृतशरीरा इवानृत्यन् । कल्याणी नृत्यन्तीनां शिरसि द्रव्यं भ्रामयित्वा ताभ्यः प्राददात्)

"उतः सुखरामनिकेतने महती व्यस्तता । केचिज्जनाः भोजनपरि-पाकपरायणाः । बान्धवाः वेदिकानिर्माणसंलग्नाः । केचिद् गेहसज्जासंलग्नमानसाः । बालाः कूर्दमानाः कोलाहलपराः । कन्याकुलजनाः मेलापकमनु वरानुयायिनीं सुनिश्चितस्थाने अवासयन्" ।

एकः वृद्धोऽपरस्थविरं प्रति-वेदपाल, पश्य, लग्नवेला नववादनस्य वर्तते । घटिकासूचिके सार्धनववादनमप्यतिक्रान्ते । श्वशुरकुलदेवता-पूजनमपि नाकारि साम्प्रतम् । तदा पाणिग्रहणं कदा भविष्यति ।

वेदपालः —धर्मपाल ! लग्नवेलातिक्रमणं कः विचिन्तयति अद्यत्वे । मण्डूकं भुजग इव स्वादुभोजनानि भोक्तुं सृक्कणी[1] लेलिहानाः भवन्ति बान्धवा अपरे च जनाः । भारतीयसंस्कृतिम् अनाद्रियमाणाः पाश्चात्यसभ्यतामोहमुग्धाः अप्रक्षालितकराः विलुप्तोच्छिष्टा-नुच्छिष्टविवेकाः पशुरिव अनुपविश्यैव भुञ्जानाः गौरवं मन्यन्ते । एवं च विविधरोगानामन्त्रयन्तः अन्धगज इव गहनगर्ते पतन्ति । युवतयः प्ररूढश्मश्रुतरुणैः सह स्कन्धेनस्कन्धं पादान् तोलयन्त्यः न सङ्कोचमाश्रयन्ते । मद्यपानविलुप्तमतयो युवानः हलचालनापरिचित-षण्डाः शृङ्गैरन्योन्यं प्रहरन्तः यथा भयदृश्यमुपस्थापयन्ति । वाद्यवादकानामद्यत्वे भाग्योदयः । जनाः नृत्यतां शिरस्सु सस्पर्धं मुद्राकर्गलानि भ्रामयित्वा तेषामञ्जलिं प्रपूरयन्ति । सत्यापने चेच्छतं स्हस्रपूरितकराः प्रयान्ति । तेऽपि सर्पग्राही वीणावादनेन भुजगं यथा तान्निर्दयं नर्तयन्ति ।

1, सृक्कणी— ओष्ठप्रान्तौ । 'रसज्ञा रसना जिह्वा प्रान्तावोष्ठस्य सृक्कणी' (इत्यमरः)

एक वृद्ध दूसरे वृद्ध के प्रति-वेदपाल, देखो। लग्न नौ बजे का है। घड़ी में अब साढ़े नौ बज गये हैं। अभी तक ससुर-कुलदेवता का पूजन होने को है तो लग्न कब होगा।

वेदपाल —धर्मपाल, आजकल लग्नवेला टल जाने की भला किस को चिन्ता है। बन्धु और दूसरे लोग सांप मेंडक को जैसे स्वादिष्ट भोजन खाने के लिये होठों को चाटते हुए दिखाई देते हैं। भारतीय सभ्यता को अनदेखी कर पश्चिमी सभ्यता के मोह में जकड़े हुए बिना हाथ धोए, जूठे अनजूठे का ध्यान न करते हुए, पशु के समान खड़े खड़े खाने मे अपना गौरव समझते हैं। इस प्रकार अनेक रोगों को बुला कर अन्धे हाथी के समान गहरे गढे में गिरते हैं। युवतियां दाढ़ी-मूंछ वाले नौजवानों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर नाचती हुई जरा भी न लजाती हैं। मद्यपान से नष्ट वृद्धि वाले नौजवान हल चलाने का ज्ञान न रखने वाले साण्ड एक दूसरे पर सींगों से प्रहार करते हुए जैसे डरावना दृश्य पैदा करते हैं। बैंड बजाने वालों के भाग्य खुल जाते हैं। लोग नाचने वालों के सिर पर नोट घुमा कर उनके उंजल भर देते हैं। सत्यापन में सौ किया हो तो हजार ले कर जाते हैं। वह भी सपेरा सांप को वीणा बजा कर जैसे उन्हें बिना दया के नचाते हैं।

धर्मपाल —वेदपाल, सभ्यता का सूर्य प्रलयकाल के क्षितिज में लीन हुआ जैसे अब फिर निकलेगा नहीं। उपजाऊ भूमितल पत्थरों से जैसे अच्छी परम्पराएं कुप्रथाओं से ढक गई हैं। सनातन परम्पराओं का पालन न करने से ही गृहस्थ का सुख सरद ऋतु में धूप के समान लुप्त हो गया है। घर घर में युवतियों का अनादर है। पन्द्रह दिन में ही दोनों कुलों में मनमुटाव पैर पसार देता है। यह सब कुछ समय पर लग्न न लेने का ही परिणाम है। हमारे अच्छे वचनों का 'बूढ़ों की अकल मारी गई है' ऐसा कह कर अनादर करते हैं। आओ हम भीड़ से पहले भोजन करके घर चलें।

बारात भोजन के लिये आ गई। उधर सखियां उमा को वेदी में लाने के लिये उसे सजाने लग जाती हैं। कोई उसके हाथों में मेंहदी लगाती है। कोई

धर्मपालः—वेदपाल, अहं वदामि सभ्यताप्रभाकरः प्रलये क्षितिजगतो यथा नोदेष्यति साम्प्रतम् । उर्वरभूमितलं प्रस्तरखण्डैर्यथा सुप्रथाः कुप्रथाभिराक्रान्ताः । सनातनपरम्पराऽपालनादेव गृहस्थसुखं शरदि आतप इव प्रलुप्तम् । गेहे गेहे युवतीनामनादरः । पञ्चदश-दिवसेष्वेव उभयकुलयोर्मनोमालिन्यं सञ्जायते । एतत्सकलं लग्नवेलातिक्रमणपरिणामः। अस्मत्साधुवचनानि 'वृद्धानां बुद्धि-रस्ताचलं प्रयाते'त्येवं भाषमाणा अनाद्रियन्ते । आयातु भवान्, संघट्टात्पूर्वं भोजनमुपभुज्य गच्छावः ।

(वरानुयायिनः भोजनार्थमायाताः । ततः सख्यः उमां वेदीं प्रापयितुं तां सुसज्जयन्ति । काचिदलक्तकं करोति । काचित् कुण्डले परिधापयति । मातुलानी सौभाग्यसूचकराजकङ्कणैः उमापाणी अलङ्करोति । सुसज्जितवेदिकायामुभयकुलपुरोहितौ लग्नवेलोल्लङ्घनखिन्नमानसौ दक्षिणानुमानमानसौ वरवध्वो-स्तत्रोपस्थितिं प्रतीक्षेते । प्रथमं वरस्तत्रायाति । सपत्नीकसुखरामः पुरोहितोक्तमन्त्रैस्तदर्चनं कुरुते । ततः सख्यः वधूमानयन्ति । पुरोहितौ कुलकीर्तिं प्रकीर्तयन्तौ वरहस्तोपरि वध्वाः हस्तं निधाय मासपक्षतिथिवारनक्षत्रोच्चारणपूर्वकं यजमानेन संकल्पं कारयतः । वरवधू अग्निकुण्डं परितः चतस्रः प्रदक्षिणाः कुरुतः । ततः कन्याकुलपुरोहितः सप्तपदीषु कन्यापक्षतः एवमुवाच—

सर्वे बन्धुजनाः स्वामिन् भवतो दासतां गताः ।
वाःपात्रकङ्कणाभ्याञ्च[1] दत्ताऽहं प्रेमपूर्वकम् ॥
त्वया कदापि नो वाच्यं किं दत्तं तव बन्धुभिः ।
वरः प्रोक्तमिदं सर्वं जग्राह मनसानिलः ॥

(वरानुयायिनः प्रातराशार्थं समायाताः । सख्यः अश्रूणि प्रोञ्छन्त्यः उमायै प्रस्थानोपहारान् प्रददति । भामिनी रोदनं रुन्धाना आत्मानं स्तम्भितुं प्रयतते । मातुलः उमां दोलिकायां प्रवेशयति । बान्धवाः दोलिकां मुख्यमार्गं प्रापयित्वा निवर्तन्ते । ते सर्वे गन्त्रीमारुह्य प्रयान्ति)

---

1. वाःपात्रम्—जलपात्रम् । 'आपः स्त्री भूम्नि वार्वारि सलिलं कमलं जलम् । (इत्यमरः)

Central Sanskrit University
CENTRAL
LIBRARY
Rajiv Gandhi Campus

बालियां पहनाती है। मामी सौभाग्यसूचक चूड़ियां उस के हाथों में पहनाती है। सजी हुई वेदी में दोनों कुल के पुरोहित लग्न वेला के टलने से खिन्न मन वाले दक्षिणा का अनुमान लगाते हुए वर-वधू के आने की प्रतीक्षा में बैठे हैं।

पहले वर आता है। सुखराम भार्या के साथ पुरोहित से बोले मंत्रों के साथ उस का पूजन करता है। फिर सहेलियां बहू को लाती हैं। पुरोहित कुलकीर्ति का बखान करते हुए वर के हाथ पर वधू का हाथ रखकर मास, पक्ष, तिथि, वार का उच्चारण करते हुए यजमान से संकल्प करवाते हैं। फिर वर-वधू अग्नि-अग्निकुण्ड की चार प्रदक्षिणा करते हैं।

तब कुल पुरोहित सप्तपदी में कन्या के पक्ष से बोला—हे स्वामी, मेरे सभी बन्धुजन आज से आप के दास बन गये है। जलपात्र और कंकण के साथ मेरा दान आप के लिये कर दिया है। आपने कभी यह न कहना कि आप के बन्धुओं ने मुझे क्या दिया है।

इस बात को वर अनिल ने बड़े ध्यान से सुना।

बारात प्रातराश के लिये आ गई। सहेलियां उमा को प्रस्थान समय का उपहार देने लगती है। भामिनी आंसुओं को रोकती हुई अपने आप को संभालने का प्रयत्न करती है। मामा उमा को डोली में बैठाता है। भाई-बन्धु डोली को मुख्य मार्ग तक पहुंचा कर लौट आते हैं। वह सभी बस में बैठ कर चले जाते हैं।

(विप्रपुर में मनोहरण के घर में मंगलाचार है। अनिल की बहनें सहेलियों के साथ दधिपात्र हाथ में लिये हुए भावज की उत्कण्ठा से प्रतीक्षा कर रही हैं। वर-वधू आंगन में गेहूं के आटे से बने चौके पर खड़े हो जाते हैं। कल्याणी मनचाहा दहेज न आने से टूटे मन वाली धरती पर गिर जाती है। कल्याणी की देवरानी-जेठानी उस के मुंह में जल की बूंदे गिराती हैं। उमा का शरीर हवा के निकल जाने पर गेंद के समान सिकुड़ता चला जाता है।

तारावती बूढ़ी—यह कैसी बहू आई। आंगन में पैर धरते ही सास बेहोश हो गई। यह कुलक्षणी है।

अमरावती—अरी, सास को सतागला था। मैंने इसें पहले ही कहा था कि गृहप्रवेश से पूर्व बहू को न देखना। पर आज के युग में भली

"विप्रपुरम् । मनोहरणनिकेतने मङ्गलाचरणम् । सखिसमन्विताः अनिलस्वसारः दधिपात्रकराः भावयां सोत्कण्ठं प्रतीक्षन्ते । वरवध्वौ प्राङ्गणे गोधूमचूर्णकृतालेख्यसुशोभितचतुष्कोणे तिष्ठतः । कल्याणी मनोऽभीष्ट-यौतुकम् अनवलोक्य प्रताडितमानसा भूमौ निपतति । कोलाहलः सञ्जायते । कल्याणीजामयस्तन्मुखे[1] जलबिन्दून् निपातयन्ति । उमाकायः वायौ निर्गते कन्दुकमिव सङ्कुचिततां भजते ।"

तारावती वृद्धा—कीदृशीयं वधूरुपस्थिता । प्राङ्गणे पदतलस्पर्शसममेव श्वश्रूः मूर्छिता । कुलक्षणैषा ।

अमरावती—अयि, श्वश्र्वाः सप्तमाग्रमः[2] आसीत् । मयैषा पूर्वमेव गृहप्रवेशात्पूर्वं वधूनिरीक्षणात् वारिता । परमद्य युगे साधु प्रोक्तं कः मन्यते । परिणामं भुनक्तु साम्प्रतम् ।

"महिलास्तैलेन कल्याण्याः पदतले करतले चामर्दयताम् । काचिद् वातादतैलेन तालुकं संमृज्य पाणितलेन शनैः शनैरघर्षयत् । परं कल्याण्याः मूर्च्छा चिरावलोकितसहचरीमिव तां मोक्तुं नाकामयत ।"

मनोहरणः—(मनसि) एतस्या मतमननुमोद्य मया स्वयं सङ्कट आहूतः । (ततः भ्रातरं प्रति) गिरीश, वैद्यसदानन्दमाह्वय । (गिरीशो द्रुतं प्रययौ)

सदानन्दः—(नाडीं स्पृष्ट्वा पृच्छति) एनयाद्य भोजने किमादायि ।

शुक्ला —(जामिः) अस्मत्कुले वधूपदार्पणदिवसे वरप्रसूः[3] कुलदेवता-प्रसादाय व्रतं धारयति । अतः अनयाद्य दुग्धफलमन्तरा किमपि नास्वादि ।

सदानन्दः—(हृदयदौर्बल्यमनुभूयाकीकप्रवालमुक्ताभस्मानि समीकृत्य पुटिकात्रयं निर्माय) अवदत्—एताः पुटिकाः होरात्रयान्तरालेन कवोष्णपयसा प्रददतु एतस्यै । द्रुतं चेतनामाप्स्यति । धमनीगतिर्न चिन्ताकरी । (ततोऽसौ पञ्चरूप्यकाण्यादाय प्रययौ)

---

1. जामिः —देवरस्य ज्येष्ठस्य वा पत्नी ।
2. सप्तमाग्रमः—अष्टमश्चन्द्रः ।
3. प्रसूः माता ।

बात को कौन मानता है। अब यह परिणाम को भोगें। 'महिलाएं तेल से कल्याणी के पदतल और करतल को घिसती हैं। कोई बादामरोगन तालु पर डाल कर हाथतल से धीरे धीरे घिसती है। पर कल्याणी की मूर्छा देर से देखी सहेली के समान उसे छोड़ने को तैयार न थी।

मनोहरण —(मन में) मैंने इसके मत का अनुमोदन न कर के संकट मोल ले लिया। (फिर भाई के प्रति) गिरीश, तुम वैद्य सदानन्द को बुला कर लाओ। (वह जल्दी चला जाता है)

सदानन्द —(नाड़ी देख कर पूछता है) इसने आज क्या खाया है।

शुक्ला —(देवरानी) हमारे कुल में वधू के लाने वाले दिन वर की माता कुलदेवता की प्रसन्नता के लिये व्रत रखती है। इस लिये इस ने आज दूध और फलों के अतिरिक्त कुछ भी न खाया है।

सदानन्द —(हृदय को दुर्बलता को समझकर अकीक, प्रवाल, मुक्ताभस्म बराबर मिला कर तीन पुड़ियां बना कर बोला) यह पुड़ियां तीन तीन घंटे के अन्तर से दूध के साथ इसे दे दो। जल्दी चेतना में आ जायगी। नाड़ी की गति ठीक है। (फिर पांच रुपये लेकर चला जाता है।)

बूढ़ी भगवती—(कल्याणी को पहली अवस्था में ही देखकर) आप सब मूर्ख हैं, अतिमूर्ख। इस को भूत लग गया है। विवाहादि शुभ कार्यों में पक्वान्नगन्ध के लोभी भूत-पिशाच आकर सुगन्धित तेल लगे वस्त्र पहनने वाली नारी के शरीर में प्रवेश करके उत्पात मचाते हैं। इसी लिये पुराने समय में चतुर बूढ़ी महिलाएं युवतियों के दुपट्टे के कोणे में हींग बांध देती थीं। उस की गंध से डरे भूत-पिशाच उन के पास न आते थे। मुझे याद है, मेरे विवाह के समय पति के साथ मैं ससुराल चली तो मेरी माता ने हींग के घोल को मेरे कपड़ों में लगा दिया था। देखो, अपस्मार (मिर्गी) के रोगी के समान इस के मुंह से कैसे थूक निकल रहा है। निश्चय ही इसके शरीर में भूत घुस गया है। आप जल्दी किसी तांत्रिक को बुलाओ। (तब मनोहरण की बहन मन्दोदरी गुणियाराम तांत्रिक को बुला कर ले आई)

भगवती वृद्धा -(कल्याणीं पूर्वावस्थायामेव निरीक्ष्य) भवन्तः सर्वे मूढाः। एषा भूतव्याधिग्रस्ता वर्तते। विवाहादिमङ्गलकार्येषु पक्वान्नगन्ध-लोलुपाः भूतपिशाचाः समागत्य सुगन्धिततैलवासितवसनालङ्कृत-नारीशरीरे प्रविश्योत्पातं रचयन्ति। अतएव प्राक्तनकाले चतुरवृद्धमहिलास्तरुणीदुकूलकोणे रामठम्[1] अबध्नन्। तद्गन्धभीता भूतपिशाचास्तत्समीपं नाव्रजन्। अहं स्मरामि मे परिणयकाले भर्त्रा सह प्रस्थितायाः मे वसनानि मात्रा हिङ्गुघोलगन्धितानि अक्रियन्त। पश्यत अपस्माररोगिण इव एतस्याः लपनात् कथं ष्ठीवनं निस्सरति। ध्रुवमेतत्काये भूतःप्रविष्ट। तान्त्रिकः कश्चिद्द्रुतमाहूयताम् (ततोभगिनी मन्दोदरी गुणियारामतांत्रिकमानयत्)

गुणियारामः-कूपसलिलमानयन्तु भवन्तः द्रुतम्। (पयसि आनीते रक्तपुष्पेण तदभिमन्त्र्य तेनापादशिरः कल्याणीमभ्युक्षयत्) ततः लोहशृङ्ख-लाभिः स्वपृष्ठं प्रताड़यन् जलाभिषिक्तछागवत्प्रकम्पमानः[2] 'हुं हुं फट्, हुं हुं फट्' इत्यवदत्। (ततः सगद्गदम् अस्वाभाविकस्वरे स्वयमेव प्रश्नोत्तराणि व्याचक्षाणः) प्राह—

हुं, कुतः समायतः' ? 'हुं श्मशानात्'। 'हुं कथं समायातः'? 'हुं पवनपृष्ठमारुह्य' हुं बलिं याचोसि' ? 'हुं समद्यमांसदक्षिणां कामये। (ततः स्वाभाविकस्वरे) प्राह —एष श्मशानागतः कल्याणीकायप्रविष्टो भूतो न्यग्राहि[3] मया। अयं मद्यमांसबलिं दक्षिणां च याचते।

मनोहरणः—(मनसि) विवाहोत्सवे मद्यमांसप्रवेशवर्जनात्मको मे सिद्धान्तोऽपि प्रलुप्तः। किं कुर्याम्। (मनोहरणभागिनेयो नगरात् मद्यमांसौ समानयत्)।

गुणियारामः-(तूलबीजं समालोक्य महिषो यथा प्रसन्नचेताः) एतच्छोभनम्। दक्षिणामपि धारयतु। मनोहरणः शतमुद्राकर्गलं प्राददात्)

---

1 रामठं - हिङ्गु। 'सहस्रवेधिजतुकं बाल्हीकं हिङ्गुरामठम्'

2. छागः अजः 'अजा छागी स्तभच्छागवस्तछगलका अजे' (इत्यमरः)

3. न्यग्राहि गृहीतः।

गुणियाराम—जल्दी कुएं का पानी लाओ। (पानी आने पर उस ने उस से पैर से सिर तक कल्याणी को छींटे दिये) फिर लोहे की संगलियां अपनी पीठ पर मारता हुआ, 'हुं हुं फट्, हुं हुं फट्' ऐसा बोला। (फिर रुकती हुई वाणी से अस्वाभाविक स्वर में अपने आप ही प्रश्नों के उत्तर देता हुआ बोला) 'हुं कहां से आए हो'? 'हुं, श्मशान से आया हूं'। 'हुं कैसे आए हो'? 'हुं हवा की पीठ पर चढ़ कर आया हूं'। 'हुं बलि चाहते हो'? 'हुं, मद्य-मांस के साथ दक्षिणा चाहता हूं'। (फिर स्वाभाविक स्वर में बोला) श्मशान से आकर कल्याणी के शरीर में घुसे भूत को मैंने पकड़ लिया है। यह मद्य-मांस की बलि और दक्षिणा मांगता है।

मनोहरण —(मन में) विवाह में मद्य-मांस को न लाने का मेरा सिद्धांत भी लुप्त हो गया।

(मनोहरण का भानजा नगर से मद्य-मांस ले आता है)

गुणियाराम —(बिनौले देखकर भैंसे के समान प्रसन्न मन वाला बोला) यह बहुत अच्छा है। अब दक्षिण भी दे दो। मनोहरण ने सौ रुपये का नोट दे दिया और वह कल्याणी के शरीर को सात बार फूंकें मारकर 'यह घड़ी के भीतर ही चेतना में आ जाएगी' ऐसा कह-कर चला गया।

'महिलाएं कुलाचार पूर्ति के लिये कल्याणी की प्रतीक्षा कर रही थीं। वह एक दूसरी के कान में उसको दहेज की तृष्णा के बारे में भी बात करने लगीं। उनका यह स्वर मनोहरण के मन में भी बिजली की तरंग के समान उमड़ पड़ा।

मनोहरण —(मन में) क्या करूं। एक ओर कुलाचार का पवित्र समय बीत रहा है और दूसरी ओर अपमान का झटका। इस की मूर्च्छा का समाचार सारे नगर में आतंकवादियों से किये बमविस्फोट के धूएं के समान फैल गया है। हो न हो इसे भूत नहीं चिपटा है बल्कि दहेज रूपी सांप का विष इसके शरीर में फैल गया है। पर दूसरों के सामने इसे कैसे समझाऊं। (प्रकट) आप ने मेले की तरह इतनी भीड़ क्यों जुटा दी है। (ऊंचे स्वर में कुछ गुस्से के साथ) आप सब लोग यहां से चले जाओ। हवा खुली आने दो।

(ततोऽग्नौ कल्याणीशरीरं सप्तबारं फूत्कृत्य) एषा कलाभ्यन्तरे चेतनामास्यति। (इत्यभिधाय प्रययौ)

"महिलाःकुलाचारपूरणाय कल्याणीं प्रत्यैक्षन्त। ताश्च अन्योन्य-कर्णेषु तस्या यौतुकेप्सामपि न्यपातयन्। तासामयं स्वरः मनोहरणमानसेऽपि विद्युत्तरङ्गवत्प्रास्फुरत्"।

मनोहरणः—(मनसि)किं कुर्याम्। एकतः कुलाचारपालनवेलातिक्रमणमपरतोऽपमानातिपातः। सकलनगरे एतस्यां निश्चेतनताप्रसङ्गः आतङ्कवादिविहितबमविस्फोटधूमवत् प्रासरत्। भवतु न वा भवतु। नेयं भूतव्याधिग्रस्ता अपितु यौतुकव्यालविषव्याप्तेयमिति प्रतिभाति। परं परेषां समक्षं कथमेनां प्रबोधयेयम्। (प्रकाशम्) भवद्भिर्मेलापक इव एतावान् जनसङ्घट्टः किमर्थमायोजितः। (उच्चस्वरे किञ्चित्सकोपम्) प्रयान्तु इतः सर्वे भवन्तः, वायुर्यथा निर्बाधं प्रविशेत्। (सर्वेषु विगतेषु नाटकमिव विरचय्य यज्ञोपवीतसंस्कारे गुरुः शिष्यसव्यश्रवणे सावित्रीमन्त्रमिव[1] तस्याः वामकर्णे मन्दस्वरं प्राह)—अद्याप्राप्तवाहनास्ते यौतुकवस्तूनि श्वः प्रहेष्यन्ति। समाश्वसिहि।

कल्याणी —(भुजगदष्टो मणिस्पर्शेन यथा तद्वचनेनागतप्राणा नयने उन्मील्य) जलं पाययतु माम्।

मनोहरणः – (जलं पाययित्वा) गलावरुद्धाम्रबीजं रसालमधुरताया[2] यथा त्वया मङ्गलोत्सवस्य स्वादमङ्गोऽकारि।

(महिलाः श्वश्रूर् जीविता, श्वश्रूर्जीवितेति प्राब्रुवन्)

कल्याणी —(प्रस्तराघातेनाधोमुखं पतितः नरः क्षणानन्तरमुत्थितो यथा वस्त्ररेखाः संशोध्य प्राह)—न जाने एतत्सर्वं कथं घटितम्।

मनोहरणः - घटनामिमां भुक्तं कटु-औषधमिव विस्मृत्य अभ्यन्तरं प्रविश्य वरवध्वोरारातिक्यं करोतु भवती। महिलाश्चिरात्प्रतीक्षन्ते।

उमा —(मनसि) हे भगवन्, अपारानुकम्पाऽकारि मयि। एतस्यां मृतायां मे दुर्दिनानि समायास्यन्। "अतिथयः सदनानि प्रत्यावर्तन्त। वादकाः पारिश्रमिकमादाय प्रतिनिवृत्ताः। उमा सानिला दिव-

---

1. सावित्रीमन्त्रं – गायत्रीमन्त्रं। 2. रसालः – आम्रः।

(सब के चले जाने पर नाटक जैसा रच कर यज्ञोपवीत संस्कार में गुरु शिष्य के दाएं कान में जैसे उसके बाए कान में धीरे से बोला- दहेज भेजने के लिये उनको आज वाहन न मिला है । कल भेजेंगे तसल्ली करो ।

कल्याणी —'सांप से डसा हुआ मणिस्पर्श से जैसे आये प्राणों वाली) मुझे पानी पिलाओ ।

मनोहरण – (पानी पिलाकर) गले में गुठली फंस जाने से मीठे आम के स्वाद की तरह तुमने मंगलोत्सव की मिठास ही भंग कर दी ।

(महिलाएं 'सास जी उठी, सास जी उठी' ऐसा बोलने लगीं)

कल्याणी —ठोकर खाकर नीचे मुंह गिरा क्षणों में उठा हुआ मनुष्य जैसे कपडों की सिलवटें ठीक कर के बोली पता नहीं यह सब कुछ कैसे हो गया ।

मनोहरण —इस घटना को खाई हुई कड़वी दवाई के समान भूलकर अन्दर जा कर वर-वधू की आरती उतारो । महिलाएं देर से प्रतीक्षा कर रही हैं ।

उमा —(मन में) हे भगवान. आपने बड़ी दया की । इसके मर जाने पर मेरे खोटे दिन आ जाते । 'अतिथि अपने घर को लौट गये । बैंड वाले मजदूरी लेकर चले गये । उमा अनिल के साथ तीन दिन पितृगह में बिताकर फिर परीक्षाभवन के समान सुसराल में दाखिल हो गई । सूर्य कल्याणी की दहेज की पीड़ा को न समझता हुआ प्रतिदिन उदय होकर अस्ताचल को जाता रहा । चान्द भी उसके लिये सहानुभूति न दिखाता हुआ प्रतिदिन चांदनी का जाल बिछाता रहा । रात भी उसके निद्रासुख के लिये सहयोग न कर पाई । केवल ठण्डी वायु उसकी पीड़ा के ताप से संलप्त होकर सौहार्द दिखाती रही ।

अनिल – (प्रथम समागम में) उमा, आपके शालीनता भरे सुखद सौन्दर्य को देखकर सूर्योदय पर कमल के समान मेरा मन विकसित हो रहा है । आशा है, आपके सुखद संयोग से मेरा गृहस्थाश्रम इस ग्राम में सब से ऊपर जायेगा ।

उमा – (प्रेम के आंसुओं से भीगे नेत्रों से पति को देखती हुई मुखड़ा कुछ

सत्रयं पितुरालये व्यतीय पुनः परीक्षाभवनमिव श्वशुरालयं प्रविवेश । भास्करः कल्याण्याः यौतुकव्यथामगणयन् प्रतिदिवसमुदीयास्ताचलमचुम्बत् । निशाकरोऽपि[1] तस्यै सहानुभूतिमदर्शयन् प्रत्यहं ज्योत्स्नाजालप्रसारणपरोऽतिष्ठत् । यामिन्यपि तन्निद्रासुखाय सहयोगं नाकरोत् । केवलं शीतलपवनस्तस्या व्यथा—तापतप्तः सौहार्दं प्रादर्शयत् ।"

अनिलः —(प्रथमसमागमे) उमे ! भवत्याः शालीनतायुतं सुखदलावण्यं निरीक्ष्यारुणोदये कमलमिव विकसितं मे मानसम् । आशासे, श्रीमत्याः सुखदसंयोगेन मे गृहस्थाश्रम. एतद्ग्रामे मूर्धन्यतां[2] प्रयास्यति ।

उमा —(प्रेमाश्रुलिप्तनयनाभ्यां भर्तारं निरीक्षमाणा किञ्चिन्नतमुखी) अहं भवदाज्ञानुवर्तिनी भृशं प्रयतिष्ये ।

अनिलः - परम्·········।

उमा —(मनसि) एतत्सुखदक्षणेषु यौतुकाश्रितः कश्चिदास्वादभङ्गकरः प्रसङ्गोनापतेत् इति विचिन्तयन्ती भर्तुःकरं पाणितले आदाय (प्रकाशम्) परं किम् ? वदन्तु भवन्तः ।

अनिलः - मम मातुः प्रसादाय भवेस्त्वं प्रयत्नपरा ।

उमा —(मनसि) एतं प्रसङ्गमुत्पाद्य मे भर्ता ममाद्यानन्दमेव मेघः चन्द्रबिम्बं यथाऽन्तरायान्तरितं चिकीर्षति । नाहमधिकं वदिष्यामि । (प्रकाशम्) भवज्जननी साम्प्रतं मे माता । (इत्युक्त्वा तत्कपोलयोश्चन्दनतैलं तूलखण्डेन समर्पयन्ती तं स्नेह-सूत्रे बबन्ध) ।

"कुपुत्रः पित्रोरिव कालः कस्यापि पीडामगणयन् स्वगत्या प्राचलत् । पादपेषु अपरिपक्व-ऋतुफलानि यथासमयं परिपक्वतामवाप्नुवन् । नभसि नक्षत्राणि उदीय यामिन्यां लोकाचरितसुकृतदुष्कृते ब्रह्मणे निवेदयितुमिव प्रभाते अज्ञातलोकं प्रययुः । तटस्नेहोन्मत्ताः सागरवीचयः पुनः पुनस्तमालिङ्गितुं दधावुः परमसौ बहुनारीसङ्गभीतः श्रेष्ठगृहपतिरिव ताडचपेटेन दूर-

---

1. निशाकरः—चन्द्रः । 2 मूर्धन्यतां—सकलमान्यताम् ।

नीचे करके) मैं आपकी आज्ञा का पालन करती हुई लगातार प्रयत्न करूंगी।

अनिल — परन्तु……।

उमा — (मन में) इन सुखद क्षणों में आनन्द में भंग पैदा करने वाला दहेज संबंधी कोई प्रसंग बीच में न आ जाये। (प्रकट) परन्तु क्या। आप बोल दें।

अनिल —मेरी माता की प्रसन्नता के लिये आप को प्रयास करना होगा।

उमा —(मन में) इस प्रसङ्ग को पैदा करके मेरे पतिदेव इस प्रथम आनन्द को बादल चन्द्रबिम्ब को जैसे विघ्नबाधित करना चाहते हैं। मैं ज्यादा न बोलूंगी। (प्रकट) आपके माता जी मेरी भी माता ही हैं। यह कहकर उसके कपोलों पर रूई के खंड से चन्दन का तेल लगा उसे प्यार के धागे में बांध लिया।

खोटा पुत्र माता-पिता की जैसे काल किसी की भी पीड़ा को न समझता हुआ अपनी चाल से चलता रहा। पेड़ों पर कच्चे ऋतु-फल यथासमय पकते रहे। आकाश में नक्षत्र उदय होकर रात के समय लोगों के द्वारा किये गये भले-बुरे कामों को मानों ब्रह्मा को बताने के लिये जैसे प्रभात में अज्ञात लोक को जाते रहे। तट के प्यार में पागल समुद्र की लहरें बार-बार उसके मिलने के लिये दौड़ती रहीं परन्तु वह बहुत नारियों के समागम से डरने वाले अच्छे गृहस्थी के समान उन्हें चपेड़ लगाकर दूर भगाता रहा। कर्तव्यपालन में लगे अधिकारी के समान बादल समय को न टाल कर पानी बरसाते रहे।

उमा सुसराल का प्यार पाने के लिये कार्यालय में नव-नियुक्त चौथी श्रेणी के कर्मचारी के समान लगातार प्रयत्न करती रही। प्रातःकाल उठकर झाड़ू-सफाई का काम करने के बाद स्नान करके सास-ससुर को नमस्कार करके घर का काम प्रारंभ करती थी। पति के कार्यालय जाने से पहले उसके अनुकूल भोजन बनाकर डिब्बे में डाल देती थी। ननदों से पूछकर उनके अनुकूल खाना बनाती थी। उनके दहेज सम्बन्धी व्यङ्ग्य वचनों को वर्षाऋतु में पहाड़ की शिला जलधारा की मार को जैसे

मद्रावयत् । कर्तव्यपालनतत्पराधिकारी यथा वारिदाः समयमनुलङ्घ्य पयोधारां मुमुचुः"।

"उमाश्वशुरालयप्रियतामाप्तुं कार्यालयनवनियुक्तचतुर्थश्रेणी कर्मचारी यथा भृशं परिश्रमपरा व्यतिष्ठत। प्रातरुत्थाय मार्जनशोधनकार्योन्मुक्ता कृताभिषेका[1] श्वशुरपादौ अभिवन्द्य गृहकार्यं प्रारेभे । भर्तुः कार्यालयसमयात्पूर्वं तदनुकूलखाद्यपदार्थान् निर्माय भोजनपात्रे अधारयत् । ननान्दॄन् सम्पृच्छ्य तदनुकूलभोजनमपाचयत् । तासां यौतुकसम्बद्धव्यङ्ग्यवचनानि वर्षतौ पर्वतशिला पयोधाराप्रताडनं यथा तूष्णीमसहत । वस्त्रप्रक्षालने रजकोऽपि तत्समतां कर्तुं नापारयत् । तन्मार्जितपात्रेषु मुखं द्रष्टुमशक्यत । गेहकक्षेषु क्वचिद्रजोरेणुर्नदृश्यत । तत्सौन्दर्यं नगरसमस्तयुवतयः सेर्ष्यमपश्यन् । दिवसे लब्धसमया वर्जितस्वापा ज्ञानवर्धनायोपयुक्तपुस्तकानि अधिजगे । निशायां शय्याश्रयणात्पूर्वम् उष्णसलिलेन श्वशुरपादौ प्राक्षालयत् । परं तस्याः सकलक्रियाकलापः रोगिणे पथ्यं यथा कल्याण्यै नारोचत । एकदा निदाघे रात्रिरक्षावशिष्टं प्रभाते पूतिगन्धिं[2] समीक्ष्य सा बभाषे'।

कल्याणी —(उमां प्रति) मूर्खे, पश्य । रात्रौ मात्राधिकपक्वं प्रभाते दुर्गन्धयुतं सञ्जायते । महार्घतायाःकालोऽयम् । न वयं धनाढ्याः । तव मतिश्छिन्ना । गेहवरावरविचारापरिचिता त्वम् । अभिशीतनयन्त्रं कथं नानयः । नग्नैवायाता । अस्मत्पादप्रक्षालनस्य को लाभः ।

उमा —(सर्पदष्टेवान्तःपीडाम् अनुभवन्ती मानसिकव्यथां क्षालयितुमिव नयनसलिलं विमुञ्चती मनसि) मया परिणयात्पूर्वमेव पितरौ एतेषां यौतुकगृध्नुतायाः परिचितिं प्रापितौ परं 'यद्विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः' । किं मे जीवनं यौतुकरज्जुलम्बमानं वर्तते ? भर्ता मे विशालहृदयः[3] । परं कर्णेजपाः[4]

---

1. कृताभिषेका - कृतस्नाना । 2. पूतिगन्धिं—दुर्गन्धयुतम् 'पूतिगन्धिस्तु दुर्गन्धो विस्रं स्यादामगन्धि यत्' (इत्यमरः) 3. विशालम् उदारं हृदयं यस्य सः विशालहृदयः । 4. कर्णेजपाः—सूचकाः । 'कर्णेजपः सूचकः स्यात् पिशुनो दुर्जनः खलः' (इत्यमरः) ।

चुपचाप सह लेती थी। कपड़ा धोने में धोबी उसकी बराबरी न कर सकता था। उसके द्वारा साफ किये बर्तन में मुंह देखा जा सकता था। घर के कमरों में कहीं धूल का कण न दिखाई देता था। उसकी सुन्दरता को नगर की युवतियां ईर्ष्या के साथ देखती थीं। दिन में समय मिलने पर वह सोने का मोह छोड़ कर ज्ञानवर्धन के लिये उपयोगी पुस्तकें पढ़ा करती थी रात को सोने से पहले गर्म पानी से सास-ससुर के पैर धोया करती थी। परन्तु उसकी यह सारी चर्या रोगी को पथ्य के समान कल्याणी को अच्छी न लगती थी। एक बार रात को पके हुए बाकी बचे भोजन को प्रभात में दुर्गन्ध वाला देखकर वह बोली :—

कल्याणी —मूर्खे, देखो। आजकल रात को मात्रा से ज्यादा पकाया भोजन प्रभात में दुर्गन्ध वाला हो जाता है। समय बहुत महंगाई का है। हम इतने अमीर न हैं। तेरी अकल मारी गई है। घर का भला-बुरा भी नहीं सोच सकती। फ्रिज क्यों न लाई थी। नंगी ही चली आई। हमारे पैर धोने का क्या लाभ है।

उमा —(सांप से डसी हुई जैसे अन्दर की पीड़ा का अनुभव करती हुई मानों मन की पीड़ा को धोने के लिये ही आंसू बहाती हुई (मन में) मैंने विवाह से पहले ही माता-पिता को इनके दहेज के लालच के बारे में बता दिया था परन्तु 'विधाता ने जो मस्तक पर लिखा है उसे कौन मिटा सकता है' क्या मेरा जीवन दहेज की रस्सी से बंधा हुआ है ? मेरे पति का हृदय विशाल है परन्तु चुगलखोर महात्माओं के मन को भी बदल देते हैं (प्रकट) माता जी, मेरे माता-पिता निर्धन हैं। नंगा नहाये क्या और निचोड़े क्या।

कल्याणी — चुप रह लोकोक्तियों की पण्डित तू। हमारा ही घर था पैर धरने के लिये ?

सरोजिनी —(ननद) यह टी० वी० न ला सकी तो फ्रिज की तो बात ही क्या। भाई की शादी हो जाने पर भी हम समाचार सुनने के लिये पराधीन हैं।

माधवी —यह कंजूस की पुत्री है।

महात्मनां मनांस्यपि परिवर्तयन्ति । (प्रकाशम्) मातः, मम पितरौ अधनौ । नग्नः किं स्नायात् किं च निपीड़येत् ।

कल्याणी - तूष्णीमास्व । लोकोक्तीनां पण्डिता त्वम् । अस्माकमेव सदनमासीत्पदं धर्तुम् ?

सरोजिनी—(ननान्दा) एषा दूरदर्शनं नानयदभिशीतनयन्त्रस्य का कथा। सहोदरे परिणीतेऽपि वयं समाचाराकर्णाय परायत्ताः ।

माधवी —कृपणसुतेयम् ।

चन्द्रिका —एषा केवलं मधुरालापप्रीणनकलाकुशला ।

(उमा श्वश्रूननान्दृवचोबाणप्रहारभग्नहृदया तत उत्थायापरकक्षम् अभिगम्य खट्वायां लुलोठ)

अनिलः (कार्यालयसमायात उमाम् उद्विग्नां निरीक्ष्य) उमे, विकला प्रतिभासि मे, किं निमित्तम् । (मनसि) अनुमिनोमि, जननीभगिनीव्यङ्ग्यबाणविद्धेयम् । परं मातृस्वसृणाम् अननुकूलं वक्तुम् अवरुद्धवागहम् । गृहे कलहं कः उत्पादयेत् । भवतु न वा भवतु । एतत्पितृभ्यां कार्पण्यं तु प्रदर्शितमेव । मम स्वसारः वसनैरपि नादृताः । कृपणताया अपि काचित्सीमा भवति । (एवंविधभावान् मनस्येव निगूहमानस्तां वक्षसाऽऽलिङ्गत्) ।

कल्याणी —(मनसि) अनिलमानसम् एतस्याः कथं विरक्तां प्रयायात् । वयं प्रवञ्चिताः । अद्यत्वे मनोभीष्टयौतुकं विना जनाः आज्यशून्यां[1] यवागूं[2] यथा, गन्धहीनां च मालामिव परकन्याः नाङ्गीकुर्वन्ति । विशेकशून्यो मे भर्ता । शतं प्रबोधितोऽपि न बुबुधे । साम्प्रतं सलिले मुष्टिं बध्नाति । जगदम्बात्मजस्य परिणयः सञ्जातः, समस्तनिकेतनं यौतुकद्रव्यैः प्रपूरितम् । अहमेवाधन्या संसृतौ । सेमिकाः वाटिकका[3] अपि नादायिषत । लज्जावारणाय मया

---

1. आज्यं – घृतम् । 'घृतमाज्यं हविः सर्पिर्नवनीतं नवोद्धृतम्'

2. यवागूः—उष्णिका (खिचड़ी) 'यवागूरुष्णिका श्राणा विलेपी तरला च सा' (इत्यमरः)

3. वाटिककाः—पिष्टमाषविनिर्मिताः (वड़ियां) इति ख्याताः ।

चन्द्रिका — यह केवल मीठ-मीठी बातों से ही रिझाना जानती है।
उमा सास और ननद के वचनों के प्रहार से टूटे दिल वाली वहां से उठकर दूसरे कमरे में खाट पर लेट गई।

अनिल —(कार्यालय से आया हुआ उमा को उदास देखकर) उमे, तुम उदास क्यों हो। (मन में) अनुमान है यह माता और बहनों के व्यङ्ग्य व णों से विंधी हुई है। परन्तु इनके प्रतिकूल मैं तो कुछ बोल नहीं सकता। घर में झगड़ा कौन पैदा करे। हो न हो, इसके माता-पिता ने कंजूसी तो दिखाई ही है। मेरी बहनों को कपड़े तक भी न दिये। कंजूसी की भी कोई सीमा होती है। 'इस प्रकार के विचारों को मन में छिपाते हुए उसने उसे छाती से लगा लिया'।

कल्याणी —(मन में) अनिल के मन को इससे कैसे पीछे हटाऊं। हम ठगे गये। आज मनचाहे दहेज के बिना लोग घी के बिना खिचड़ी को जैसे, सुगन्ध के बिना माला को जैसे दूसरों की लड़कियों को स्वीकार न करते हैं। मेरा पति ज्ञानहीन है। सो समझाने पर भी न समझा। अब पानी में मुट्ठी बांधता है। जगदम्बा के पुत्र का विवाह हुआ, सारा घर दहेज की चीजों से भर गया। केवल मैं ही संसार में अभागिन हूं। उन्होंने सेमियां और वड़ियां तक भी न दीं। लाज बचाने के लिये मैंने दुकान से खरीदकर संबंधियों को दीं। अच्छा, पुत्र को जैस कैसे समझाऊंगी।

मनोहरण —(भोजन के बाद कुर्सी पर बैठा हुआ) कल्याणी, तुम सुनती हो। उमा का पकाया भोजन बहुत ही स्वादिष्ट होता है।

कल्याणी —(गुस्से में) मैंने कब आपको बेस्वाद खिलाया है। बहू आई तो पत्नी भूल गई।

मनोहरण —मैंने साधारण रूप से ही बात की है। आप बिना कारण गुस्से में क्यों आ जाती हो।

कल्याणी —मैं आपकी सारी गतिविधि को जानती हूं। पिछले दिन कमीज में बटन लगाने के लिये आपने इसको कहा मुझे क्यों नहीं। क्या मैं मर गई हूं? यह खिलाए तो चार चपाती, मैं खिलाऊं तो दो से ही भूख मिट जाती है। इसके हाथ का छुआ पानी दूध बन जाता है और मेरे हाथ का दूध पानी बन कर रह जाता है।

आपणात् क्रीत्वा सम्बन्धिनः समार्जिताः। अस्तु, आत्मजं यथा तथा प्रबोधयिष्ये।

मनोहरणः – (विहितभोजनो वेत्रासनस्थः) कल्याणि, श्रृणोषि त्वम्। उमापक्वं भोजनम् अति स्वादु प्रतिभाति मे।

कल्याणी —(सक्षोभम्) मया कदा निःस्वादु भोजितम्। वधूरागता, भार्या विस्मृता।

मनोहरणः—मया साधारणत एवाभाषि! निर्निमित्तं कथं कोपमावहन्ति भवती?

कल्याणी —अहं जानामि भवतां सकलगतिविधिम्। गतवासरे कञ्चुके वटनकमारोपितुमेषा प्रोक्ता अहं कथं न। किमस्मि नेहलोकस्था? एषा भोजयति करपट्टिकाचतुष्टयं भुज्यते। अहं परिवेषयामि द्वयमात्रेण क्षुधाप्रशमनम्। एतत्करस्पृष्टं जलं दुग्धायते! मत्करस्पृष्टं पयोऽपि सलिलायते।

मनोहरणः वावदूके, स्तम्भय रसनाम्। मा प्रलपानर्गलम्।

कल्याणी —भवानपि मौनमास्ताम्।

मनोहरणः—(मनसि) नारी सङ्कीर्णतापरपर्याया[1]। यथैषा मातुरुदरे संवयोल्वणे[2] पलति। किं तनयावध्वोः किञ्चिदन्तरम्? एषा विकृतमास्तब्का। वरटानिलये[3] प्रक्षिप्तप्रस्तरोऽहं व्यर्थमेव मङ्क्टेऽपतम्। न मुक्तिः साम्प्रतं सुकरा। (प्रकाशम्) भवत्या जीवने कदापि पराजयोनाङ्गीकृतः। मनीषिणः सत्यं प्राहुः :—

"स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवा न जानन्ति कुतो मनुष्याः"

कल्याणी नार्यां पादोपानत्कल्पनाकालो विगतोऽधुना।

मनोहरणः—पादप्रताडितघोटकगतिरिव न ते जिह्वाविरामः।

---

1. सङ्कीर्णता अपरः पर्यायः यस्याः सा।

2. उल्वणे—गर्भवेष्टने (झिल्ली)

3. वरटा—वनमक्षिकाभेदः। 'दंशीतज्जातिरल्पा स्याद् गन्धोलीवरटाद्वयोः' (इत्यमरः)

मनोहरण बड़बोलणी, जीभ को संभालो। बेरोकटोक मत बोला करो।

कल्याणी —आप भी चुप रहो।

मनोहरण —(मन में) नारी का दूसरा नाम संकीर्णता है. मानों जैसे यह माता के पेट में संदेह की झिल्ली में ही पलती है। क्या पुत्री और बहू में कोई अन्तर होता है? इस का दिमाग खराब हो गया है। भिड़ के छत्ते में पत्थर फैंककर मैंने व्यर्थ में ही अपने को संकट में डाल लिया। अब छुटकारा कैसे होगा। बुद्धिमानों ने सच कहा है -

"नारी के चरित्र और पुरुष के भाग्य को देवता भी नहीं जान सकते मनुष्यो की तो बात ही क्या"।

कल्याणी —नारी को पैर की जूती समझने का अवसर अब चला गया।

मनोहरण —एडी लगाए घोड़े की चाल के समान तुम्हारी जीभ रुकती ही नहीं।

कल्याणी —आप के मौन को भी सभी जानते हैं। आप ने मेरे पुत्र को दहेज से वंचित किया?

'आज यौतुक शब्द से मनोहरण के भाव ऐसे जागे जैसे सपेरे की उंगली छू जाने से बिना विष वाला भी सांप फिण उठा कर नाचने लग जाता है। वह मन में सोचने लगा -- 'उमा के माता-पिता ने मेरे सामने की गई प्रतिज्ञा का पालन भी न किया। पर अब इसके लिये घर में झगड़ा डालने में अनर्थ ही होगा। उमा का स्वभाव प्रशंसनीय है। अन्तर्मन से हमारी सेवा कर के उसने हमारे मन में अपना सम्मान बना लिया है। पर कल्याणी को कैसे समझाऊं। (प्रकट) कल्याणी यह ठीक है कि उमा के माता-पिता ने हमारे से ठगी की है। परन्तु अब हमें सन्तोष ही करना चाहिये।

कल्याणी —सन्तोष? यह कैसा विचार। मैंने तो पुत्र का दूसरा विवाह करने की कसम खा रखी है।

सायंकाल कार्यालय से आया अनिल कुछ थका मालूम हो रहा था। उसे उदास देख कर कल्याणी गर्म दूध का प्याला देती हुई सिर पर हाथ रख कर बोली' पुत्र, क्या आज कार्यालय में अधिक काम होने से आप थक गये हो?

कल्याणी —भवतो मौनमपि न कस्याप्यविदितम् । मुधैव मे सुतो यौतुकात् प्रवञ्चितः ।

"अद्य यौतुकशब्देन मनोहरणमनोभावास्तथा जागृता यथाऽजगरग्राहिणोऽङ्गुलिस्पर्शेन निर्विषोऽपि व्यालः समुन्नतफणो[1] नर्तितुं प्रारभते । स मनस्यचिन्तयत्—"उमापितृभ्यां मत्समक्षं प्रतिज्ञातमपि न पालितम् । परं साम्प्रतमेतदर्थं सदनकलहोऽनर्थंकरः सेत्स्यति । उमास्वभावः प्रशस्यः । साऽन्तर्मनसा परिवारसेवापरायणा नः मनसि लब्धसम्मानपदाऽवतिष्ठते । परं कल्याणीं कथं प्रबोधयेयम् । (प्रकाशम्) कल्याणि, उमापितृभ्यामस्मत्प्रवञ्चनं निर्विवादम् । परमधुनास्माभिः सन्तोष एवाश्रयणीयः ।

कल्याणी —सन्तोषः ? कीदृशीयं विचारणा ? अहं तु सुतापरोद्वाहविहितपणा भवामि ।

(सायं कार्यालयप्रत्यागतोऽनिलः किञ्चित् उद्विग्न इवालक्ष्यत। तदुदासीनतामालोक्य) कल्याणी तस्मै उष्णं पय उपाहरन्ती शिरसि कृतकरा अवदत्—जात, किमद्य कार्यालय-व्यस्ततया क्लान्तो भवान् ? अनिलः—नहि अहं स्वस्थ एव भवामि । उमा क्व गता ।

कल्याणी —(मनसि) उमालावण्यासक्तोऽयम् । एनं कथं प्रबोधयिष्ये । (प्रकाशम्) अनिल, मातुरेकं वचस्त्वं पालयिष्यसि ?

अनिलः —वदतु भवती । अहमाज्ञापालकः ।

कल्याणी —अनुमन्यसे चेत्, अहं तेऽपरपरिणयं चिकीर्षामि ।

अनिलः —(विवाहामोदानुभूतौ पुनः प्रविविक्षुः) परम् उमायाः किं भविष्यति ?

कल्याणी —यौतुकालङ्करणविहीनवधूनां गतिमेषापि प्रयास्यति । अनिलः—हा ! किमेनां भवन्तः वक्ष्यन्ति ? कल्याणी—नहि पुत्र, एवं किं भाषसे । अहं तथा प्रयतिष्ये यथैषा परित्यक्तास्मत्सदना स्वयं पितुरालयं प्रयास्यति । अहं सकलोपायकुशला भवामि ।

---

1. समुन्नतफणः 'त्रिष्वाहेर्यंविषास्थ्यादि स्फटायान्तु फणा द्वयोः' (इत्यमरः)

अनिल —नहीं मैं ठीक ही हूं। उमा कहां गई है ?

कल्याणी —(मन में) उमा की सुन्दरता पर यह लट्टू है इसे कैसे समझाऊंगी। (प्रकट) अनिल क्या तुम मां की एक बात मानोगे ?

अनिल —बोलो मैं आप का आज्ञाकारी हूं।

कल्याणी —यदि तुम मान जाओ तो मैं तुम्हारा दूसरा विवाह करना चाहती हूं।

अनिल —(विवाह की प्रसन्नता की अनुभूति में फिर प्रवेश का इच्छुक) परन्तु उमा का क्या होगा।

कल्याणी —दहेजहीन बहुओं की जो गति होती है, उसको यह भी प्राप्त करेगी।

अनिल —हाय, क्या आप इसे जला देंगे ?

कल्याणी नहीं पुत्र तुम ऐसा क्यों बोलते हो। मैं ऐसा प्रयत्न करूंगी की यह हमारा घर छोड़ कर अपने आप बाप के घर चली जाएगी।

उमा दूसरे कमरे में उनकी यह बातचीत सुनकर मन में सोचने लगी 'यदि मेरा पति भी माता की तृष्णा पूरी करने के लिये मुझे छोड़ना चाहता है तो यह बड़ा भारी अनर्थ है। पिछले महीने से ही मैं इसके वर्ताव में बड़ा अन्तर देख रही हूं।

पता नहीं मेरे विरुद्ध यह इसे क्या क्या समझाती रहती है। परन्तु यह ज्ञानहीन है। वेदिका में आग के सामने मेरे मान की रक्षा के लिये जो शर्त इस ने की थी वह कहां चली गई। क्या पुरुष इतने ही पानी में रहते हैं ? क्या यही इनका पुरुषत्व है जिससे यह नारी पर अपना प्रभुत्व जमाना चाहते हैं ? रात और दिन के वर्ताव में इतना अन्तर ! इतना स्वार्थ ! मैं दिन रात इन की सेवा में लगी रहती हूं परन्तु मालिक के चणे खा कर भी भार उठाना न चाहते हुए, पिछले पैरो से स्वामी पर प्रहार करने वाले गधे के समान यह कृतघ्न ही हैं। मेरी सेवा यहां फलदायक न है। सायंकालीन सूर्य के समान मेरे जीवन का अन्त निश्चित है। समाज लोभियों के हाथ से युवतियों का वध कब तक देखता रहेगा। क्या यह मुझे जला देंगे ? मैं इन के जाल में न फंसूगी।

"उमाऽपरस्मिन् कक्षे श्रुतैतत्सम्वादा वेपमाना मनस्यचिन्तयत्—'मम भर्तापिचेत् मातृतृष्णापूरणेप्सुर्मां तित्यजिषति[1] तदा महाननर्थः। एतद्व्यवहारे विगतमासादेवाहं महदन्तरं निरीक्षे। न जाने मे प्रतिकूलमेषा एतच्छ्रवणयोः किं किं जपति। परमेष विश्वकशून्यः। वेदिकायामग्निसमक्षं मम मानसंरक्षणार्थं विहितपणः कथमस्तमितः। किं पुरुषा एतावति एव सलिले निवसन्ति? किमेतदेवैतेषां पुरुषत्वं येन ते नार्याः स्त्रीयमधिमानमपेक्षन्ते? रात्रिदिवस-योर्व्यवहारे एतावदन्तरम्? एतावान् स्वार्थः? अहं नक्तन्दिवा एतेषां परिचर्यापरायणा ऽवतिष्ठे परं स्वामिचणकान् सम्भुज्यापि गोणीं वोढुमनिच्छन् पृष्ठपादाभ्यामधिपतिं प्रहरन् गर्दभ इव कृतघ्ना इमे। न मे सेवा फलदात्र। किं सायन्तनदिवाकर इव मे जीवनान्तः सन्निहितः। समाजः गृध्नुहस्तात् कदा यावत् युवतिवधं सहिष्यते। किमेते मां धक्ष्यन्ति? नाहमेतेषां जाले पतिष्यामि। मात्रे पत्रं विलिख्य अत्रत्यवृत्तेन ममाम्बामवगमयामि पूर्वम्। "ततः पत्रं लिखितुं प्रारभते"

श्वशुरसदनम्

दिनाङ्कः विषुवत्सङ्क्रान्तिः, 2046

प्रिये जननि,

एतत्पत्रं ध्रुवं भवतीं सङ्कटवारिधौ प्रक्षेप्स्यति। वस्तुतः कन्याप्रसूतिः पित्रोराभीलायैव जायते। अत्रत्यवृत्तं न मङ्गलावहम्। एतेषां यौतुकेप्सा दिवसपरार्धच्छायेव प्रतिपलं समेधते। ननान्दृणा-मुपालम्भाः वृश्चिकदंशवत् पीडयन्ति माम्। श्वश्रूः सुतापरपरि-णयायाधीरा वर्तते। श्वशुरः मनस्यन्यत् वचस्यन्यद् वहते। भवत्याः जामातुर्मनोगतं तु ब्रह्मापि न बोद्धुं क्षमः। अहमत्र कथापि सख्या वर्जितालापा। ननान्दरः प्रहरिका इव नक्तन्दिवं गोपाः गवां यथा मे ध्यानपरायणाः। सन्निपातरोगीव यौतुकव्याधिग्रस्ता इमे जनाः विकृतमस्तिष्काः अनर्गलं प्रलपन्तः भवतीं, पितरं विनोदं चाधिक्षिपन्ति। सहोदरापवादः मे हृदयं शङ्कुरिव व्यथयति।

1. तित्यजिषति—त्यक्तुमिच्छति।

माता को पत्र लिख कर यहां के समाचार से अवगत करवा देती हूं। (फिर पत्र लिखने लग जाती है)

ससुर सदन
चैत्र संक्रान्ति, 2046

प्यारी माता,

यह पत्र निश्चय ही आप को संकट के सागर में धकेल देगा। वास्तव में कन्या का जन्म माता-पिता के कष्ट के लिये ही होता है। यहां का समाचार शुभदायक न है। इन की दहेज की चाह दिन के दूसरे भाग की छाया के समान पल-पल बढ़ती ही चली जा रही है। ननदों के उलाहने मुझे बिच्छू के डंग के समान पीड़ित कर रहे हैं। सास पुत्र का दूसरा विवाह करने के लिये अधीर है। ससुर के मन में कुछ और है और वचन में कुछ और है। आप के दामाद के मन की बात को तो ब्रह्मा भी न जान सकता है। मैं यहां किसी भी सहेली से बात न कर सकती हूं। ननदें पहरेदारों की तरह ग्वाले गौओं की जैसे दिन रात मेरी रखवाली करती हैं सन्निपात के रोगी के समान दहेज की व्याधि से ग्रस्त यह लोग, बिगड़े दिमाग वाले अनाथ-शनाप बकते हुए आपको, पिता को एवं विनोद को गालियां देते हैं। भाई की निन्दा मेरे हृदय में कांटे के समान चुभती है। डर से मेरा दिल कांप उठता हैं। मुझे रात को नींद न आती है। बार बार पीया ठंडा पानी भी मेरी सहायता न करता है इन के आपस के इशारे और मन्दभाषण से अनुमान है कि यह मुझे जला देंगे। प्राण निकलने से पहले मेरा शरीर आग के ताप को कैसे सहेगा। क्या मेरी चीखें आप के कानों तक पहुंच पाएंगी ? मैं नौ महीने तेरे उदर में निवास कर आज संकट का कारण बन रही हूं। मैं कितनी कृतघ्न हूं।

माता, विनोद को भेज कर मुझे बुला लो। मैं खुले केश द्रौपदी ने दुःशासन के वध के बाद जैसे समाज की इस कुप्रथा को जड़ से उखाड़ कर युवतियों के अपमान का बदला ले कर ही सिर में वेणी बांधूंगी। युवतिसमुदाय के जागृत होने पर

भयेन मे हृदयं वेपते। अहं निशि निद्रां न लभे। मुहुर्मुहुः पीतं शीतलसलिलमपि मे साहाय्यं न कुरुते। एतेषां परस्परेङ्गितमन्दभाषणाभ्यामनुमीयते, एते मां दग्धुं कृतनिश्चयाः। प्राणविसर्जनात्पूर्वं मे कलेवरमनलतापं कथं सहिष्यते। किं मे क्रन्दनानि भवत्याः श्रोत्रयोः समायास्यन्ति ? अहं नवमासान् ते कुक्षौ व्यतीयाद्य तव सङ्कटनिमित्तभूता भवामि। कियती मे कृतघ्नता।

अम्ब, विनोदं सम्प्रेक्ष्य भवती मामाकारयतु। अहं विमुक्तकेशा द्रौपदी दुःशासनवधानन्तरं यथा समाजस्येमां, कुप्रथां समूलमुन्मूल्य युवतिजनापमानस्य प्रतिशोधमादायैव मे शिरसि वेणीबन्धनं करिष्यामि। युवतिसङ्घे जागृते लोलुपोऽयं समाजः दीनताग्राहगृहीतस्तच्चरणयोर्निपत्य स्वागः[1] अङ्गीकरिष्यति। यावत् यौतुकार्थिनः शतं वराः वेदिकाधृतपदाः अपि युवतितिरस्कृताः मोघमनोरथाः निकेतनानि न प्रत्यावर्तिष्यन्ते, नायं घोरोऽपराधः शमयितुं शक्यः। चण्डी-अपमानं प्रियं मन्यमानौ शुम्भनिःशुम्भौ यां गतिं गतौ, युवति-अनादरकरस्तामेवायं समाजः गमिष्यति। भूमेः तितिक्षा[2] सर्वविदिता परं तस्या लाभमाददाना मानवः यदाऽनाचारसीमामुल्लङ्घते[3] तदातापि भूकम्परूपेण ज्वालामुखीविस्फोटेन वा प्रतिशोधमाददाति।

जननि, अहं युवतिवृन्दे तथा प्राणान् जागरिष्यामि, यथा तत्कृतक्रान्तेरग्रतः समाजोऽयं स्थालीनिहितपारद इव थरथरायिष्यते। मातर्नाहं ते स्तन्यं विफलं करिष्ये। एष एव मे पणः।

भवत्यास्तनया—उमा

तृतीयदिवसे पत्रहरो भामिन्यै पत्रं प्राददात्। सा तदुद्घाट्य स्तब्धेव धृतशीर्षकरा भूम्युपविष्टा पत्रं पुनः पुनरधीयाना (मनसि) हा ! ममैकैवात्मजा। एषा पुत्रवत्पालिता संवर्धिता च।

---

1. आगः—अपराधः। 'आगोऽपराधोमन्तुश्च समेतूद्दानबन्धने। (इत्यमरः)
2. तितिक्षा—सहनशीलता।
3. सीमां मर्यादाम्। 'ग्रामान्त उपशल्यं स्यात्सीमसीमे स्त्रियामुभे' (इत्यमरः)

यह लोभी समाज दीनता के मगरमच्छ से पकड़ा हुआ उसके पैरों में पड़ कर अपने अपराध को स्वीकार करेगा जब तक दहेज के लोभी सैंकड़ों दूल्हे वेदिका में पैर रखे हुए युवतियों से अनादृत होकर खाली हाथ घरों को न लौटेंगे, यह अपराध शान्त न होगा। चण्डी के अपमान को प्यारा मानने वाले शुम्भ, निशुम्भ की जो गति हुई थी, वही दशा युवतियों का अनादर करने वाले इस समाज की होगी। भूमि की सहनशीलता को सभी जानते हैं परन्तु उसका लाभ लेता हुआ मनुष्य जब अनाचार की सीमा का उलंघन कर जाता है तो वह भी भूकम्प से या ज्वालामुखी के विस्फोट से बदला लेती है।

माता मैं युवतीसमुदाय में ऐसे प्राण फूंकूंगी कि उससे की गई क्रान्ति के आगे यह समाज थाली में रखे पारे के समान थर-थर कांपेगा। यही मेरी प्रतिज्ञा है।

आपकी पुत्री—उमा

तीसरे दिन डाकिये ने भामिनी को पत्र दे दिया। उसने उसको खोलकर पढ़ा तो स्तब्ध ही रह गई। बार-बार पढ़ती हुई मन में सोचने लगी 'हाय, मेरी एक ही पुत्री है। मैंने इसे पुत्र के समान पाला-पोषा है। परिणय के बाद भी जो लोग अपनी पुत्रियों को सुखी न देखते हैं वह दुर्भाग्य वाले हैं। अगर वह मेरी बच्ची को मार देंगे तो मैं क्या करूंगी। उनके दहेज के लालच की बात का पहले ही पता चल गया था परन्तु हम न सम्भले। मेरा पति बहुत ही भद्र पुरुष है। मेरे समझाने पर भी न समझ पाया। पर मैं उसे उलाहना न दूंगी। मेरे पति का मन बहुत ही कमजोर है। इस आघात को सह न पाएगा। विनोद को भी पत्र न दिखाऊंगी, वह तेज स्वभाव का है। उनसे झगड़ा करेगा। उमा को यहां बुला लेती हूं। आजकल नवरात्रों के दिन हैं। इन्हीं दिनों में विवाहित युवतियां रास्ते की पूजा करके सास-ससुर को उपहार देती हैं। उमा ने अभी यह किया न है। उपहार के लालच में वह उसे आसानी से भेज देंगे। (फिर विनोद को बुला कर) पुत्र, तुम

पाणिपीडनमन्वपि ये पितरस्तनयां सुखिनीं नावलोकन्ते ते दुर्भाग्यशालिनः। ते चेन्मे तनयां हनिष्यन्ति, अहं किं करिष्यामि। तेषां यौतुकलिप्सानिनदः पूर्वमेव श्रवणपतितः परं वयं न प्रबुद्धा। भर्ता मे ऽतिभद्रपुरुषो मया कृतावबोधोऽपि न बुबुधे परमहं नोपालम्भं प्रदास्यामि। पत्युर्मे दुर्बलं मनः। नाघातमिम सोढुं क्षंस्यते। विनोदमपि पत्रं न प्रदर्शयिष्ये। असौ उग्रप्रकृतिस्तैः सह कलहायिष्यते। उमामत्राकारयामि। अद्यत्वे नवरात्रदिवसा वर्तन्ते। एतेष्वेवोढाहितयुवतयः विहितवाटार्चना; श्वशुराभ्यामुपहारान् प्रददति। उभय। साम्प्रतं नैतदनुष्ठितम्। उपहारलोलुपा उमामनायासम्प्रेषयिष्यन्ति। (ततो विनोदमाहूय) पुत्र, भवान् उमाकारणाय तत्—श्वशुरालयं व्रजतु। अहं स्मरामि तस्याः। मात्राज्ञप्तो विनोद उमाश्वशुरालयं प्राप्तस्तत्क्षणेषु केवलं कल्याणीम् एव गृहे ददर्श। कल्याणी विनोदं निरीक्ष्य (मनसि) आयात· कृपणसूनुः।

(वेत्रासनम् अङ्गुल्या प्रदर्शयन्ती) अत्रोपविशतु भवान्।

विनोदः —(मनसि) यदाप्यहम् आयामि, एतस्याः मस्तके धूमकेतुसमाश्रित्रवलय समीक्ष्यन्ते। एतद्भ्रूभङ्गानुगवक्रोक्तयो न मे रोचन्ते। एतमनादरं कदा यावत्सहिष्येऽहम्। भगिनीमविष्यन्न वार्धेत चेत्, एनां सुमार्गे प्रवर्तयेयम्। (प्रकाशम्, अहमुमां नेतुं समायातः। कपटवचनकुशला कल्याणी— उमया विना नः निर्वाहः उदकं विना मीनानां यथा दिवसमपि दुष्करः। परं सम्बन्धिनां मानावहेलना न नः कुलपरम्परा। सप्ताहाभ्यन्तरे पुनरत्र प्रापणपणेन भवान् नेतुमर्हति।

उमा —(मनसि) प्रभुं प्रार्थयेऽहमत्र मे पुनरनागमनाय।

मनोहरण। —अद्यामावस्या सोमवारश्च। मा प्रेषयत्वेनाम्।

कल्याणी —भवतां रूढ़िवादोक्तयः न मे रोचन्ते।

'अनिलः द्यूते पराजयोन्मुखः अक्षदेवी[1] प्रतिकूलं पतन्तमक्षं[2] यथा

---

1. अक्षदेवी—द्यूतकारः। 'धूर्तोऽक्षदेवी कितवोऽक्षधूर्तो द्यूतकृत्समाः' (इत्यमरः)

2. अक्षं—पाशकम्। 'पणोऽक्षेषु ग्रहोऽक्षास्तु देवनाः पाशकाश्चते। (इत्यमरः)

उमा को बुलाने के लिये उसके ससुराल हो आओ। मुझे उसकी बड़ी याद आ रही है।

माता की आज्ञा से विनोद उमा के ससुराल पहुंच गया। उस समय केवल कल्याणी ही घर पर थी। वह विनोद को देखकर (मन में) आ गया कंजूस का पुत्र। (कुर्सी को उंगली से दिखाती हुई) आप यहां बैठ जाइये।

विनोद —(मन में) जब भी मैं आता हूं इसके मस्तक पर धूम्रकेतु के समान तेवर उग आते हैं। भ्रूभंग के साथ इसके टेढ़े वचन मुझे अच्छे न लगते हैं। इस अनादर को कब तक सहन करूंगा। यदि बहन का भविष्य बाधक न हो तो इसे रास्ते पर ला दूं। (प्रकट) मैं उमा को ले जाने केलिये आया हूं। कपटवचन में चतुर कल्याणी — उमा के बिना हमारा निर्वाह, जल के बिना मछली का जैसे एक दिन भी कठिन है परन्तु हम सम्बन्धियों के मान की अवहेलना न करते हैं। आप इसे ले जाओ परन्तु सप्ताह के अन्दर फिर पहुंचा देना।

उमा—(मन में) भगवान से प्रार्थना है कि मैं अब यहां न आऊ।

मनोहरण —आज मंगलवार और अमावस है। इसे मत भेजो।

कल्याणी —आप के रूढिवाद से भरे वचन मुझे अच्छे न लगते हैं।

'अनिल जूए मे हारने को तैयार जुआरी अपने प्रतिकूल पड़ते हुए पाशे को जैसे शंका से व्याकुल और टूटे मन वाला उमा को देख रहा था। उमा और विनोद शाम की सवापांच बजे की बस से रामपुर ग्राम को चले। एक कोस चलने पर वहां के यात्रियों को उतारने के लिये और आगे जाने वालों को चढ़ाने के लिये बस जब रुकी तो मानों बेगुनाह प्राणियों को मारने के लिये ही जन्म लेने वाला, मानवता के ज्ञान से शून्य, धर्म के नाम पर अधर्म करने वाला, प्रतिदिन दस हत्याओं की प्रतिज्ञ लिये हुए, हिरण्यकशिपु के समान दुर्दान्त, कंस की तरह घमंडी, मानों दूसरा यमराज ही हो ऐसा कोई युवक बस पर चढ़कर बीच की सीट के नीचे बम रख कर चुपचाप दूसरे रास्ते से चला गया। कल्याणी के छल को अनिल जैसे उसकी इस ठिठाई को कोई भी न जान सका। अपने गन्तव्य

शङ्काकुलभग्नमानसो भार्यामपश्यत् । उमाविनोदौ सायं सपादपञ्चवादनगन्त्या रामपुरग्रामं प्रस्थितौ । क्रोशेगते तत्रत्ययात्रिणोऽवतारयितुं पुरोगामिनश्चादातुं गंत्री यदाऽवरुद्धगतिस्तदा निरपराधप्राणिप्राणान् हतुंमिव लब्धजन्मा, मानवताज्ञानशून्यः धर्मनाग्नि अधर्माचरणपरः, प्रतिदिवसं दशहत्याविहितपणः, हिरण्यकशिपुरिव दुर्दान्तः कंस इव असिमतायुतः अपरः कृतान्त इव कश्चिद् युवा गन्त्रीमधिरुह्य मध्यगतासनमधः बममेकं सुगुप्तं निधाय अन्याज्ञातस्तूष्णीमपरमार्गेण प्रायात् । कल्याण्याश्छलमनिलो यथा तस्येमां धूर्तंतां कोऽपि बोद्धुं नापारयत् । गन्तव्यलग्नमानसाः यात्रिणः स्वीयं स्वीयमचिन्तयन् । उमाऽपि निजभविष्यच्चिन्तापरा श्वशुरकुलदोहृंदनिवेदनाय मातरं गलबाहुमाप्तुमधीरं[1] मनोऽवहृत् । परिचालकः कोषपुञ्जे अतिरिक्तायाकलनं[2] प्रचक्रे । नवपरिणीतचालकः स्वभार्यासङ्गमलोलुपः गंत्रीं द्रुतगत्याऽचालयत् । भानुर्भाविउत्पातभीत्यैव स्वरश्मीन् सङ्गृह्य कमप्यातङ्कवादोन्मुक्तदेशमालोकितुं प्रचचाल । विभावरी क्रूरकर्मणां मुखे कृष्णमसीं लेप्तुमिव पदं दधार । ततोऽकस्मात् गंत्र्यां प्रलयकालिकघनगर्जनमिव भयदविस्फोटोऽजायत । विस्फोटधूमः मेघवृन्द इवाकाशं छादयमास । चालककरौ चक्रे एव शून्यतां गतौ । परिचालकः भाटकराशिं गणयन्नेव प्रसुप्तः । रुधिरप्रवाहः गन्त्र्याः बहिः प्रसर्तुं प्रारेभे । कबन्धाः शिरांसि संयोजयितुं कञ्चित् ऋषिकल्पं चिकित्सकं प्रतीक्षमाणा एव भूमौ अशेरत । विक्षतानां क्रन्दनध्वनिरक्षतानां प्राणान् कूपगतकुम्भं रज्जुर्यथा बहिश्चकर्ष । द्वादश मृताः । त्रयोदश विकलाङ्गतां गताः । सुखरामभामिनीभाग्ययोगाद् विनोदः हिरण्यकशिपुप्रदीप्तानले प्रह्लाद एव सर्वथा सुरक्षितः अतिष्ठत् । उमां छिन्नमस्तकां निरीक्ष्यासौ जीवितोऽपि मृत इव भूपतितः व्यलपत् । गृहरक्षकदलः समाययौ ? चिकित्सकसङ्घोऽपि तत्राजगाम । मृताः परीक्षितुं विक्षताश्च चिकित्सितुं चिकित्सा-

---

1. गले बाहू यस्याः सा गलबाहुस्तां गलबाहुम् ।
2. अतिरिक्तायः—उपरिष्टायस्तस्याकलनम् ।

स्थान पर मन लगाए यात्री अपनी-अपनी बात सोच रहे थे। भविष्य की चिन्ता में लगी उमा का मन भी सुसराल की दुष्टता बताने के लिये माता के गले में बाहु डालने के लिये अधीर हो रहा था। कंडक्टर अपने थैले में अतिरिक्त आय का लेखा-जोखा कर रहा था। नई नई शादी वाला ड्राइवर अपनी पत्नी के समागम का इच्छुक बस को तेज गति से चला रहा था। सूर्य मानों भावी उपद्रव के डर से ही अपनी किरणों को खींच कर आतंकवाद से हीन किसी देश को देखने के लिये चल पड़ा। रात क्रूर काम करने वालों के मुंह में मानों काली स्याही पोतने के लिये चली आई। फिर बस में अचानक प्रलयकाल के बादलों की गर्जना के समान भयानक विस्फोट हुआ। धूएं ने बादलों के समान आकाश को ढक दिया। ड्राइवर के हाथ स्टेरिंग पर ही ठंडे हो गये। कंडक्टर किराये के धन को गिनता गिनता ही सो गया। खून का प्रवाह बस से बाहर बहने लगा। धड़ मानों सिरों को जोड़ने के लिये ऋषिसमान किसी डाक्टर की प्रतीक्षा करते हुए धरती पर सो रहे थे। घायलों के चीखने की आवाज स्वस्थ लोगों के प्राणों को कुएं में गये घड़े को रस्सी जैसे बाहर खींच रही थी बारह मर गये। तेरह घायल हो गये। सुखराम और भामिनी के भाग्य से विनोद हिरण्यकशिपु से लगाई आग में प्रह्लाद जैसे सुरक्षित ही रहा।

उमा का सिर कटा हुआ देखकर वह जीवित भी मरा हुआ जैसे धरती पर गिरा विलाप कर रहा था। पोलिस आई। डाक्टरों का दल आ गया। मरे हुओं का पोस्टमार्टम और घायलों की चिकित्सा के लिये होस्पिटल में पहुंचा दिया। बड़े लोगों ने प्रसिद्धि पाने के लिये घटना की निन्दा कर दी। महाराजा ने भी मृतकों के संबंधियों से देर से अभ्यस्त जैसी सहानुभूति को प्रकट कर दिया। प्रबन्धकों ने मृतकों का मूल्य बीस-बीस हजार निश्चित करके सम्बन्धियों को देने का आश्वासन दे दिया। मृतकों के सम्बन्धी चिकित्सालय में विलाप करते हुए, घायलों की चिकित्सा में रुकावट डाल रहे थे। भामिनी पुत्री के सिर को गोद में लेकर रोने लगी।

लयान् प्रापिताः । महाजनाः घटनां निनिन्दुः । महाराजः मृतानां सम्बन्धिभिश्चिराभ्यस्तामिव सम्वेदनां प्रकटयामास । प्रबन्धकाः मृतानां मूल्यं विंशतिसहस्रमात्रमाकलय्य निकटसंबन्धिभ्यः प्रदातुं प्रतिजज्ञुः । विगतासुसम्बन्धिनश्चिकित्सायगताः विलपन्तः क्षतानां चिकित्सायां बाधकाः बभूवुः । भामिनी अङ्कृतात्मजमस्तका[1] भृशं रुरोद । "हा उमे, त्वं मां विहाय क्व गता। तव पत्रं दिवसद्वयं पूर्वमेव मयाऽवापि । अहमज्ञास्यं तत्रैव ते मुखम् अद्रक्ष्यम् । हा पुत्रि, मधुमधुरा ते वाक् । ब्रूहि तनये, ब्रूहि किञ्चित् । एवं विलपनपरा तत्रैवामूर्च्छत् । सुखरामविनोदौ तस्या मुखे सलिलकणान् निपातयन्तौ असान्त्वयताम् ।

समीपस्थोऽनिलः किमपि भाषितुं नाक्षमत । मनोहरणो मनसि कल्याणीं निनिन्द । कल्याणी अवास्तविकसम्बन्धिनि-उपरते[2] शोकप्रदर्शनायातनारीवत् कृत्रिमाश्रूणि वहन्ती क्रन्दन्ती च उमाकबन्धास्याशे व्यतिष्ठत । मृतानां कृतसामूहिकसंस्कारा बान्धवाः महाराजस्यातङ्कवाददमनासमर्थतां विनिन्दन्तः भाग्यस्पादाभ्यां स्वनिलयान् प्रययुः ।

अनिलो लावण्ययुतः शिक्षितो राजकीयसेवायां लिपिकपदं दधार । बहवो जनाः तनयां प्रदातुं समुत्सुकाः अजायन्त । मनोहरणपूर्वपरिचितः सुदर्शनाभिधानोधनाढयो वणिक् दशकक्षोत्तीर्णद्वाविंशतिहायनश्वेतेतरवर्णचम्पाकन्यायै चिराद्वरान्वेषणविकलस्तमेतदर्थं प्रार्थयामास । कल्याण्याः यौतुकेप्सां पूरणेप्सुर् मनोहरणोऽनिलमापृच्छय सम्बन्धमिमं स्वीचकार ।

मनोहरणसदने पुनर्वाद्यान्यवाद्यन्त । पुरोहितः पुनरपि अनिलशीर्षं मुकुटेनालञ्चकार । भगिन्यः पुनस्तच्छृंगारपरा अदृश्यन्त । सुदर्शनः गृहोपयोग-समस्तवस्तूनि यौतुके प्राददात् । कल्याण्याः मुदः[3] हृदये मातुं नापारयन् । अनिलश्चम्पालावण्यमुमासौन्दर्येण तोलयन् मनस्यचिन्तयत् - 'किं खद्योतप्रकाशः कदाचित् प्रभाकरप्रभासमक्षं

1, अङ्के कृतम् आत्मजायाः मस्तकं यया सा—अंङ्कृतात्मजमस्तका ।

2, उपरते—मृते ।

3, मुदः प्रसन्नताः .

'हाय उमे, तूं मुझे छोड़कर कहां चली गई। तेरा पत्र दो दिन पूर्व ही मुझे मिला था। मुझे यह मालूम होता तो मैं वहां ही तेरा मुखड़ा देख लेती। बोल पुत्री, कुछ बोल'। इस प्रकार विलाप करती हुई वहीं बेहोश हो गई सुखराम और विनोद उस के मुंह में पानी की बूंदे गिराते हुए तसल्ली देने लगे।

अनिल चुपचाप पास खड़ा था। मनोहरण मन में कल्याणी को कोस रहा था। कल्याणी किसी दूर के सम्बन्धी के मर जाने पर शोक के लिये आई नारी के समान बनावटी आंसू बहाती हुई और चीखती हुई उमा के धड़ के पास बैठी थी। मृतकों का सामूहिक संस्कार करके भाई-बन्धु महाराजा की आतंकवाद के दमन में असमर्थता की निन्दा करते हुए भारी पैरों से घरों को चले गये।

अनिल पढ़ा लिखा, सुन्दर युवक सरकारी नौकरी में था। बहुत सारे लोग उसे लड़की देने को तैयार हो गये। मनोहरण का पूर्व परिचित सुदर्शन नाम का धनी बाणियां दस श्रेणी तक पढ़ी, बाईस वर्ष की आयु वाली अपनी चम्पा नाम की लड़की के लिये वर ढूंढने में व्याकुल था। उसने इसके लिये मनोहरण से प्रार्थना की कल्याणी की दहेज की इच्छा पूरी करने के लिये मनोहरण ने अनिल को पूछ कर इस सम्बन्ध को स्वीकार कर लिया।

मनोहरण के घर में फिर बाजे बजाए गये। पुरोहित ने एक बार फिर अनिल के सिर को मुकुट से सजाया। बहनों ने इस का श्रृंगार किया। सुदर्शन ने घर के उपयोग की सभी वस्तुएं दहेज में दीं। कल्याणी की प्रसन्नता का कोई ठिकाना न था। अनिल चम्पा की सुन्दरता को उमा के सौन्दर्य से तोलता हुआ मन में सोचने लगा—"क्या जुगनू का प्रकाश कभी सूर्य की कान्ति के आगे टिक सकता है? मेरी उमा उमा ही थी। राज्य से प्राप्त बीसे हजार रुपये से मैं उसकी मूर्ति बना कर घर के पास रखूंगा इसकी नीचली दांतपंक्ति के बीच में दो दांत झूठे अभिमान में मानों दूसरे दान्तों का अनादर करने के लिये ही ऊपर के होठ को छूते हुए पुराने पेड़ की शाखा में निकले हुए परण्ड के समान प्रतीत होते हैं। थोड़े समय के बाद दान्त के

स्थातुमर्हति ? मम-उमा-उमैवासीत् । राज्यावाप्तविंशतिसहस्र-मुद्राभिर् गेहोपान्ते तत्प्रतिकृतिं निर्माय स्थापयिष्यामि । एतस्याः (चम्पायाः) अवोदन्तपङ्क्तिमध्ये रदनयुग्मं मिथ्याभिमानेऽपरदन्ता-ननादंतुमिवोपरोष्ठं स्पृशत् प्राचीन-तरुशाखोद्भूतप्ररण्डकमिव[1] प्रतीयते । अल्पसमयानन्तरं एतौ निष्कास्य दन्तचिकित्सकात् अपरौ आरोप्य मुखविकृतिं दूरे करिष्यामि । परमानीतयौतुकविषये चेदियं गर्वग्रस्ता तदा मातुर्भद्रं न पश्यामि । आस्तां तावत् । चम्पापितृभ्यां यौतुकेन श्रावणवारिधारापातेन कृषकस्येवाम्बाया-स्तृष्णा तथा प्रशमिता यथा पुनः कदापि नोदियात् ।

मनोहरणः—(कल्याणीं प्रति) शमिता ते यौतुकेप्सा ?

कल्याणी —किमपि न्यूनं न कृतं तैः । प्राङ्गणपतितवस्तुसमूहोऽपरकक्षनिर्माण-मपेक्षते ।

प्रातः कालः अनिलः कृताल्पाहारः कार्यालयं प्रययौ । मनोहरणः विहितभोजन सलेखापुस्तकः आपणं जगाम । चम्पा विहित-भुक्तिरांग्लभाषाज्ञानानभिज्ञापि महत्वप्रदर्शनेप्सया समाचारपत्रा-लङ्कृतकरा आस्यन्दिकायामुपविवेश । कल्याणी उच्छिष्टपात्राणि समाहृत्य मार्जितुमारेभे । सा मनस्यचिन्तयत्—"वधूः साम्प्रतं सदने नवागन्तुका । समये प्राप्ते स्वयं मे साहाय्यं करिष्यति । एष क्रमः मासं यावत् प्राचलत् । चम्पोच्छिष्टपात्राणि अमेध्यवस्तु[2] इव स्प्रष्टुं न चकमे ।

सरोजिनी —(माधवीं प्रति) एषा मया सह वक्तुमपि नेहते ।

माधवी —एतद्रूपमालोक्य मे घृणा सञ्जायते ।

चन्द्रिका —एतस्या आधोदन्तपङ्क्तिम् उपरोष्ठः घृणयेव स्प्रष्टुं न कामयते ।

सरोजिनी —एषा व्यवहारानभिज्ञा ।

माधवी —शिष्टाचारमपि न पालयति । पितृसमक्षमपि वेत्रासने उपविशति ।

चन्द्रिका —उमासमा भावर्या न सुलभा ।

---

1. नरस्य गलगण्ड इव प्राचीनतरुशाखोद्भूतगण्डकः प्ररण्डकम् ।
2. अमेध्यवस्तु—अपवित्रवस्तु ।

डॉक्टर से इन्हें निकलवा कर दूसरे लगवा कर मुखड़े की विकृति को दूर करवा लूंगा। परन्तु लाये गये दहेज के बारे में यदि इसे घमण्ड हो गया तो मां की खैर नहीं। चम्पा के माता-पिता ने दहेज के द्वारा श्रावण की वर्षा से किसान की जैसे माता की तृष्णा को ऐसे ढंग से शान्त किया है कि फिर कभी उदय न होगी।

मनोहरण —(कल्याणी को) क्या तुम्हारी दहेज की इच्छा पूरी हो गई?

कल्याणी —उन्होंने कोई कसर न छोड़ी है। अभी आंगण में इतनी चीजें पड़ी हैं कि रखने के लिये एक कमरा और चाहिये।

प्रभात का समय। अनिल नाश्ता कर के कार्यालय को चला गया। मनोहरण खाना खा कर अपनी बहियां (लेखा पुस्तक) लेकर दुकान को चला गया। चम्पा भोजन कर के इंग्लिश का ज्ञान न होने पर भी अपना महत्त्व दिखाने के लिये समाचारपत्र हाथ में लेकर कुर्सी पर बैठ गई। कल्याणी जूठे पात्र इकट्ठे कर के साफ करने लग पड़ी। वह मन में सोचने लगी—"वहू अभी घर में नई नई आई है। समय आने पर स्वयं मेरी सहायता करेगी। यह क्रम एक महीना भर चलता रहा। चम्पा जूठे पात्रों को गन्दी वस्तु के समान छूना न चाहती थी।

सरोजिनी - (माधवी के प्रति) यह मेरे साथ बात तक न करना चाहती है।

माधवी —इसकी शकल देख कर मुझे घृणा आती है।

चन्द्रिका —इस की नीचली दांत पंक्ति को ऊपर का होठ मानों घृणा से ही न छूना चाहता है।

सरोजिनी — इस को व्यवहार का भी पता नहीं।

माधवी — शिष्टाचार तक न जानती है। पिता के सामने भी कुर्सी पर बैठ जाती है।

चन्द्रिका —उमा जैसी भावी कहां मिलेगी।

सरोजिनी —उस के प्यार की हम ने कदर न पाई। उसका कड़वा फल भुगत रही हैं।

माधवी —मैंने कसम खाई है कि दहेज लेने वाले दुल्है से कभी शादी न करूंगी।

सरोजिनी तस्याः स्नेहो नादृतोऽस्माभिः। तत्कटुफलं भुञ्ज्महे।

माधवी अहं विहितपणा यौतुकार्थिवरमनङ्गीकर्तुम्।

चन्द्रिका —अहमपि दृढमानसैतदर्थम्

एकदा प्रभाते मार्जन्या प्राङ्गणं शोधयन्तीं कल्याणीं मनोहरणः प्राह – त्वं दासीवदाचरसि। वधूरेतत्कार्यं कथं न कुरुते।

कल्याणी - (साश्रुनयना) एषा धनाढ्यतनया कार्यापरिचिता। मम सेवा-परोमा परलोकमास्थिता।

मनोहरणः – (मनसि) यौतुकेऽस्याः फलं भुङ्ग्धि। (प्रकाशम्) एकां योजनां निश्चिनुवः।

कल्याणी - का नाम योजना?

मनोहरणः— प्रातरहं मार्जनीकार्यव्यापृतो भविष्यामि। त्वं मे करान्मार्जनीमादातुं प्रयतिष्यसे। अहं न प्रदास्यामि। एवं नौ संघर्षपरायणौ समीक्ष्य एषा मे हस्ताद्गृहीतमार्जनीका स्वयमेतत्कर्मरता भविष्यति।

कल्याणी --(आशान्विता) आम्, एषा योजना प्रभावकरी। "अपरस्मिन्-प्रभाते मनोहरणः मार्जनीकरः प्राङ्गणं शोधयितुं प्रारेभे। कल्याणी तद्धस्तात् मार्जनीमादातुं प्रयेते। कतिचित्क्षणान् श्वशुरौ संघर्ष-परायणौ समीक्ष्य चम्पा स्मयमाना[1] मन्दपादं तत्रागत्य प्रोवाच - "भवन्तौ किमर्थमेवं कलहायेते। वारं कथं न निर्धारयतः। एकस्मिन् दिवसे एका अपरस्मिंश्चापरः मार्जनीकर्माचरिष्यति"। ततः कल्याणी भर्तुर्हस्तान् मार्जनीमादाय प्राङ्गणमशोधयत्। धराध्वस्तयोजनोमनोहरणः कक्षे आगत्योमाया अस्मरत्। कल्याणी मार्जनीं यथास्थानं निधाय सहानुभूत्यर्जनाय पत्युः समीपमुपविवेश।

मनोहरणः—सरस्वभावा वधूर्वरीयसी यौतुकं वा? उमासमा वधूः क्वचित्सुलभा?

कल्याणी परमुमातङ्कवादलक्ष्यतां गता। मया किं कृतम्।

मनोहरण —किं त्वं तां दग्धुं नाकामयथाः? अस्माकं दुर्भाग्ये आसीत् कश्चिद्-भाग्यांशः येन वयं कारागारयातनाभ्य उन्मुक्ताः।

---

1 स्मयमाना – ईषत्-हासयुता।

चन्द्रिका मैंने भी यही सोच रखा है ।

एक बार प्रभात में झाड़ू से आंगण को साफ करती हुई कल्याणी को मनोहरण बोला- तुम दासी के समान काम करती रहती हो । बहू इस काम को क्यों नहीं करती है ।

कल्याणी —(आंसुओं के साथ) यह सेठ की पुत्री है । काम इसे कहां करने आता है । मेरी सेवा करने वाली उमा परलोक चली गई ।

मनोहरण —(मन में) दहेज के लालच का फल भोगो । (प्रकट) एक योजना बनाते हैं ।

कल्याणी —क्या योजना ?

मनोहरण —कल सवेरे मैं झाड़ू लगाऊंगा. तुमने मेरे हाथ से इसे लेने का प्रयत्न करना मैं न दूंगा । इस प्रकार हमें संघर्ष में लगा देख कर यह मेरे हाथ में झाड़ू ले कर स्वयं इस काम में जुट जाएगी ।

कल्याणी -- हां, यह योजना सफल हो सकती है ।

दूसरे दिन प्रातः मनोहरण झाड़ू लगाने लगा । कल्याणी ने उसके हाथ से झाड़ू छीनने का प्रयत्न किया । कुछ क्षणों तक सास-ससुर को इस प्रकार संघर्ष में लगा देख कर चम्पा मुस्कराती हुई धीरे-धीरे वहां आकर बोली—'आप इस प्रकार झगड़ा क्यों करते हैं । बारी क्यों नहीं डाल लेते । एक दिन एक और दूसरे दिन दूसरा झाड़ू लगाएगा' । तब कल्याणी ने पति के हाथ से झाड़ू ले कर आंगन साफ कर दिया । विफल योजना वाला मनोहरण कमरे में आकर उमा को याद करने लगा । कल्याणी झाड़ू को यथा-स्थान रख कर सहानुभूति प्राप्त करने के लिये पति के पास बैठ गई ।

मनोहरण अच्छे स्वभाव वाली बहू अच्छी होती है या दहेज ? उमा जैसी बहू क्या कहीं मिल सकती है ?

कल्याणी परन्तु उमा आतंकवाद का शिकार बनी, मैंने क्या किया ।

मनोहरण —क्या तुम उसे जला देना न चाहती थी ? हमारे दुर्भाग्य में कोई सौभाग्य का अंश था जिससे हम जेल की यातनाओं से छूट गये ।

कल्याणी —मैं पहले ही दुखिया हूं । मुझे अब और कांटों में मत फैंको । आज मेरे मन की पीड़ा को कोई भी न समझता है । दुर्भाग्य से

कल्याणी —भवान् पूर्वमेव शूलविद्धां मां कण्टकेषु माक्षिपतु । अद्य मे मनो-व्यथां न कोऽपि बुध्यते । दुर्भाग्यान्मे कश्चित्सहोदरोऽपि नास्ति । कं हृदयव्यथां ज्ञापयेयम् । अनिलोऽपि साम्प्रतं बुध्य-मानोऽपि अजानन् यथा तिष्ठति । (इत्यभिधाय साश्रुमुखी भूमौ न्यपतत्)

मनोहरणः समाश्वसिहि साम्प्रतम् । शनैः शनैरेषा कर्तव्यं परिचेष्यति ।

कल्याणी —न सम्भाव्यते । मम वार्द्धक्यं न निरापदम् । कृतमानसाहं यौतुक-वस्तूनि एतत्पितृभ्यां निवर्तयितुम् । मनोहरणः —एतेनानलो घृतपातेन यथा वर्धिष्यते कलहः । न कोऽपि लाभः ।

"परस्मिन् वासरे श्वश्रूं यौतुकोपहारवेत्रासनोपविष्टां चम्पा प्राह—"भवत्याः स्थूलकायं वेत्रासनं न सहते वोढुम् । मम पितृभ्यां कष्टार्जितवित्तेन एतत्सर्वं मेऽदायि । भवती तां काष्ठास्य-न्दिकामलङ्करोतु ।"

कल्याणी – (भीतेव वेत्रासनं परित्यज्य काष्ठास्यन्दिकोपविष्टा मनसि) हा ! मया किं कृतम् । अपशकुनेषु सत्स्वपि अहमुमां पितुरालयमग-मयम् । वस्तुत, अहमेव तज्जीवनान्तनिमित्तम् । यौतुकलोभाकृष्टया मया यदभद्रमाचरितं तत्फलमहं भुनज्मि । (रुदती) उमे, क्षमस्व मां पुत्रि, क्षमस्व । हे भगवन्, नय मां तत्र यत्र मे वधूरुमा वर्तते । नय प्रभो, प्रापय मां तत्र ।

चम्पा —(प्रविश्य) भवती किमर्थं रोदिति । यदाप्यहं निरीक्षे, भवत्याः नयने भिक्षुकचक्षुषीव सदा सलिलाप्लुते[1] । एतमपशकुनं कदा यावत् सहिष्यामहे ।

कल्याणी परमेतन्निकेतने मेऽधिकारो न ते ।

चम्पा – भवतीचेत् सदनस्वामिनी, अहं सुताय किमर्थमानीता । किं केवलं यौतुकमाप्तुमेव परकन्याः गेहेषु समानीयन्ते ?

कल्याणी – (चम्पायाः कोपाकृतिं वीक्ष्य मनसि) साम्प्रतं कुत्र गच्छेयं किं कुर्याम् । प्रतीयते, एषा कदाचिद् धक्कया मां बहिः करिष्यति ।

---

1. सलिलाप्लुते—सलिलपूर्णे ।

मेरा कोई भाई भी न है। किसे दिल की पीड़ा बताऊ। अनिल अब जानता हुआ भी अनजान जैसा बैठा है। (यह कर कर आंसुओं से भरे मुखड़े वाली धरती पर गिर गई)।

मनोहरण —अब धीरज कर। यह धीरे धीरे स्वयं अपने कर्तव्य को पहचाने गी।

कल्याणी —यह अब संभव नहीं। मेरा बुढ़ापा आपत्तियों से भरा है। मैं यह दहेज की चीजें इसके मां-बाप को लोटा दूंगी।

मनोहरण —इस से आग में घी डालने के समान झगड़ा और भी बढ़ेगा। इसका कुछ लाभ नहीं। दूसरे दिन दहेज की कुर्सी पर बैठी सास को देख कर चम्पा बोली—आप के भारी शरीर को यह बेंतकी कुर्सी सहन न कर सकती है। मेरे माता-पिता ने कष्ट से कमाये धन से यह सब कुछ मुझे दिया है। आप उस लकड़ी की कुर्सी पर बैठो।

कल्याणी – (डरी हुई वेत्रासन को छोड़ कर लकड़ी की कुर्सी पर बैठी हुई मन में सोचने लगी? हाय, मैंने क्या किया। अपशकुनों के होने पर भी उमा को बाप के घर भेज दिया। असल में उसकी प्राणहानि की मैं ही कारण हूं। दहेज के लालच में मैंने जो बुरा काम किया उसका फल अब भुगत रही हूं। (रोती हुई) उमा, मुझे क्षमा करो पुत्री क्षमा करो। हे भगवान, मुझे वहीं ले चलो जहां मेरी बहू उमा है। प्रभु, मुझे ले चलो।

चम्पा – (आकर) आप क्यों रो रही हो। जब भी मैं देखती हूं, आप की आंखें भिखारी के समान सदा पानी से भरी रहती हैं। इस अपशकुन को हम कब तक सहन करेंगे।

कल्याणी —पर इस घर पर मेरा अधिकार है, तेरा नहीं।

चम्पा —यदि आप ही घर की मालकिन हो तो मुझे पुत्र के लिये क्यों लाई थी। क्या केवल दहेज के लिये ही दूसरों की कन्याएं घर में लाई जाती हैं?

कल्याणी —(चम्पा की क्रोधभरी शकल को देखकर मन में) अब कहां जाऊं क्या करूं। मालूम होता है, यह कभी धक्का देकर मुझे बाहर

मम भर्ता सुतश्चापि मे साहाय्यं न कुरुतः । अद्याहं सनाथाऽप्यनाथा। यौतुकवस्तूनि किमहं मृता सती शीर्षे निधाय नेष्यामि ? एषा यौतुकोपहारान्निरीक्षमाणा पित्रोर्धनाढ्यतायाः गर्वोन्मत्ता नस्तृणवदपि न बुध्यते । प्रभाते मे मुखदर्शनं वर्जयति। न मार्जनीं करे आददाति, न पात्रमार्जनं कुरुते, न वस्त्रप्रक्षालनं विदधाति, न चुल्लिकासमीपमुपगच्छति । प्रत्युत पक्वभोजने दोषानुसन्धानपराऽत्रतिष्ठते । अहं दासीव एतदग्रतः पृष्ठतो वा भ्रमामि । एवंविधजीवनेन को लाभः । किमहमात्महत्यां कुर्याम् ? परमात्मघातिनः शतं जन्मानि पुनः पुनर् नरके पतन्ति। ऋषिभिः सत्यमुक्तम्—

असुर्यानामते लोका अन्धेन तमसावृताः ।

तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।

अतो नाहमात्मघातं करिष्यामि । कक्षस्य यत्कोणे मे उमा अरोदीत् तत्रैव भृशं रोदनपराऽहं मनोभारं लघयिष्यामि[1] । एवं विचिन्त्य कक्षेशानकोणस्था रोदितुमारेभे "क्षमस्व पुत्रि उमे, क्षमस्व माम्। हा ! मया महान् पाप आचरितः। पुत्रि, क्षमां देहि" । एवं विलपन्त्या नयनाश्रूणि तस्मिन्नेव स्थले अपतन् यत्रोमालोचनसलिलबिन्दवोऽपतन् ।

ततोऽकस्मादुमात्मा तत्रोपस्थिता परोक्षं प्राह—"जननि, मा रुदिहि । त्वं मे श्वश्रूः मातृसमा । अहं भारतीयवधूः । मतः क्षमां याचित्वा मां पापकुण्डे मा निपातय । वस्तुतः अपराधक्षमापनं मे धर्मः, यन्निमित्तं भवत्याऽऽभीलमिदमनुभूयते अहं भवत्यै अत्र देवलोकस्थापि तथैव सम्मानं धारयामि यथा ते निकेतनस्था। मातः, मानवहृदयदौर्बल्यमेव दुःखं प्रसूते । तृष्णासरितः न कोऽपि तटः । एषा सन्तोषतयैव ततुं शक्यते । अत्र देवलोके देवतुल्यमेव नारीसमादरः। नात्र कन्याविक्रयः । नेह दुष्टैरबोधयुवतयो देहव्यापाराय बाध्यन्ते। अत्र देवाः सन्ति परं भारते इव नात्र देव—दास्यः। वस्तुतः अत्र नार्यां दासीत्वकल्पना जघन्योऽपराधः इह

1. लघयिष्यामि—लघुं करिष्यामि ।

निकाल देगी। मेरा पति और पुत्र भी मेरी न सुनते हैं। आज मैं सनाथ होती हुई भी अनाथ हूं दहेज की चीजों को क्या मैं मरने के बाद सिर पर रख कर ले जाऊंगी ? यह दहेज की चीजों को देखती हुई अपने माता-पिता की धनाढ्यता के घमण्ड में चूर हुई हमें तिनके के बराबर भी न समझती है । प्रभात में मेरा मुंह न देखना चाहती है। झाड़ू को हाथ न लगाती है । बर्तन साफ न करती है, कपडा न धोती है और चुल्हे के पास भी न जाना चाहती है। उल्टा पके भोजन में दोष निकालती है। मैं दासी की तरह इसके आगे-पीछे घूमती हूं। इस प्रकार के जीवन से क्या लाभ है। क्या मैं आत्महत्या कर लूं ? परन्तु आत्मघाती सौ जन्म तक बार-बार नरक में गिरते हैं ऋषियों ने सच कहा है : —
घने अन्धकार से भरे असुरों के निवासयोग्य जो लोक हैं उन्हीं को आत्महत्या करने वाले लोग मर कर प्राप्त करते हैं। इसलिये मैं आत्महत्या न करूंगी कमरे के जिस कोणे में खड़ी होकर उमा रोती थी वहीं रोकर अपने मन के भार को हल्का करूंगी। ऐसा सोचकर कमरे के ईशान कोणे में खड़ी होकर रोने लगी— 'हे पुत्री उमा, मुझे क्षमा करो, क्षमा करो पुत्री। मैंने बड़ा पाप किया है। पुत्री मुझे क्षमा कर दे। इस प्रकार विलाप करती हुई उस की आंखों के आंसू उसी स्थल पर गिरे जहां उमा की आंखों का जल गिरा था।

फिर उमा की आत्मा वहां आकर परोक्षरूप से बोली—'मां रो मत। तूं मेरी सास माता के बराबर है । मैं भारतीय बहू हूं। मुझसे क्षमा मांग कर मुझे पापकुण्ड में मत गिरा। वास्तव में अपराध की क्षमा मांगना तो मेरा कर्त्तव्य है जिस के लिये आप को यह कष्ट हो रहा है। यहां देवलोक में भी मेरे मन में आपके लिये वही आदर है जो तुम्हारे घर में था। माता, मनुष्य के हृदय की दुर्बलता ही दुख पैदा करती है । तृष्णा की नदी का कोई किनारा नहीं। इसे सन्तोष की किश्ती से ही पार किया जा सकता है। यहां देवलोक में देवताओं के बराबर ही नारी का आदर है। यहां कन्याओं को बेचा नहीं जाता है । यहां दुष्ट लोग अनजान

सहस्राक्षः एकाक्ष्णापि स्त्री-अवमाननां द्रष्टुं न सहते । अत्र यौतुक गृध्नुभिर् निरपराधयुवतयो नानले दह्यन्ते । मरणात्पूर्वंक्षणेषु मे चिन्तितपूर्तये भवती प्रयतेत । आवयोः अश्रु संयोग । भारतीययुवतीनामुद्धाराय नौकादण्डः सेत्स्यति । एवमाभाष्या-दृश्या वाग् विरराम । परोक्षवाचः गाम्भीर्यमवबुध्य भीतस्तब्धा वेपमाना कल्याणी वारिधारां विमुच्य पयोधर इव विमुक्त-नयनसलिला स्वच्छताम् आशिश्राय । परोक्षवाचा भिन्नहृदय-ग्रन्थिश्छिन्नसकलसंशया प्रलुप्तप्रलोभना सा अजगरः[1] कञ्चु-कमिव गेहमोहं विसृज्य नाकलोके उमासंयोगकामा अश्रुसंयोग-पताकासहाया तदभीष्टपूर्तये कटिं बबन्ध ।

★★

1. अजगरः—सर्पः । 'उरगः पन्नगो भोगी जिह्मगः पवनाशनः (इत्यमरः)

युवतियों की देहव्यापार के लिये विवश न करते हैं। यहां देवता तो हैं परन्तु भारत में जैसे यहां देवदासियां न है। वास्तव में स्वर्ग में नारी में दासी की कल्पना करना बहुत बड़ा अपराध समझा जाता है। यहां हजार आंखों वाले इन्द्र एक आंख से भी नारी का अपमान देखना सहन न करते हैं। यहां दहेज के लोभी लोग निरपराध युवतियों को आग में नहीं जलाते हैं। मरने से पहले क्षणों में जो मैंने सोचा था उस को पूरा करने के लिये आप प्रयत्न करो। हमारा आंसुओं का संयोग भारतीय युवतियों के उद्धार के लिये चप्पू सिद्ध होगा। ऐसा कह कर अदृश्य वाणी बन्द हो गई। परोक्षवाणी की गंभीरता को समझकर डरी हुई, हक्की-बक्की तथा कांपती हुई कल्याणी बादल पानी की धारा को छोड़ कर जैसे नेत्रों का पानी निकाल कर स्वच्छ हो गई। परोक्षवाणी से टूटी हृदय की गांठ वाली, दूर हुए सब संशय वाली, नष्ट हुए लोभ वाली कल्याणी सांप कैंचुली को जैसे घर के मोह को छोड़ कर स्वर्गलोक में उमा का समागम पाने के लिये अश्रुसंयोग का झण्डा लेकर उमा के मन की बात पूरी करने के लिये कमर कस कर चल पड़ी।

★★

कङ्कणबन्धनम्

विक्रमादित्यकीर्तिगाथामुखरितायां, क्षिप्रातरङ्गोत्थितसलिलकणैः शमित-रजःकणभूतलायां, दुरितवारणाय पावननद्यभिषेकपरायणतीर्थयात्रिणां 'राम-रामेति मधुरालापावाप्तपुण्यायां, सरस्वती-उपासनाप्रादुर्भूतकविकुल-भूषणकालिदासप्रतिभाप्रसूतकाव्यनाटकालोचनपरायणायाम्, अतिथिसमादर-समर्जितयशोभरविनतायां, प्रतिगेहपालितकामधेनुसमशतशतगोदुग्धधवलायां, महाकालेश्वनेत्रपातपूतायाम् उज्जयिन्यां कर्मकाण्डकुशलः भूरिश्रवा नाम विप्रः प्रतिवसति स्म । एकदा धारानगर्यां अपुत्रो धनदासश्रेष्ठी तत्पौरोहित्ये[1] पुत्रेष्टि-यज्ञमाचरत् । पूर्णाहुतिमनु होमकुण्डनिस्सृतश्चरुहस्त एको देवः श्रेष्ठिनं चरुम् अभीष्टसिद्धये भार्यां भोजयितुं निर्दिश्यादृश्यतां जगाम । तं देवं पुरोहितयजमान-वर्जं कोऽप्यन्यो जनो द्रष्टुं नापारयत् । तच्चरुभक्षणावाप्तगर्भा धनदासपत्नी दशममासे सुन्दरबालकमजनयत् । घटनेयं भूरिश्रवसः कर्मकाण्डप्रभुत्वं ज्योत्स्ना-मिव समस्तक्षेत्रे प्रासारयत् ।

यज्ञोपवीतसंस्कारे तद्दीक्षादीक्षिताः अधीतसकलशास्त्राः, मनोवाक्कर्मभिर् ब्रह्मचर्यव्रतं परिपालयन्तः कन्दमूलफलैः जठराग्निं प्रशमयन्तः, भूतले विश्रमन्तः परित्यक्तदिवास्वापाः, वल्कलमात्रेण शरीरं परित्रायमाणाः, अमेध्य[2]वस्तूनि वर्जयन्तः, शूर्पवच्छास्त्रसारं[3] संगृह्णाना गुरुभक्तिरसलीनाः, परदारान् मातृ-वन्निरीक्षमाणाः, कामापरिचिताः, विजितेन्द्रियाः अशनिपातमिवान्तेवासिनां सर्वतोऽनिष्टकरीं राजनीतिभुजगीं दूरत एव परिहरन्तः, शुद्धचेतसः वेदवेदान्त-चर्चया श्रोतॄन् विमोहयन्तः उभयकालमुपासितसन्ध्याः, राष्ट्रभारवहनाय व्यायामेन कायं द्रढयन्तः शिष्याः अपरेभ्य आदर्शं प्रस्तुवन्तः अदृश्यन्त ।

परिणये तदुपदेशाण्तमतयः दम्पतयः गृहस्थधर्ममञ्ज्ञाः, कामक्रोधलोभमद-मोहेर्ष्याविवर्जिताः, न्यायसङ्गतसाधनैरर्थमर्जयन्तः, परित्यक्तभ्रष्टाचाराः राष्ट्र-मङ्गलाय वद्धपरिकराः व्यतिष्ठन्त ।

---

1. पौरोहित्यं—पुरोहितस्य भावः पौरोहित्यम ।
2. अमेध्यवस्तूनि—अपवित्रवस्तूनि ।
3. शूर्पम् —प्रस्फोटनम् । 'प्रस्फोटनं शूर्पमस्त्री चालनी तितउः पुमान्' (इत्यमरः)

कङ्गणा बान्धना

महाराजा विक्रमादित्य के कीर्तिगान से मुखरित, क्षिप्रा कीं लहरों से उठे जलबिन्दुओं से शांत धूलीकण वाली, पापनिवारण के लिये पवित्र नदी में स्नान कर रहे तीर्थ यात्रियों की 'राम-राम' ध्वनि से पुण्य प्राप्त करने वाली, सरस्वती की उपासना के लिये ही पैदा हुए महाकवि कालिदास की प्रतिभा से निकले काव्य, नाटकों की आलोचना में लगी हुई, अतिथियों के आदर से प्राप्त कीर्ति के भार से विनम्र, घर-घर में पाली हुई कामधेनु के समान सैंकड़ों गौओं के दूध से सफेद, महाकालेश्वर के नेत्रपात से पवित्र उज्जयिनी में कर्मकाण्ड में कुशल भूरिश्रवा नाम का ब्राह्मण रहता था। एक बार धारा नगरी के पुत्रहीन धनदास सेठ ने उसके पौरोहित्य में पुत्रेष्टि यज्ञ किया। पूर्णाहुति के बाद होमकुण्ड से निकले हुए, हाथ में चरु लिये हुए एक देवता, सेठ को अभीष्ट सिद्धि के लिये उस चरु को भार्या को खिलाने का आदेश देकर अन्तर्धान हो गया। उस देवता को पुरोहित और यजमान के बिना कोई भी न देख सका। उस चरु के खाने से सेठ की पत्नी गर्भवती हो गई और दसवें महीने उसने सुन्दर बालक को जन्म दिया। इस घटना से भूरिश्रवा के कर्मकाण्ड का प्रभुत्व चान्दनी के समान सारे इलाके में फैल गया।

यज्ञोपवीत संस्कार में उससे दीक्षा लिये हुए सब शास्त्रों को पढ़कर मन, वचन, कर्म से ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए, कन्द-मूल-फलों से भूख मिटाते हुए, धरती पर ही विश्राम करते हुए, दिन को न सोने वाले, पेड़ों की छाल मात्र से शरीर की रक्षा करने वाले, अपवित्र वस्तुओं का त्याग करते हुए, छाज के समान शास्त्रों के सार को ग्रहण करते हुए, गुरुभक्ति रस में लीन, पराई नारी को माता के समान देखते हुए, काम से अपरिचित, इन्द्रियों को जीतने वाले, वज्रपात के समान छात्रों की सब ओर से बुराई करने वाली राजनीति सर्पिणी को दूर से छोड़ते हुए, शुद्धचित्त वाले, वेद-वेदान्त की चर्चा से श्रोताओं को मोहित करने वाले, दोनों समय संध्या करने वाले, राष्ट्र का भार उठाने के लिये व्यायाम के द्वारा शरीर को मजबूत करते हुए शिष्य दूसरों के लिये आदर्श प्रस्तुत करते थे।

श्राद्धकाले तत्समाहूता यजमानपितरोऽर्चनामण्डलोपस्थिताः परिवेषित-भोजनं परोक्षं भुञ्जानाःपरेभ्यः विस्मयं चक्रिरे। एवं भूरिश्रवसः कर्मकाण्डविधि प्रत्यक्षफलदाम् अनुभूय सहस्रं जनास्तस्य यजमानतामुपजग्मुः। असौ यजमाना-निष्टभीत्या क्वापि स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याशब्दप्रयोगं वर्जयन् सकलभारते ख्यातिं लेभे। तद्गुणाकृष्टयजमानास्तस्य वायुयानव्ययभारमप्यसहन्त।

भूरिश्रवसः श्रुतकीर्तिर्नाम एक एव सुतः। जनकः सूनुशिक्षार्थं विहितसकल-प्रबन्धस्तं समस्तशास्त्रपारगं द्रष्टुमकामयत। तनयोऽपि ताताभीष्टपूरणेप्सुर् नक्तंदिवं विहितश्रमोऽधीतसकलशास्त्रो विद्वत्समायां मानं लेभे। विविधविद्याल-येभ्योऽध्यापकपदनियुक्तिपत्रेष्ववाप्तेष्वपि एककात्मजमोहनिबद्धौ पितरौ तं गेहाद् बहिः प्रेषयितुं नाकामयेताम्। पितृभ्यां श्रवणसमास्थां धारयन् श्रुतकीर्तिः पित्रादेशपालनतत्परः कर्मकाण्डे एव रुचिमधारयत्।

यजमानाः कर्मकाण्डकर्मणि प्रायः परिणीतपुरोहितमेवाभिलषन्तीति विभावयन्[1] भार्याप्रेरितः भूरिश्रवाः एकविंशतिवर्षे एवात्मजं भार्यासहायम-करोत। श्रुतकीर्तिजननी कुन्ती पुत्रवध्वै आत्मजायै यथा प्रगाढस्नेहं प्रदर्श-यन्ती, प्रत्येककर्मणि मधुरवाग्भिस्तन्मार्गदर्शनं विदधाना स्वहस्तेन भोजनं परिवेश्य अभोजयत्। वधूर्मेधापि स्वर्गसमसदनसमागमं पूर्वजन्मशुभकर्मपरि-णतिं विज्ञाय परमानन्दमग्ना श्वशुरसेवापरा पाणिपीडनमनु पञ्चममासे एव गर्भधरा विरराज। वधूं गुर्विणीं[2] निरीक्ष्य कुन्त्यामोदपारावारे नालक्ष्येताम्। सा प्रतिपदं तद्ध्यानमग्ना प्रत्यहं प्रभाते सितशर्करायुतधेनुपयः पाययन्ती तत्करेण गोतर्णकेभ्यो गोधूमचूर्णमोदकानदापयत्। खाद्यानि तिक्ताम्लवर्जितानि प्रददाना वधूं पादस्खलनभीत्या सावधानं प्रचलितुं प्रेरयामास।

एकदा कुन्ती भर्तारमपृच्छत् -"भवानवलोकितश्रुतकीर्तिमेधाजन्मपत्र इति सम्भाव्यते। किं नः सदनं बालखेलालङ्कृतं स्थास्यति"? भूरिश्रवाः अवदत्— "मेधावर्षकुण्डल्याम् अष्टमभावस्थशनिं लग्नेशभौमो निरीक्षते। श्रुतकीर्तिवर्ष-ग्रहेषु स्त्रीभावं राहुरधितिष्ठति। अतः आशङ्केऽहं मेधायै कष्टम्। भवती अरिष्टवारणाय[3] सावधाना परिचरतु एनाम्।" एतन्निशम्य कुन्ती मनस्य-

---

1. विभावयन्—गणयन्।
2. गुर्विणीं—गर्भवतीम्।
3. अरिष्टम्—अशुभम्। 'अरिष्टमशुभे तक्रे सूतिकागार आसवे।(इतिमेदिनी)

विवाह में उसके उपदेश से प्राप्त बुद्धि वाले पति-पत्नी गृहस्थ धर्म के मर्म को जानने वाले काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, ईर्ष्या से वर्जित, न्यायसंगत साधनों से धन इकट्ठा करने वाले, भ्रष्टाचार से दूर रहने वाले राष्ट्रमंगल के लिये कमर कस कर तैयार रहते थे।

श्राद्धकाल में उसके मंत्रों से बुलाये गये यजमान के पितर पूजामण्डल में आकर परोसे भोजन को किसी के बिना देखे खाते हुए दूसरों को विस्मय पैदा करते थे । इस प्रकार भूरिश्रवा की कर्मकाण्डविधि का प्रत्यक्ष फल जानकर हजारों लोग उसके यजमान बन गये। वह यजमान के अनिष्ट के भय से कहीं भी स्वर या वर्ण से मिथ्या शब्द का प्रयोग न करता हुआ सारे भारत में प्रसिद्ध हो गया । उसके गुणों पर लट्टू हुए यजमान उसके वायुमार्ग के व्यय को भी सहन कर लेते थे।

भूरिश्रवा का श्रुतकीर्ति नाम का एक ही पुत्र था । पिता ने पुत्र की शिक्षा के लिये सभी प्रबन्ध कर के उसे सब शास्त्रों का ज्ञाता बनाना चाहा। पुत्र ने भी दिन-रात परिश्रम कर के सब शास्त्रों को पढ़कर विद्वानों की सभा में मान पाया। अनेक विद्यालयों से अध्यापक पद के नियुक्ति पत्र मिलने पर भी एक पुत्र के मोह में माता-पिता ने उसे बाहर न भेजना चाहा। माता-पिता के लिए श्रवण के समान आदर रखते हुए श्रुतकीर्ति ने कर्मकाण्ड में ही मन लगा लिया।

यजमान कर्मकाण्ड में प्रायः विवाहित पुरोहित को ही चाहते हैं ऐसा सोच कर पत्नी की प्रेरणा से भूरिश्रवा ने इक्कीसवें वर्ष में ही पुत्र का विवाह कर दिया। श्रुतकीर्ति की माता कुन्ती पुत्रवधू के लिये पुत्री के समान घना प्यार दिखाती हुई, प्रत्येक काम में मीठे वचनों से उस का मार्गदर्शन करती हुई अपने हाथ से भोजन परोस कर खिलाती थी। वह मेधा भी स्वर्ग के समान घर के समागम को पूर्व जन्म का शुभ परिणाम जान कर आनन्दमग्न सास-ससुर की सेवा में लगी हुई विवाह के बाद पांचवें महीने में ही गर्भवती हो गई। बहू को गर्भवती देख कर कुन्ती की प्रसन्नता का कोई पारावार न था। वह पैर पैर में उस के ध्यान में लगी हुई प्रभात में उसे मिश्री डाल कर गौ का दूध पिलाती थी। उसके हाथ से बछड़ों को गेहूं के आटे के लड्डू खिलाती थी। खाने में तीक्ष्ण और खट्टी चीजों को वर्जित कर के बहू को पैर फिसलने के डर से सावधान हो कर चलने को कहती थी।

चिन्तयत्—"भर्तारमापृच्छ्य मुधैवाहं[1] शङ्कासागरे न्यपतम्। एते पुरोहिता एवमेव भविष्यद्वाणीभाषमाणा लोकान् भापयन्ति। समस्तं मङ्गलकरं स्थास्यति।"

परं कालस्य कुटिला गतिः। अष्टममासाद्यदिवसे मेघा सोपानमार्गावतरणरता वसुसोपाने विस्खलितपादाऽधोऽपतत्। तत्पतनध्वनिनोद्बुद्धपरिवारस्तत्समीपमुपाययौ। श्रुतकीर्तिस्तां भुजयोरादाय खट्वायामलुण्ठयत्। कुन्ती झटिति पयसि शिलाजतुं सङ्घोल्य तामपाययत्। मेघां ज्वरः जग्राह। अपरस्मिन् दिवसे तदुपचाराय कुन्त्याकारितधात्री मेघोदरं सम्यङ् निरीक्ष्य तामेकान्ते प्राह—"शिशुर्गर्भे न गतिधरः। आघातमसहमानः एव मृत इत्याशङ्क्यते।" कुन्ती एतन् निशम्यानभ्रवज्रप्रताडितेवावदत् "हा! अत्याहितम्[2]। अहं तु प्रसवदिवसगणनापरा भवामि। साम्प्रतं किं भविष्यति। किं मे मेघाजीवनं सुरक्षितम्? निष्प्राणः शिशुर् गर्भाशयाद् बहिः कथमायास्यति। मम वध्वाः-प्राणहानिर्न स्यात्। कीलकं चेन्निरापदं रज्जुः पुनरपि वटितुं शक्यते। हे दैव, रक्ष मे मेघाम्।" धात्री अवदत्—"एतद्विषये निस्सहायाहम्। प्रसववेदनां विना न कापि धात्री शिशुं जनयितुं क्षमा। भवती शल्यचिकित्सकात् परामर्शमाददातु।" इत्युक्त्वा निर्जगाम।

मेघाज्वरोऽविरामं वर्धमानः पञ्चाधिकैकशततापमानमत्यक्राम्यत्। दिवसद्वय एव तत्सुरम्याङ्गयष्टिं पीतवर्णाम् अवलोकमानो भीतपरिवारस्तां मण्डलचिकित्सालये प्रावेशयत्। महिलाचिकित्सकाऽध्यक्षत्वे त्रयश्चिकित्सकाः शल्यागारे विगतासुं शिशुं निष्कासयितुं प्रायतन्त। परिवारजना बहिःस्थिताः मेघास्वास्थ्यलाभायेश्वरं प्रार्थयन्तः अवातिष्ठन्त। शल्यचिकित्सार्थं मेघां निश्चेतनतां नेतुं महिला चिकित्सिका प्रबोधचन्द्रसहायकचिकित्सकं सूच्यौषधं प्रवेशयितुम् आज्ञपयामास। भूरिश्रवसः परिवारदुर्भाग्यादसौ तद्दिने स्वभार्याव्यवहारविक्षुब्धो नासीत्स्वस्थमानसः। अतोऽनवधानतया विगतावधिमेत्रौषधं मेघानाड्यां प्रवेश्य तां सर्वकालाय लुप्तचेतनां चकार। चिकित्सकमण्डलं विपद्-

---

1. मुधा व्यर्थम्।
2. अत्याहितम्—अत्यभद्रम्—आपतितम्।

एक बार कुन्ती ने पति से पूछा—'आप ने श्रुतकीर्ति और मेघा का जन्म पत्र देखा होगा।' भूरिश्रवा ने उत्तर दिया– 'मेघा की वर्षकुंडली में अष्टम भाव में बैठे शनि को लग्नेश भौम देखता है और श्रुतकीर्ति की वर्ष कुण्डली में स्त्री भाव में राहु बैठा है। इसलिये मेघा को कष्ट होने की आशंका है। आप अनिष्ट को दूर करने के लिये सावधान होकर मेघा का ध्यान रखें। यह सुनकर कुन्ती मन में सोचने लगी– 'पति को पूछ कर मैंने व्यर्थ ही अपना आप शंका में डाल लिया। यह पुरोहित लोग इसी प्रकार भविष्यवाणी करके लोगों को डराते हैं। सब कुछ शुभ ही होगा।

पर काल की गति कुटिल होती है। आठवें महीने के पहले ही दिन मेघा पौड़ियों से उतरती हुई आठवीं पौड़ी पर पैर फिसलने से नीचे गिर गई। उसके गिरने की आवाज सुन कर परिवार भागा हुआ उस के पास गया। श्रुतकीर्ति ने उसे भुजाओं से उठाकर चारपाई पर लिटा दिया। कुन्ती ने झटपट दूध में शिलाजीत घोल कर उस को पिला दी। मेघा को ज्वर हो गया। दूसरे दिन उस के उपचार के लिये कुन्ती से बुलाई दाई ने मेघा के पेट को ठीक तरह से देख कर कुन्ती को एकान्त में कहा 'बच्चा गर्भ में हिल न रहा है। मालूम होता है चोट को न सह कर गर्भ में ही मर गया है। कुन्ती यह सुन कर बिना बादल के बिजली से प्रताडित जैसे बोली—"हाय, यह तो बहुत बुरा हुआ। मैं प्रसूति के दिनों को गिन रही हूं। अब क्या होगा। क्या मेरी मेघा का जीवन सुरक्षित है? बच्चा बिना प्राणों के गर्भाशय से बाहर कैसे आएगा। मेरी बहू को प्राणों का खतरा न हो जाना चाहिये। खूंटी सुरक्षित हो तो रस्सी और भी वटी जा सकती है। हे भगवान, मेरी मेघा की रक्षा करो'। दाई बोली —'इस बारे में मैं कुछ भी नहीं कर सकती। कोई भी दाई प्रसवपीड़ा के बिना बच्चे को गर्भ से बाहर न ला सकती है। आप किसी डाक्टर की सलाह ले लें। ऐसा कह कर चली गई।

मेघा का ज्वर बढ़ता बढ़ता 105 को पार कर गया। दो दिन में ही उस का सुन्दर शरीर पीला पड़ गया। डरे हुए परिवार ने उसे जिला चिकित्सालय में प्रविष्ट करवा दिया। एक महिला डाक्टर की अध्यक्षता में तीन डाक्टर मृत बच्चे को गर्भ से निकालते का प्रयत्न करने लगे। बाहर खड़े परिवार के लोग मेघा के स्वास्थ्यलाभ के लिये ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे शल्य-चिकित्सा के लिये महिला डाक्टर ने प्रबोधचन्द्र कम्पोडर को इंजेक्शन लगाने

वारणाय विगतप्राणाया एव तस्याः उदाराच्छिशु[1] निष्कास्य शवद्वयं युगपत्[2] परिवाराय समार्पयत् । मेधां विगतासुं[3] समीक्ष्य वक्षःस्थलं प्रताडयन्तीं भूलुण्ठितां मातरमश्रुक्लिन्ननयनः श्रुतकीर्तिरसान्त्वयत् । बालको धरायां मेधा च चितायाम् अशयाताम् ।

भारतविख्यातकर्मकाण्डकुशलभूरिश्रवसो निकेतनं कस्य नास्थास्पदम् । मासाभ्यन्तरे एव बहवो जनाः कन्यां प्रदातुं विहितप्रयासा अदृश्यन्त । परं लोकापवादभीता कुन्ती कुलपरम्परापालनाय षण्मासाभ्यन्तरे मङ्गलकर्मारम्भं न मेने ।

गङ्गातरङ्गावलिधौतशालायाः, विद्वन्मण्डल मण्डितायास्तपःस्थल्या वाराणस्याः पश्चिमोत्तरे आसीद् देवव्रतो नाम विप्रः । तस्य विजयानन्दः, देवानन्दः घनानन्दश्च त्रयः सुताः समासन् । मध्यमो देवानन्दः सैनिकः सीमासुरक्षार्थे रिपुभिर्युध्यमानो वीरगतिं लेभे । अष्टादशहायनामिन्दुबालां षण्मासाभ्यन्तरे एव नवजाताम्राङ्कुरं तुषारपातो[4] यथा वैधव्यमग्रसत् । देवानन्दान्ते इन्दुबालामेव निमित्तं मन्यमानं श्वशुरकुलं तां पदं पदमभर्त्सयत् । तत्प्रताडितेन्दुबाला और्ध्वदैहिकक्रियामनु[5] पितुरालयं जगाम ।

महाप्रयाणमाप्तानां कृते न कोऽपि चिराय रोदिति । स्मृतयः वर्षाजलं भूमौ यथा विस्मृतिगर्भे निलीयन्ते । शोकक्षीणजठराग्निः समयौषधेन पुनः समेधते । नयनाश्रूणि वर्षतौ गते सलिलधारेव शुष्कतां प्रयान्ति । वारिदच्छायायां विगतायां प्रभाकरप्रभेव मन्दस्मितं पुनरनायासमुदेति । देवव्रतभार्या धनवती कनिष्ठसुतघनानन्दपारिणयाय भर्तारं पुनः पुनरभ्यर्थयामास । देवव्रतोऽपि तयाभ्यर्थितो वर्षानन्तरं घनानन्दोद्वाहाय प्रस्तुतोऽभूत् । संसृतेर्विचित्रा गतिः । यत्प्राङ्गणं देवानन्दावसाने क्रन्दत्संबन्धिनयनाश्रुमिषेण स्वयमप्यरोदीत् तदेव साम्प्रतं घनानन्दपरिणयोत्सवे नृत्यद् युवतीनां पादक्षुद्रघण्टिकानिनदं श्रोतुमधीरं समास्त । धनवती विस्मृतपुत्रवियोगा परिणयकर्मणि निमग्नाऽभूत् ।

---

1. उदरात्+शिशुम् ।
2. युगपत्—एकस्मिन्नेव समये ।
3. विगतासुं—मृताम् ।
4. तुषारपातः—हिमपातः ।
5. और्ध्वदैहिकक्रिया – मरणमनु क्रियमाणाक्रियाः ।

के लिये कहा। भूरिश्रवा के परिवार के दुर्भाग्य से कंपोडर उस दिन पत्नी के व्यवहार से क्षुब्ध स्वस्थ मन वाला न था। उसने बीती तिथि वाले इंजैक्शन को ही मेघा की नाड़ी में लगाकर उसे सदा के लिये चेतनाहीन बना दिया। डाक्टरमंडल ने अपना संकट टालने के लिये मरी हुई मेघा के पेट से बच्चे को निकाल कर दो मृतक इकट्ठे ही, परिवार को सौंप दिये। मेघा को मरा हुआ देखकर छाती पीटती हुई माता को आंसुओं से गीले नेत्रों वाला श्रुतकीर्ति तसल्ली देने लगा। बालक धरती में और मेघा चिता पर सो गई।

भारतप्रसिद्ध कर्मकाण्डी भूरिश्रवा का सभी आदर करते थे। महीने के अन्दर ही बहुत से लोग अपनी कन्या देने को तैयार हो गये। परन्तु लोकचर्चा के डर से कुन्ती ने कुलपरम्परा के पालन के लिये छः महीने के अन्दर शुभकार्य करना स्वीकार न किया।

गंगा की लहरों से धुले घरों वाली, विद्वत्मंडल से भरी तपःस्थली वाराणसी के पश्चिमोत्तर में देवव्रत नाम का ब्राह्मण रहता था। उसके विजयानन्द, देवानन्द और घनानन्द नाम के तीन पुत्र थे। मध्यम देवानन्द जो कि सेना में था सीमा की सुरक्षा के लिये लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हो गया। अठारह वर्ष की इन्दुबाला को छः महीने के अन्दर ही नये उगे आम के अंकुर को हिमपात के समान वैधव्य ने दबोच लिया। देवानन्द की मृत्यु में इन्दुबाला को ही कारण मानता हुआ ससुरकुल उसको कदम कदम पर फटकारने लगा। उन से प्रताड़ित इन्दुबाला और्ध्वदेहिक क्रिया के बाद पिता के घर चली गई।

मरने वालों के लिये देर तक कोई न रोता है। स्मृतियां, वर्षा का पानी भूमि में जैसे विस्मृति के गर्भ में लीन हो जाती हैं। शोक से क्षीण पेट की आग समय की औषध से फिर बढ़ने लग जाती है नेत्रों के आंसू वर्षा ऋतु के बीत जाने पर पानी की धारा के समान सूख जाते हैं। मुस्कराहट बादलों की छाया के चले जाने पर सूर्य के प्रकाश के समान फिर उदय हो जाती है। देवव्रत की पत्नी धनवती अपने छोटे पुत्र घनानन्द की शादी के लिये पति को बार-बार कहने लगी। देवव्रत भी उसके अनुरोध पर एक वर्ष के बाद घनानन्द के विवाह के लिये तैयार हो गया। संसार की गति विचित्र ही है। जो आंगन देवानन्द के मरण पर चीखते हुए संबन्धियों के नेत्रों के आंसुओं के बहाने से स्वयं भी रोया था वही अब घनानन्द के विवाहोत्सव में नाचने वाली

इन्दुबाला पत्यौ संस्थिते सर्वकारात् सहस्ररूप्यकाणि मासिकभृतिं लेभे। अर्थाकृष्टमानसा धनवती भर्तारं प्राह - "तामभ्याकारयन्तु भवन्तः। तत्पुस्तके दशसहस्रमुद्राःवर्तन्ते। आयास्यति चेत्, साहाय्यं भविष्यति। अद्य निमित्तमुपस्थितं, पुनर्निर्निमित्तं कथं याचिष्यामः। ममात्मजनिमित्तमेवायं लाभः। वयमुपयोगं कर्तुमर्हामः"। अर्थलुब्धमनाः देवव्रतः प्राह - "भवती विजयानन्दं प्रेषयतु तामाकारयितुम्। अन्तिमोऽयं मङ्गलोत्सवो मे निकेतने। एतद्वारमहम् उज्जयिन्याः भूरिश्रवोऽभिधानं पुरोहितमामन्त्रयितुकामो दूरभाषे तेन भाषणमनास्तत्केन्द्रं व्रजामि।

परिणयस्य साम्प्रतं त्रीण्येव दिवसान्यवशिष्टानि। क्षणं क्षणं चाकचक्यं प्रावर्धत। पत्युर्वेदनाक्षीणमानसा विकृताकृतिरिन्दुबालापि तत्राजगाम। सा पुस्तकस्थसमस्तधनं श्वशुराभ्यां प्राददात् असौ तस्मिन् मन्दिरे नम्याविषाण-गोवृन्दे भग्नशृङ्गधेनुरिवोपेक्षिता बभ्राम। वित्ते हस्तायाते धनवती तां सभ्रूभङ्गं निरीक्षमाणा तद्व्यथां द्विगुणां चकार।

ज्येष्ठमासस्य विंशतितमो दिवसः। भूरिश्रवाः श्रुतकीर्तिं समाहूयाब्रवीत् - "वाराणस्याः पश्चिमोत्तरे शास्त्रिपत्तने देवव्रतो नाम विप्रः। ममान्यकार्य-व्यस्तत्वात्तत्सुतपरिणयविधिं पूरयितुं तत्र भवानेव गमिष्यति। ते वायुयानभाटकं प्रदास्यन्ति। निश्चितमेतत्पूर्वमेव। स्थानं सुलभंचेन मध्याह्नोड्डयनेनैव प्रयातु भवान्"। वाराणसीनिरीक्षणोत्सुकमानसः श्रुतकीर्तिस्तताज्ञां सादरं जग्राह।

देवव्रतालये विवाहवाद्यान्यवाद्यन्त, महिलाः सस्वरं गीतान्यगायन्। अतिथय इतस्ततोऽभ्राम्यन्। बान्धवा विविधकार्यव्यस्ताः अदृश्यन्त। श्रुतकीर्तिः शान्तिहोमार्चनायां तेषां कुलपरम्परामनुसरन् वरमातुर् हस्ते रक्तसूत्रेण कङ्कणं बबन्ध। "साम्प्रतं भ्रावर्या कङ्कणबन्धनार्थमायातु"। एवं श्रुतकीर्तिवचो निशम्य अनभिज्ञेन्दुबाला तदर्थं कोमलबाहुं प्रसारयामास। एतत्समीक्ष्य धनवती—(सक्रोपम्) "एतत् किमाचर्यते त्वया? मङ्गलकार्येषु विधवानां न कङ्कणबन्धनाधिकारः"। (मनसि) "कुलक्षणेयम्। एतत्पदार्पणादेव मम देवानन्दः पञ्चत्वमुपगतः अद्य पुनरेषा हस्तं प्रसार्यापशकुनं कर्तुमीहते"। (प्रकाशम्) गच्छ पाकशालाम्"। (ततः प्रभां ज्येष्ठपुत्रवधूमाह्वयति) "प्रभे, आयाहि इतः कङ्कणबन्धनार्थम्"। (प्रभा समागत्य दक्षिणबाहुं प्रसारयति)

युवतियों के पैरों के घुंघुरुओं का शब्द सुनने के लिये अधीर था। धनवती पुत्र के वियोग को भूल कर विवाह के काम-काज में मग्न हो गई।

इन्दुबाला के पति को मरने पर एक हजार रुपया मासिक पैन्सन मिलती थी। पैसे के लालच में धनवती पति को बोली—"आप उसे भी बुला लें। उस की पैन्सन पुस्तक में दस हजार रुपया पड़ा है। आएगी तो सहायता हो जायेगी। आज कारण बना है फिर बिना बहाने के कैसे मांगेंगे। मेरे पुत्र के कारण ही उसे यह लाभ हुआ है। हम उपयोग कर सकते हैं।" धन के लालच में देवव्रत बोला —"आप उसे बुलाने के लिये विजयानन्द को भेज दें। मेरे घर में यह अन्तिम मंगलोत्सव है। इस समय मैं उज्जयिनी के भूरिश्रवा नाम के पुरोहित को बुलाने की इच्छा से टैलीफोन पर बात करने के लिये दूरभाष केन्द्र को जा रहा हूं।

विवाह के अब तीन ही दिन शेष रह गये थे। चहल-पहल पल पल बढ रही थी। पति की पीड़ा से क्षीण मन वाली, बिगड़े रूप वाली इन्दुबाला भी वहां आ गई। उसने पैन्सन पुस्तक में जमा सारे धन को सास-ससुर को दे दिया। वह उस घर में सुन्दर सींग वाली गौओं के समूह में टूटे सींग वाली गौ के समान तिरस्कृत जैसे घूम रही थी। धन हाथ आ जाने पर धनवती उसको भौं चढ़ाकर देखती हुई उसकी पीड़ा को दुगुणा बना रही थी।

जेठ महीने का बीसवां दिन। भूरिश्रवा श्रुतकीर्ति को बुला कर बोला—'काशी के पश्चिमोत्तर में शास्त्री पत्तन में देवव्रत नाम का ब्राह्मण है। मुझे दूसरे काम में व्यस्तता है इसलिये उसके पुत्र की विवाहविधि पूरा करने के लिये वहां आपको ही जाना होगा। वह वायुयान का खर्च देंगे। यह उनसे बात हो चुकी है। यदि सीट मिल सकती हो तो आप आज दोपहर की उड़ान से भी जा सकते हो'। काशी देखने की उत्कंठा से श्रुतकीर्ति ने पिता की आज्ञा को सादर मान लिया।

देवव्रत के घर में विवाह के बाजे बजने लगे। महिलाएं स्वर मिलाकर गीत गाने लगीं। अतिथि इधर-उधर घूम रहे थे। भाई-बन्धु विभिन्न कामों में लगे हुए थे। श्रुतकीर्ति ने शान्तिहोम की पूजा में उनकी कुलपरम्परा का अनुसरण करते हुए दुल्हा की माता के हाथ में लालसूत्र (मौली) से कंगणा बांध दिया। 'अब भावज कंगणा बंधाने के लिये आए' श्रुतकीर्ति के ऐसा कहने पर अनजान इन्दुबाला ने अपने कोमल बाहु को आगे कर दिया। ऐसा

श्रुतकीर्तिः—नहि नहि, भवती वामबाहुं पुरतः करोतु (एवमसौ तस्या हस्ते अन्यमनस्को[1] यथा कङ्कणमबध्नात्)

परकीयक्षेत्रे सस्यं भक्षयन्ती धेनुस्तत्क्षेत्रपतिना लगुडप्रहारैः प्रताडिता यथा घनवत्या सर्वसमक्षं वाग्दण्डाहता हतप्रभेन्दुबाला[2] झटिति-उत्थाय पाकशालां प्रविवेश। तस्या नयनसलिलं पाकशालातलमलं क्षालयितुमिवाविराममवहत्। सा मनस्यचिन्तयत्—"राजाराममोहनरायेण सतीप्रथाप्रतिकूलमान्दोलनमुद्घोष्य विधवानां किमुपकृतमनुपकृतं वेति न बोद्धुं शक्यते। एभिः सह कथं जीवनं गमयिष्यामि। पितुरालयेऽपि जीवनयापनं न सुकरम्। चिरं न सहते कोऽप्यनाथान्। किं चिरादचिराद्वा पितृसदनागतभावर्याः मां सहिष्यन्ते?" (ततो दुकूलकोणेनाश्रूणि प्रोच्छन्ती पाककर्मार्थं दर्वीं हस्ते आददौ)

दुःशासनेन द्रौपद्याः केशाकर्षणं भीमं यथा, घटनेयं श्रुतकीर्तिमानसं तीव्रं विव्याध। अनाचारिपितृमुखाद् गालिकाः श्रुत्वा सुपुत्रस्य मानसे यथा तद्धृदये विद्रोहाङ्कुरःप्रसुषुवे। घटनेयं पूजां कारयतस्तस्य मानसं वसनान्तर्गतपिपीलिका यथा दशन्ती कार्यविरोधकराऽजायत। बाह्यमनसा पूजां कारयन्नसौ इदमेव ध्यायन् मन्त्रोच्चारणेऽपि स्खलितिं व्यदधात्। कुशकण्डिकाप्रकरणे विकेन्द्रितमानसः प्रणीतापात्रमुत्तरतोऽकृत्वा दक्षिणस्यामेव न्यदधात्। सहायकपुरोहितप्रबोधितस्ततः क्षणमनु उदीच्यामकरोत्। तस्यैवंविधगतिविधिमालोक्य युवतिसमवाये स्थिताः शिक्षितकुमार्यः "होमकुण्डानलप्रतप्तोऽयं पुरोहितो भ्रान्तमानसः प्रतीयते। एतज्जलाभ्युक्षणं प्रकुर्वन्तु" एवमन्योन्यश्रवणेष्वुपहासपराः मन्दं मन्दमब्रुवन्।

श्रुतकीर्तिर् मनस्यचिन्तयत्—'किं विधवाकरो न कङ्कणार्हः? चेज्जीवनमरणे ईश्वरायत्ते तदा वैधव्ये युवत्याः को दोषः। किं विधवात्वं नारीभिरुपार्ज्यते क्रीयते वा? का नारी वैधव्यं कामयते। अथ च संसृतौ विधवात्वं नैककं पदं प्रसारयति। एतेन सहायान्ति एतत्परिवारमताः विविधापदः यथा-दारिद्र्यं, दैन्यं, मतिमान्द्यं, विवेकशून्यता, वाक्कटुता, कार्याक्षमता, श्वशुरकुलकटाक्षाः, दुश्चरितैर्दुरीक्षणम्, मिथ्यालाञ्छनानि, सागरतरङ्गवदविरलं प्रवहंश्चाश्रुप्रवाहः"। एवंविधविचारप्रवाहस्तत्पूजाविधौ सरित्तटे

1. अन्यमनस्क—उदासीनः। 2. हतप्रभा—क्षीणकान्तिः।

देकर धनवती—(गुस्से में) 'यह तुम क्या कर रही हो। मंगलकार्य में विधवाओं को कंगणा बंधाने का अधिकार नहीं' (मन में) यह कुलक्षणी है। इसके आने से ही मेरा देवानन्द परलोक सिधार गया। आज यह फिर हाथ आगे करके अपशकुन करना चाहती है'। (प्रकट) 'जा रसोई में चली जा' (फिर प्रभा, जेठी बहू को बुलाती है) 'प्रभा, इधर आओ। कंगणा बंधा लो'। (प्रभा आकर दाएं बाहु को आगे करती है) श्रुतकीर्ति—'नहीं आप बाएं हाथ को आगे करो' (इस प्रकार उसने उदास मन से जैसे उसके हाथ में कंगणा बांध दिया।

दूसरों के खेत में खेती खा रही गौ उस खेत के मालिक द्वारा लाठी से पीटी हुई जैसे धनवती द्वारा सब के सामने क्रूर वाणी से प्रताड़ित फीके चेहरे वाली इन्दुबाला झट ही उठ कर रसोई में चली गई। उसकी आंखों का पानी मानों रसोई घर के भूतल को धोने के लिये ही जैसे लगातार बहने लगा। वह मन में सोचने लगी—"राजा राममोहनराय ने सतीप्रथा के प्रतिकूल आन्दोलन करके विधवाओं का भला किया या बुरा किया यह मैं न समझ पाई हूं। इनके साथ कैसे जीवन बिताऊंगी। पिता के घर में भी जीवन बिताना कोई आसान नहीं। देर तक अनाथों को कौन सहन करता है। क्या देर-सवेर में पिता के घर में आने वाली भाविया मुझे सहन करेंगी?' फिर दुपट्टे के कोणे से आंसुओं को पोंछती हुई उसने पाक कर्म के लिये कड़छी को हाथ में ले लिया।

दुःशासन के द्वारा द्रौपदी के केश खींचने ने भीम को जैसे इस घटना ने श्रुतकीर्ति के मन को अन्दर से बींध दिया। दुराचारी पिता के मुंह से गालियां सुन कर भले पुत्र के मन में जैसे उसके हृदय में विद्रोह का अङ्कुर पैदा हो गया। यह घटना पूजा करवाते हुए उस के मन को कपड़े के अन्दर घुसी चियूंटी के समान डंग मारती हुई जैसे उस के काम काज में बाधक बन गई। बाहरी मन से पूजा करवाता हुआ वह इसी ध्यान में मन्त्र बोलने में भी गड़बड़ करने लग गया। कुशकण्डिका प्रकरण में मन उचाट होने से उसने प्रणीता-पात्र को उत्तर में न रख कर दक्षिण दिशा में ही रख दिया। सहायक पुरोहित के संकेत से फिर पल के बाद ही उत्तर में रख दिया। उसकी इस प्रकार की गतिविधि को देख कर युवतिसमूह में बैठी कुछ शिक्षित कुमारियां 'होम कुण्ड की आग के ताप से तपे हुए इस पुरोहित का मन भटक गया है। इसे पानी

ऋ षितर्पणपरायणपण्डितकर्मणि मर्कटप्रक्षिप्त[1]प्रस्तरखण्डोद्भूतसलिल बिन्दुसङ्घ इव विघ्नकरो बभूव । असौ गृहप्रस्थानलग्नमानसाध्यापकोऽन्तेवासिनां ज्ञानमुपेक्ष्य पाठं येन केन प्रकारेण समापयन् यथा होमविधि कतिचित् क्षणान् समयात्पूर्वमेव प्रपूरयामास । ततोऽसौ पुनरचिन्तयत्—"भारते निरपत्याः लक्षं विधवाः लुप्तसीमन्तकुङ्कुमाः क्रन्दन्ति । वधिरोऽयं समाजः । एतस्य कर्णकुहरे न पतति तासां विलपननिनदः । कथं नाहं विधवानामुद्धारकरो भवेयम् । अहं विधुरो विधवामेव परिणेष्यामि । एषा चेन्निरपत्या, को दोष एतदङ्गीकरणे । एतस्या मणिबन्धे[2] कङ्कणबन्धनं निरीक्ष्यैव मे मानसमुपलब्धशमं भविष्यति । शिलाबन्धः सरित्प्रवाहं यथा मे पणबन्ध एतस्या अश्रुप्रवाहं रोत्स्यति । अहं प्रस्तुतादर्शोऽपरान् सुपथि प्रवर्तयमानो विधवाशीर्भिः समृद्धो भविष्यामि । एतस्या लावण्यमप्याकर्षति मे चेतः ।" एवं करुणाकामौ तस्य स्वान्ते सस्पर्धं युगपत् पदं दध्रतुः । असौ वरानुयायिनीसहगमनान्मनो निरुध्य उज्जयिनीप्रत्यावर्तनार्थं प्रस्तुतोऽभूत् ।

ततो मनःश्रमवारणायाभ्यर्णपात्राज्जलं निपीय पुनश्चिन्तयामास—"परमेतामाप्तुमेतत्पितरौ क्व गवेषयिष्यामि । परिचयं कुतः प्राप्स्यामि ।" एवं चिन्तयन् पूजामण्डलस्थवस्तूनि स्वपुस्तकानि चाहरन् अभ्यासस्थां धनवतीमुवाच-"अहं साम्प्रतं जिगमिषामि । अन्यत्रापि कार्यं विद्यते ।" धनवती प्राह—'किं भवान् वरानुयायिनीं नानुसरिष्यति ? तत्र लग्नविधिं कः पूरयिष्यति ?" श्रुतकीर्तिरुवाच—"तत्रत्या एव पण्डिताः समस्तकार्यं साधयिष्यन्ति ।" धनवती भर्तुः समीपमुपगम्य प्राह—'पुरोहितस्तु प्रस्थानमनाः । न जाने किमर्थमुदासीनतां प्रयातः । भूरिश्रवसा सह भवद्भिः कीदृशी विचारणाचरिता । वायुयानयात्राव्ययोऽपि सोढः, कार्यमपि न प्रपूरितम् ।' देवव्रतः प्राह—"कर्मकाण्डनिष्णातोऽयं युवा । यूनां मनः कदाचिदस्थिरतामप्याश्रयति । अस्माकं प्रारम्भिककार्यं सविधि सञ्जातम् । तत्रस्थकार्यं कन्यापक्षीयपण्डिता विधास्यन्ति । न चिन्तामाप्नोतु भवती । अहं दक्षिणां ददामि ।" ततोऽसौ

---

1. मर्कटः—वानरः । मर्कटैः प्रक्षिप्ताः प्रस्तरखण्डास्तैरुद्भूतसलिलबिन्दुसमूहः ।
2. मणिबंधः—मणिर्बध्यतेऽस्मिन्निति मणिबन्धः ।

के छींटे मारो ? इस प्रकार एक दूसरी के कानों में धीरे-धीरे मजाक करने लगीं ।

श्रुतकीर्ति मन में सोचने लगा—'क्या विधवा का हाथ कंगणे के योग्य नहीं ? अगर जन्म-मरण ईश्वर के आधीन है तो वैधव्य में युवती का क्या दोष । क्या विधवापन को नारी स्वयं पैदा करती है या खरीद कर ले आती है ? कौन नारी विधवा होना चाहती है । और फिर संसार में वैधव्य अकेला पैर न पसारता है । इस के साथ इस की परिवार माने जाने वाली अनेक आपत्तियां आती हैं । जैसे-गरीबी, दीनता, बुद्धि का लुप्त होना, ज्ञानहीनता, वाणी में रूखापन, काम करने में असमर्थता, श्वशुरकुल के कटाक्ष, दुराचारियों द्वारा बुरी आंख से देखना, झूठे लांछन और समुद्र की लहर की तरह लगातार चलने वाला आंसुओं का प्रवाह ' इस प्रकार का विचारप्रवाह उस की पूजा-विधि में नदी के तट पर ऋषितर्पण के लिये बैठे पंडित के काम में वानर से फेंके पत्थर से उठने वाले जलविन्दुओं से जैसे विघ्नकारक बन गया । घर जाने की तैयारी में लगे मन वाला अध्यापक शिष्यों के ज्ञान की परवाह न करके पाठ को जिस किसी प्रकार समाप्त करता हुआ जैसे उसने होम की विधि को कुछ क्षण समय से पहले ही पूरा कर दिया । वह फिर सोचने लगा—'भारत में सन्तानहीन लाखों विधवाएं मिटे सिर के सिन्दूर वाली चीख रही हैं । यह समाज बहरा है । उनके विलाप की ध्वनि इस के कान में न पड़ती है । मैं विधवाओं का उद्धार करने वाला क्यों न बनूं । मैं स्वयं विधुर हूं । विधवा से ही शादी करूंगा । यदि यह सन्तानहीन है तो इसके स्वीकार करने में क्या दोष है । इसकी कलाई में कंकणबंधन को देख कर ही मेरे मन को शान्ति मिलेगी पत्थर का बांध नदी के प्रवाह को जैसे मेरी प्रतिज्ञा का बांध इसके आंसुओं के प्रवाह को रोकेगा । मैं अपना आदर्श प्रस्तुत करके दूसरे लोगों को रास्ता दिखाता हुआ विधवाओं के आशीर्वाद से सम्पन्न बनूंगा । इसका सौन्दर्य भी मेरे मन को प्रभावित कर रहा है ।' इस प्रकार करुणा और काम ने उसके हृदय में स्पर्धा के साथ इकट्ठा ही पैर जमा लिया । उसने बारात के साथ जाने से अपने मन को रोक कर उज्जयिनी लौटने का विचार बना लिया ।

फिर मन की थकावट दूर करने के लिये पास के पात्र से जल पी कर सोचने लगा । पर इसे पाने के लिये इसके माता-पिता को कहां ढूंढूंगा ।

पूजामण्डलस्थश्रुतकीर्तये यात्राव्ययान्वितां दक्षिणां प्रददानो घनवतीं प्राह— "पुरोहितं भोजनं भोजयतु। नाविहितभुक्तिर्व्रजेत्।" घनवती—(पाकशालास्थामिन्दुबालामाकारयन्ती) "इन्दुबाले, किं भोजनं पक्वम्?" इन्दुबाला श्रमलिनमुखं झटिति जलेन प्रक्षाल्य दुकूलकोणेन शोषयन्ती उपगम्य प्राह— आं भोजनं प्रस्तुतम्। प्रेषयतु भवती पुरोहितम्।" (पुरोहितः इन्दुबालामनुगच्छति) ततः सा प्रक्षालितकररम्यासनोपविष्टश्रुतकीर्तये[1] भोजनं परिवेषितुमारेभे

चतुष्पथे रक्तवर्तिकावरुद्धः परेभ्मः प्रथमं जिगमिषुः पादाभ्यां गतिरोधकं कराभ्यां च चक्रं मुहुर्मुहु. स्पृशन् वाहनवाहको यथा ध्वस्तधैर्यबन्धः श्रुतकीर्तिः पादाभ्यामासनभूतलं कराभ्यां च मेधाप्रसवस्थलमस्तकं[2] भूयो भूयः स्पृशन् प्राह- "किं भवती इन्दुबाला?" इन्दुबाला (किञ्चिदुन्नतमुखी) "आं मां लोका इन्दुबालेति वदन्ति।" श्रुतकीर्तिः-"असौ किमासीत्" इन्दुबाला (मनसि) "अहो। विचित्रोऽयं प्रश्नः। एतेनास्य किं प्रयोजनम्। किं वदामि, किं करोमि।" (हृदयं संस्तभ्य प्रकाशम्) "सेनायां हवालदारपदधरः सैनिकः।"

श्रुतकीर्तिः—"कथमवसानम्?" इन्दुबाला—"राष्ट्रसीमासुरक्षायै रिपुभिर्युध्यमानस्य"। (एवं भाषमाणायास्तस्याः नयनसलिलं श्रुतकीर्तिमानसस्थकरुणापादपं[3] सेक्तुमिवाधोऽपतत्) तल्लोचनाम्बुपरिवर्धितसहानुभूतिलतिकः श्रुतकीर्तिः—"कियान्समयोऽतीतः"? इन्दुबाला—"सार्धवर्षम्" श्रुतकीर्तिः— "पितृकुलं कुत्र वर्तते?" इन्दुबाला—(रुद्धस्वरेव) "दिल्ल्याः सुभाषपत्तने" श्रुतकीर्तिः "किमभिधानं पितुः"। इन्दुबाला—'श्री घनश्यामः" श्रुतकीर्तिः— 'पितुरालयं कदा गमिष्यसि"? फलभरेण विटशाखेव प्रश्नविस्तरेण नततां व्रजन्ती इन्दुबाला—"दिवसत्रयानन्तरम्" श्रुतकीर्तिः—"किमस्ति पितृसदनं दूरभाषसुविधान्वितम्"? इन्दुबाला "आम्, एवमस्ति" श्रुतकीर्तिः—"का संख्या"? इन्दुबाला—"दिग्रसवसुवेदाः"। श्रुतकीर्तिः— "कियद्वयस्ते"? एतत्प्रश्नेनानायासं संजाताङ्गभङ्गा बिभ्यती इन्दुबाला- 'अष्टादशहायनाहम्", भोजनक्षणेषु कुपितभार्याव्यवहारक्षुब्धः, स्वादुभोजना-

---

1. प्रक्षालितकर रम्यासनोपविष्टः श्रुतकीर्तिः तस्मै।
2. बुद्धेर्जन्मप्रदमस्तकम्।
3. श्रुतकीर्तेः मानसे स्थितः करुणायाः पादपस्तम्।

परिचय कहां से मिलेगा।' इस प्रकार सोचता हुआ पूजामंडल की वस्तुओं और पुस्तकों को इकट्ठा करता हुआ पास बैठी धनवती को बोला—मैं अब जाना चाहता हूं। और जगह भी काम है।' धनवती बोली—'क्या आप बारात में नहीं जाओगे? वहां लग्न का काम कौन करवाएगा। श्रुतकीर्ति—'वहां के पंडित ही सब काम करवा देंगे।' धनवती पति के पास जा कर बोली - पुरोहित तो जाने को तैयार है। पता नहीं क्यों उदास हो गया है। भूरिश्रवा के साथ आप ने क्या प्रोग्राम बनाया था। हमने हवाईजहाज का खर्च भी दिया और काम भी अधूरा रहा'। देवव्रत बोला—'यह युवा कर्मकाण्ड में बहुत ही निपुण है युवकों का मन कभी-कभी विचलित भी हो जाता है। हमारा प्रारम्भिक काम विधि के साथ सम्पन्न हो गया है। वहां के काम को कन्यापक्ष के पण्डित ही पूरा कर देंगे। आप चिन्ता मत करो। मैं दक्षिणा दे देता हूं'। फिर पूजा मण्डल में बैठे श्रुत-कीर्ति को यात्राव्यय सहित दक्षिण देता हुआ धनवती को बोला—'पुरोहित को भोजन करवाइये। बिना खाना लिये न जाए। धनवती—रसोई घर से इन्दु-बाला को बुलाती हुई 'इन्दुबाला, क्या भोजन तैयार हो गया है? इन्दुबाला आंसुओं से मलिन मुख को झटपट पानी से धोकर डुपट्टे के कोणे से सुखाती हुई पास आकर बोली - 'हां भोजन तैयार है, आप पुरोहित जी को भेज दें'। पुरोहित इन्दुबाला के पीछे चला गया। फिर वह हाथ धुलाए, सुन्दर आसन पर बैठे श्रुतकीर्ति को भोजन परोसने लगी।

चौराहे में लालबत्ती पर रुके, दूसरों से पहले जाने की इच्छा वाले पैरों से ब्रेक की ओर हाथों से चक्र (स्टेरिंग) को बार-बार छूते हुए ड्राइवर के समान, टूटे धीरज वाला श्रुतकीर्ति पैरों से आसन भूतल को और हाथों से बुद्धि को जन्म देने वाले मस्तक को बार-बार छूता हुआ बोला—'क्या तुम इन्दुबाला हो'? इन्दुबाला—(मुखड़ा कुछ ऊंचा करके) 'हां लोग मुझे इन्दुबाला कहते हैं'। श्रुतकीर्ति 'वह क्या था'? इन्दुबाला—(मन में) 'अरे, यह तो बड़ा विचित्र प्रश्न है। इससे इसको क्या प्रयोजन। अब क्या बोलूं, क्या करूं' (हृदय थाम कर प्रकट) 'सेना में हवालदार पद पर सैनिक'। श्रुतकीर्ति—अन्त कैसे हुआ? इन्दुबाला—'राष्ट्र की सीमा सुरक्षा के लिये लड़ते हुए का' इस प्रकार बोलती हुई उसकी आंखों का पानी मानों श्रुतकीर्ति के हृदय में उगे दया के पेड़ को सींचने के लिये ही नीचे गिर गया। उसके नेत्रों के पानी से बढ़ी हुई

नन्दमजानन् भर्ता यथा श्रुतकीर्तिर् मनस्यचिन्तयत् 'स्वामिनः परोक्षं पवनवेगेन' वृक्षाधःपतितफलानि मयाहृतानि। नात्र कश्चिद् दोषः। दैवयोगात्त् कोऽप्यन्तरायः समुद्भूतः। एष चेद् युद्धविधवा मे नैतिकदायित्वं पूर्वतोऽप्यधिकं समेधते। राष्ट्रकृते प्रपीडितानां सेवापि देशसेवैव गणयिष्यते"। एवं विचिन्तयन् हस्तौ प्रक्षाल्य पाकशालाया बहिर्जगाम। इन्दुबालापि प्रयान्तं तं नयनपूरं समैक्षत। एवं पाकशालास्थयोस्तयोरक्षिसंयोगस्तरणिनौकादण्डयोग इव महोदधितरणार्थं परिकरं बबन्ध।

कुन्ती—(भूरिश्रवसं प्रति) भर्तः, पुत्रवध्वाः संस्थितायाः षण्मासा अतीताः। साम्प्रत श्रुतकीर्तेः पुनर्विवाहस्य कथं न चिन्तयन्ति भवन्तः कच्चिदेषोऽस्मन्मनःप्रतिकूलं नाचरेत्। विवाहमङ्गलकार्येषु प्रायः युवतिनयनेषु चाञ्चल्यं नृत्यति। यूनां प्रेमसम्बन्धा अपि जायन्ते। जनमेजयनगरस्य चन्द्रधरोभवद्भिराशवस्तस्तत्कन्यां स्वीकर्तुम्। कश्चिद् विघ्न श्चेत आपतेत्तदापमानिताः भविष्यामः।

भूरिश्रवाः—प्रिये, श्रुतकीर्तिः पितृभक्तो युवा असौ अस्मदनाज्ञप्तो भोजनमपि नाददाति, प्रेमसम्बन्धस्य का कथा।

कुन्ती परमद्य निशि मया त्रिकटः स्वप्नोऽवलोकितः।

भूरिश्रवाः—नार्यः स्वप्नलोके एव विचरन्ति सदा। नाहमधिकं श्रवणेच्छुः। (श्रुतकीर्तिर् द्वारं खटखटायते) अभ्यन्तराद भूरिश्रवाः—"को भवान्"? अग्रतः प्रयातः द्वारमुद्घाट्य) हुं, श्रुतकीर्तिः। भवान् वरानुयायिन्यां न सम्मिलितः"?

श्रुतकीर्तिः—मम मनसा नाज्ञप्तम्। अतः प्रतिनिवृत्तोऽहं प्रपूरितप्रस्थानपूर्वप्रथः[1]।

भूरिश्रवा—सुष्ठु कृतं त्वया। लग्नकार्यं कन्याकुलपुरोहितः प्रपूरयिष्यति। (कुन्तीं प्रति) "पश्य, आगतस्ते सूनुः। व्यर्थमेव विकलतां वहसि।" (कुन्तीं पुत्रं वक्षसालिङ्गय) "त्वं स्नाहि, अहं प्रातराशं साधयामि"। श्रुतकीर्तिः कृताभिषेकः कृताल्पाहारः विश्रममिषेणापरकक्षमुपगम्य मनस्यचिन्तयत् 'प्रश्नसागरे निक्षिप्ता सा, न जाने कीदृशसंशयजालपतिताऽवरुद्धश्वासा वर्तते। कथं न समा-

1, प्रपूरिताः प्रस्थानात्पूर्वं वर्तमानाः प्रथाः येन सः।

सहानुभूति रूपी बेल वाला श्रुतकीर्ति—'कितना समय हो गया' ? इन्दुबाला—'डेढ साल' श्रुतकीर्ति 'पितृकुल कहां है ? इन्दुबाला– (रुके हुए गले से) 'दिल्ली के सुभाषपत्तन में'। श्रुतकीर्ति—'पिता का क्या नाम है' ? इन्दुबाला – 'श्री घनश्याम'। श्रुतकीर्ति 'पिता के घर कब जाओगी' ? फलों के भार से पेड़ की शाखा के समान प्रश्नों के विस्तार से झुकती हुई इन्दुबाला—'तीन दिन के बाद'। श्रुतकीर्ति—'क्या पिता के घर में दूरभाष की सुविधा है' ? इन्दुबाला—'हां, है' श्रुतकीर्ति 'क्या नम्बर है' ? इन्दुबाला—4861 '। श्रुतकीर्ति – 'तुम्हारी आयु क्या है' ? इस प्रश्न से अनायास उसे अंगड़ाई आ गई। वह डरती हुई बोली—'अठारह वर्ष की'।

भोजन के समय गुस्से में आई पत्नी के व्यवहार से क्षुब्ध, स्वादु भोजन के आनन्द को न जानते हुए पति के समान श्रुतकीर्ति मन में सोचने लगा—'पेड़ के नीचे वायु के वेग से पड़े फलों को मालिक के परोक्ष में मैंने उठा लिया है। इसमें कोई दोष नहीं। भाग्ययोग से कोई विघ्न न हुआ। यदि यह युद्ध-विधवा है तो मेरी नैतिक जिम्मेवारी पहले से भी बढ जाती है। राष्ट्र के लिये पीडित लोगों की सेवा भी राष्ट्रसेवा ही गिनी जाएगी'। इस प्रकार सोचता हुआ हाथ धोकर वह रसोईघर से बाहर चला गया। इन्दुबाला ने भी जा रहे उसको आंख भर कर देखा। इस प्रकार रसोईघर में बैठे उन दोनों के नेत्र संयोग ने किश्ती और चप्पू के संयोग के समान एक बड़े समुद्र को तरने के लिये कमर कस ली।

कुन्ती भूरिश्रवा को बोली—'पतिदेव, पुत्र वधू के देहान्त हुए अब छः महीने बीत चुके हैं श्रुतकीर्ति के दूसरे विवाह के बारे में आप क्यों नहीं सोचते हैं। कहीं यह हमारे मन के प्रतिकूल कुछ कर न बैठे। विवाहोत्सव में प्रायः युवतिजन के नेत्रों में चञ्चलता नाचती है। युवकों के प्रेमसम्बन्ध भी हो जाते हैं। जनमेजय नगर के चन्द्रधर को आप ने उसकी लड़की स्वीकार करने का आश्वासन दिया है। यदि कोई विघ्न पड़ जाय तो हमारा अपमान होगा। भूरिश्रवा 'प्रिये, श्रुतकीर्ति पितृभक्त युवक है। हमारी आज्ञा के बिना भोजन न करता है। प्रेमसम्बन्ध का तो क्या कहना'।

कुन्ती पर आज रात को मैंने बड़ा बुरा स्वप्न देखा है।

भूरिश्रवा नारियां सदा स्वप्नलोक में ही विचरण करती हैं। मैं अधिक न सुनना चाहता हूं।

श्वासनाय पत्रमेकं लिखेयम्। ममपत्रप्राप्तेः पूर्वं ध्रुवं सा पितृसदनस्था भविष्यति'। (ततोलेखनीकर्गलकरो लिखितुमारभते) :—

क्षिप्रातटम्,
उज्जयिनी
दिनाङ्कः :—ज्येष्ठपूर्णिमा,
सम्वत्सरः —२०४२

इन्दुबाले,

नमो नमः।

भवद्वेवरपरिणयकाले ते वैधव्यमालक्ष्य त्वया सह श्वशुरकुलकृतव्यवहारेण तिमिङ्गिलैः सागरगर्भं इवान्दोलितं मे मानसम्। भोजनक्षणेषु मदुपस्थापितप्रश्ननिस्सृतभाववीचिनिमग्ना त्वं विकला मा भूया इति विचिन्त्य पत्रमिदं प्रहीयते। अहं नासौ चपलमानसो युवा योऽग्नत्वे शलभो दीपशिखायामिव प्रेमानले हुतात्माऽपकीर्ति समर्जयति। अत एव मया त्वं 'प्रिये' इति शब्देन न सम्बोधिता। एतदर्थं भवेस्त्वं प्रतीक्षापरा। विवेकपूर्वमाचरितमेव शुभं फलति। अविवेकिनः सदा आभीलकुण्डे निपतन्ति धैर्यबन्धश्चेत् स्थिरो न भीतिर्जीवनप्रवाहस्य। चाञ्चल्यं कृत्रिमसाधनपक्वफलमिव जीवनं नीरसमेव विदधाति। अहमपि स्वयं कस्याश्चिद विरहविकलः। नवनिर्माणमना उडुपेन[1] महोदधिं तितीर्षामि। एतदर्थं तवापि मङ्गलकामना अपेक्षिताः। आशासे आवयोः प्रश्नोत्तरकुसुमानि शुभफलेषु परिणंस्यति। भवती पत्रोत्तरं मा प्रहिणोतु।

प्रश्नकर्ता— श्रुतकीर्तिः

इन्दुबाला (घनश्यामपुत्री)
सुभाषपत्तनम् (नवमवीथी)
दिल्ली, दूरभाष : दिग्रसवसुवेदाः।
(पत्रप्रतिलिपिमसौ गात्रपास्येऽधारयत)

श्रुतकीर्ति[2]प्रश्नेषुविद्धमानसा भावसागरनिमग्नेण्दुबाला मनस्यचिन्तयत्—''विधवाः सामान्यजनानां घृणास्पदम्। अयं तु

---

1. उडुपेन—लघुतर्या।
2. श्रुतकीर्तेः प्रश्नाः एव इषवस्तैर् विद्धं मानसं यस्याः सा।

'श्रुतकीर्ति द्वार को खटखटाता है। भूरिश्रवा आप कौन है ? आगे जाकर दरवाजा खोलकर अच्छा, श्रुतकीर्ति ! आप बारात में न गये ?

श्रुतकीर्ति —मेरे मन ने ही आज्ञा न दी इसलिये प्रस्थानपूर्व की प्रथाएं पूरी करवा कर लौट आया हूं ।

भूरिश्रवा —आप ने अच्छा किया । लग्न के काम को कन्याकुल का पुरोहित पूरा करवा देगा ! (कुन्ती के प्रति) देख, आ गया न पुत्र तेरा । व्यर्थ में व्याकुल हो जाती हो ।(कुन्ती श्रुतकीर्ति को छाती से लगा कर) 'तुम स्नान करो । मैं अल्पाहार तैयार करती हूं' । श्रुतकीर्ति स्नान के बाद अल्पाहार कर के विश्राम के बहाने दूसरे कमरे में जाकर मन में सोचने लगा 'मेरे द्वारा प्रश्नसागर में अकेली न मालूम किस संशयजाल में फंसी रुके श्वास वाली है । उसे तसल्ली देने के लिये क्यों न एक पत्र ही लिख दूं । मेरे पत्र के पहुंचने से पहले वह निश्चय ही पिता के घर आ चुकी होगी' । तब कागज, कलम लेकर लिखने बैठ जाता है :—

क्षिप्रातट,
उज्जयिनी
दिनाङ्क—ज्येष्ठपूर्णिमा सम्बत्—2042

इन्दुबाला,

नमो नमः ।

आप के देवर के परिणयकाल में तेरे विधवापन को देखकर ससुर-कुल ने जो तेरे साथ व्यवहार किया था उसने मेरे मन को मछलियां सागरगर्भ को जैसे आन्दोलित कर दिया भोजन के समय मेरे द्वारा किये गये प्रश्नों से निकली भावलहरी में डूबी तुम व्याकुल न हो जाओ, यह सोचकर यह पत्र लिख रहा हूं । मैं वह चञ्चल मन वाला युवक न हूं जो पतंगा दीपशिखा पर जैसे प्रेम की आग में कूदकर अपयश पाता है । इसी लिये मेने तुझे 'प्रिये' शब्द से सम्बोधित न किया है । इस के लिये तुम्हें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी । सोच समझ कर किया हुआ काम ही अच्छा फल देता है । बिना सोचे काम करने वाले लोग सदा संकट के कुण्ड में गिरते हैं ।

पुरोहितः। किमेष नद्यां प्रवहमाननराय यथा येऽत्रलम्बं प्रदातु-काम: ? एतावत्प्रश्नानां कोऽर्थः" ? एवं पुरोहितपृष्टप्रश्नसोपाना-रोहणात्ररोहणलग्नमानसायास्तस्याः धैर्यबन्धः वालुकाबन्ध इव विश्रृङ्खलतां प्रयातुमारेभे"। सा दिवसत्रयं श्वशुरालयकृतवासा श्वश्रूमापृच्छ्य पितुरालयं जगाम।

पितृसदनाप्ता साऽपरदिवसे एव पत्रहरावाप्तपत्रकोणेऽवलोकितश्रुतकीर्त्यभिधाना विकसितमानसा रहसि गत्वा तदुद्घाट्याधीयाना मनस्यचिन्तयत् "श्रुतकीर्तेः पत्रमिदम्। असौ कस्याश्चिद् विरहविकल:" केवलमिदमेव वाक्यं समाश्वासयति मे चेतः। यतो विपन्नकर्णकुहरे[1] एवार्तक्रन्दनं प्रविशति। तप्तं लोहमेव सन्तप्तमालिङ्गति। निजपदविपादिकाऽपरिचितः परपीडानभिज्ञः। परं किमसौ स्वायत्तो मामङ्गीकर्तुम् ? कर्मकाण्डविधौ समस्त-भारते लब्धख्यातिर् भूरिश्रवाः किमाज्ञापयिष्यति ? अहं पत्रप्रेषणा-द्वारिता। अतस्तदाज्ञामनुपालयिष्यामि'। (ततोऽसौ तत्सुगुप्तं मञ्जूषायां न्यदधात्। एवं यथा-यथा दिनान्यगच्छंस्तथा तथा तस्या मनोव्यथा वर्षर्तुकूष्माण्डलतेवावर्धत। न सखीसम्भाषणं, न भोजने रुचिः, न निद्रा।

अवलोकिततद्व्यवहारचर्या जननी इन्दुमती भर्तारं प्राह—"श्वशुरालयप्रतिनिवृत्तेन्दुबाला न स्वस्थमानसा। न जाने तत्र केन कीदृशं व्यवहृतम्"। घनश्यामोऽवदत्—"प्रिये, वैधव्यं हि सर्व-सङ्कटमूलम्। तनयां विधवां निरीक्ष्य मे प्राणा निस्सरन्ति। आत्म-जामङ्गलाय पितरः समस्तं कर्तुं पारयन्ति परं विधवात्वजनि-तापमानं वारयितुं न क्षमाः। कश्चिद् युवा चेन्मे तनयामङ्गी-कुर्यात्, अहं तस्मै सकलसम्पदमुपहारीकुर्याम्"। इन्दुमती—कश्चिद् विधुरश्चेत् प्रस्तुतः स्यात्तदपि नापरकरम्"। घनश्यामोऽवदत्—"प्रिये, नः एतावद् भाग्यं कुतः। भारतस्य दूषितोऽयं समाजः। अत्र विधुरा अपि कुमारीः परिणयन्तो न लज्जन्ते"।

वाराणस्याः प्रतिनिवृत्तः श्रुतकीर्ति. वने लुप्तधेनुः गोपा इव विकल इतस्ततोऽभ्राम्यत्। मात्रा पुनः पुनरुक्तोऽपि भोजनं

---

1. विपन्नाः—आपद्ग्रस्तास्तेषां कर्णकुहरे श्रवणविवरे।

धीरज का बांध यदि पक्का हो तो जीवन के प्रवाह को कोई डर नहीं। चचलता बनावटी मसालों से पके फल के समान जीवन को नीरस बना देती है। मैं भी स्वयं किसी के विरह से व्याकुल हूं। नये निर्माण के मन से एक छोटी किश्ती से बड़े समुद्र को पार करना चाहता हूं। इसके लिये आप की शुभ कामनाएं भी अपेक्षित हैं। आशा है हमारे प्रश्नोत्तर के फूल अच्छे फलों में परिणत होंगे। आप पत्रोत्तर मत लिखिये।

प्रश्नकर्ता—श्रुतकीर्ति

इन्दुबाला (घनश्याम पुत्री)

सुभाषपतन गली 9

दिल्ली दूरभाष—48610

(पत्र की प्रतिलिपि को उसने कोट की जेब में रख दिया।

श्रुतकीर्ति के प्रश्नबाणों से विंधे मन वाली, भावसागर में डूबी इन्दुबाला मन में सोचने लगी—'विधवाओं से साधारण लोग घृणा करते हैं तो यह तो पुरोहित है। क्या नदी में बहते हुए मनुष्य को जैसे यह मुझे सहारा देना चाहता है? इतने प्रश्न करने का क्या मतलब'। इस प्रकार पुरोहित से पूछे प्रश्नों की पीड़ियों पर चढ़ने-उतरने में लगे मन वाली उस के धीरज का बांध रेत के बांध के समान बिखरने लग पड़ा। तीन दिन सुसराल में बिता कर वह सास से पूछकर बाप के घर चली गई।

पिता के घर में दूसरे दिन ही डाकिये से प्राप्त पत्र के कोणे में श्रुतकीर्ति का नाम देखकर प्रसन्न मन वाली एकान्त में पत्र को खोलकर पढ़ती हुई मन में सोचने लगी—"यह श्रुतकीर्ति का पत्र है। वह स्वयं किसी के वियोग से व्याकुल है, यह एक ही वाक्य मेरे मन को तसल्ली देता है। क्योंकि दुःखी के कान में ही दुःखी की आवाज जाती है। तपा लोहा ही तपे लोहे से मिलता है।

जिसके पैर न फटी बियाई वह क्या जाने पीड़ पराई। परन्तु क्या वह मुझे अपनाने के लिये स्वतन्त्र है? कर्मकाण्डविधि में सारे भारत में प्रसिद्ध भूरिश्रवा आज्ञा दे देगा? मुझे पत्र न लिखने के लिये कहा है, मैं आज्ञा का पालन करूंगी'। फिर उसने

नागृहणात्। तस्येमं वैराग्यभावमालक्ष्य चिन्तातुरा कुन्ती भर्तारं प्राह—"श्रुतकीर्तिः किमर्थं विरक्तः। असौ निशि अभुक्ताहार एव सुष्वाप। मया वारं वारं पृष्टोऽपि मनोगतं न विवृणोति[1]। वाराणसीं भवद्भिर् व्यर्थमेव प्रहितोऽयम्। न जाने तत्रानेन किमवलोकितम्। सुन्दरोऽयं मे सुतः। लोकानां कुदृष्टिपातादपि बिभेम्यहम्। अहमेकपत्रच्छायायां[2] निवसामि। ममसूनुश्चेद् विप्रद्ग्रस्तः, नाहमामरणं भवद्भिः सह सम्भाषिष्ये। स्यात् मेधा-विरहविकलः परिणयविलम्बात् क्षुब्धो वर्तते। जनमेजयनगरवास्त-व्यश्चन्द्रधरो भवद्भिश्चिरादाश्वासितः। कथं न साम्प्रतं श्रुतकीर्ति कन्यां प्रदर्श्य विवाहतिथिर्विनिश्चीयते। भूरिश्रवाः प्राह—प्रिये, समाश्वसिहि। श्रुतकीर्तिर् न किमप्याचरिष्यति अस्मदभाषितः। अहमद्यैव गमयामि तं जनमेजयनगर्यां चन्द्रधरसुतामालोकितुं किनचिन्निमषेण।

अत्रान्तरे श्रुतकीर्तिः पितृवन्दनार्थं तत्राययौ। भूरिश्रवाः "आयुष्मान् भूया" इति भाषिताशीर्वादः तं प्राह—'पुत्र, रात्रि-भोजनं कथं नादायि त्वया। अधुनैव ते जननी मामुपालभ्य गता। वाराणस्याः प्रत्यागतस्त्वं विचलितमना इव लक्ष्यसे। ब्रूहि नि-मित्तम्। अहं भवत्तुष्टये सकलं कर्तुं क्षमः।

श्रुतकीर्तिः—(अस्वाभाविकस्वरे) नहि किमपि नास्ति। भूरिश्रवाः—"तव परिणयविलम्बः साम्प्रतं न नो रोचते। जनमे-जयनगरवास्तव्यचन्द्रधरकन्या अस्माभिः भवदर्थं स्वीकृता। श्वस्तत्सदने गृहप्रवेशमङ्गलोत्सवो वर्तते। तेनाहमेवाभ्यर्थितः कर्मकाण्डविषये। एतन्निमषेण त्वं तत्रोपस्थितः कन्यां निरीक्ष्यानु-मतिं प्रदेहि। वयं परिणयतिथिनिर्धारणक्षमाः स्याम"। दण्डैक-प्रियाध्यापकस्य निर्निमित्तं प्रहारक्षुब्धः शिष्यः गुरोर्महत्त्वं विस्मरन् यथा विस्मृतपितृसम्मानः श्रुतकीर्तिः नयने उन्नमय्य प्राह—"अहं कुमारीं निरीक्षितुं व्रजेयम्? अहं तु विधुरः। विधुराणां कुमारी-परिणयने कोऽधिकारः। श्रुतश्रुतकीर्तिवचाः भूरिश्रवाः वज्राहत

1. विवृणोति प्रकटयति।
2. तोत्रं—वेणुकम्। 'तोत्रं वेणुकमालानं बन्धस्तम्भेऽथ शृंखला' (इत्यमरः)

पत्र को चुपचाप सन्दूकची में रख दिया। इस प्रकार जैसे-जैसे दिन बीतने लगे उसके मन की पीड़ा वर्षा ऋतु में कद्दू की बेल के समान बढ़ने लगी। वह न किसी सहेली से बोलती थी, न भोजन मे रुचि थी, न नींद।

उसके व्यवहार और चर्या को देखकर माता इन्दुमती पति को बोली—'सुसराल से लौटी इन्दुबाला का मन स्वस्थ न है। पता नहीं वहां किस ने कैसा व्यवहार किया'। घनश्याम बोला—'प्रिये, वैधव्य सब संकटों का मूल है। पुत्री को विधवा देखकर मेरे प्राण निकलने लगते हैं। पुत्री की भलाई के लिये माता-पिता सब कुछ कर सकते हैं परन्तु विधवापन से बने अपमान का निवारण नहीं कर सकते। कोई युवक मेरी पुत्री को स्वीकार करे तो मैं उसे अपनी सारी सम्पत्ति भेंट कर दूं'। इन्दुमती—'यदि कोई विधुर मिल जाए तो भी कोई हानि नहीं'। घनश्याम—'प्रिये, हमारे इतने भाग्य कहां। भारत का यह समाज दूषित है। यहां विधुर भी कुमारियों से शादी करते हुए न शरमाते हैं।

काशी से लौटा श्रुतकीर्ति वन में खोई गौ वाले ग्वाले के समान व्याकुल इधर-उधर घूमता था। माता के बार-बार कहने पर भी भोजन न करता था। उसकी इस उदासीनता को देखकर चिन्तित कुन्ती पति को बोली—'श्रुतकीर्ति विरक्त क्यों है। रात को बिना भोजन किये ही सो गया। मेरे बार-बार पूछने पर भी मन की बात न बताता है। काशी इसे आपने व्यर्थ ही भेज दिया। न मालूम, वहां इसने क्या देखा। मेरा लड़का सुन्दर है। दूसरों की नजर लगने से भी घबराती हूं। मैं एक पत्ते की छाया में रहती हूं। यदि मेरे पुत्र को कुछ हो गया तो मैं जीवन भर आप से बोलूंगी नहीं। हो सकता है मेधा के विरह से व्याकुल विवाह में विलम्ब होने से ही क्षुब्ध हो। जनमेजयनगर के चन्द्रधर को आपने देर से आश्वासन दिया है। अब श्रुतकीर्ति को कन्या दिखाकर क्यों नहीं विवाह की तिथि निश्चित की जाती है। भूरिश्रवा—'प्रिये, धीरज करो। श्रुतकीर्ति हमारे बिना पूछे कुछ भी न

इव कतिचित्क्षणान्मूर्छितो यथा स्वपदतलभूमिं स्खलन्ती-मिवान्वभवत्। असौ मनस्यचिन्तयत्—"एष एवं कथं भाषते। अनेनाद्यावधि ये समक्षं शीर्षमुत्थाय नावालोकि। एवंविधपरिवर्तनं कथं जातम्। एतस्यवाराणसीदर्शनं मे महार्घमसिध्यत्। कुन्ती-संशयः सत्ये परिणमन्नवलोक्यते। किमेष काञ्चिद् विधवां परिणिनीषति? हा! किं करिष्यामः"। (प्रकाशम्) जात, किमेवं भाषसे? अस्माभिस्तु चन्द्रधरः सपणम् आश्वासितः। न मंस्यसे, महल्लजास्पदं स्थास्यति। अथ चास्मच्छास्त्राणि नैवमाज्ञापयन्ति? (गतिं धारयन्नपि तोत्राहतो हयो यथा पूर्वतोऽप्यधिकं विकृतः) श्रुतकीर्तिः प्राह "भवतां शास्त्राणि भ्राष्ट्रे पतन्तु। अहं व्यावहारिकम् आचरिष्यामि। विधुरः केवलं विधवामेवोपयातु-मर्हति। नाहं कुमारीपरिणयेप्सुः"। इत्युक्त्वा कोपाविष्ट एव निर्जगाम।

भूरिश्रवाः शतशतैर् विद्धो यथा भग्नमानसः खट्वायाम-लुण्ठत्। कुन्ती तत्रागता भर्तारं विकलं समीक्ष्य प्राह –"भवन्तः अत्र किमर्थं लुण्ठिताः? भोजनवेलाप्यतिक्रान्ता। प्रातःकालिकप-योऽपि नादायि। किं विपरीतं निरीक्षन्ते भवन्तः" भूरिश्रवा प्राह "श्रुतकीर्तिः कुत्र वर्तते? कुन्ती—'न मया ज्ञायते। अहं तु पाकशालायामुभयोः परीक्षापरा व्यतिष्ठे"। भूरिश्रवाः—"कुन्ति, अत्याहितम्"। कुन्ती विकला हतप्रभा वेपमाना—'हुँ किं जातम्? अहं बिभेमि, द्रुतं वदन्तु" भूरिश्रवाः – श्रुतकीर्तिर् विद्रोहमाश्रितः। असौ काञ्चिद् विधवां परिणिनीषति न कुमारीम्। कुन्ती—(पाणि-भ्यां शिरः प्रताड्य)—हा! वयं कर्मकाण्डपुरोहिताः। समाजे कथं मुखं दर्शयिष्यामः। अनलगृहीतसदनः परनिकेतनाग्निं कथं शम-यिष्यति'। भूरिश्रवाः—कुन्ति, एतत्क्षणेषु मे ख्यातिर्भमित्तुं धावति। कच्चिदहं लोकाज्ञातोऽभवम्।

पाकशाला भोक्तॄन् सकलं दिनं प्रत्यैक्षत। परं तद्दिने न कोऽपि तत्र पदं दधार। अपराह्णे गृहकर्मकरा सत्या भोजनालय-मायाता स्थालीः पक्वान्नपूर्णाः समीक्ष्य विस्मिता कुन्त्याः समीप-मागता प्राह—"मातः, अद्य पात्राणि पक्वान्नपूरितान्येव।

करेगा। मैं आज ही किसी बहाने से चन्द्रधर की लड़की देखने के लिये उसे जनमेजय नगर में भेजता हूं।

इतने में श्रुतकीर्ति पिता को नमस्कार करने के लिये वहां आया। भूरिश्रवा 'लम्बी आयु हो' ऐसा आशीर्वाद देकर उसको बोला—'पुत्र, रात को भोजन क्यों न किया था। अभी तुम्हारी माता उलाहना देकर गई है। काशी से लौटे आप उदास मन वाले हो। कारण बताओ। मैं आपकी प्रसन्नता के लिये सब कुछ कर सकता हूं' श्रुतकीर्ति (अस्वाभाविक स्वर में) 'नहीं कुछ भी नहीं'। भूरिश्रवा—'तुम्हारे विवाह का विलम्ब अब हमें अच्छा न लग रहा है। जनमेजयनगर के चन्द्रधर की लड़की हमने आप के लिये स्वीकार की है। कल उसके घर में गृहप्रवेश का उत्सव है, कर्मकाण्डविधि के लिये उस ने मुझे ही बुलाया है। इस बहाने आप वहां जाकर लड़की को देखकर हमें अनुमति दो जिससे हम विवाह का दिन निश्चित कर सकें। अधिक दण्ड देने वाले अध्यापक के बिना किसी निमित्त के प्रहार से क्षुब्ध शिष्य गुरु के महत्व को भूलता हुआ जैसे पिता के आदर को भूलकर श्रुतकीर्ति आंखें उठाकर बोला—'मैं कुमारी को देखने जाऊं? मैं तो विधुर हूं। विधुरों का कुमारी के साथ विवाह करने का क्या अधिकार है'। श्रुतकीर्ति के वचन को सुनकर भूरिश्रवा वज्र से प्रताड़ित जैसा कुछ क्षणों के लिये मूर्छित हुआ अपने पैरों के नीचे की भूमि को फिसलता हुआ समझने लगा। वह मन में सोचने लगा 'यह ऐसे क्यों बोलता है। इसने तो आज तक मेरी ओर सिर उठा कर भी नहीं देखा। इसका काशी जाना हमारे लिये बहुत महंगा रहा: कुन्ती का सन्देह सचाई में बदलता प्रतीत होता है। क्या यह किसी विधवा से विवाह करना चाहता है? हाय, क्या करेंगे'। (प्रकट) पुत्र, तुम ऐसा क्यों बोलते हो। हम ने चन्द्रधर से पूरी प्रतिज्ञा की है। यदि न मानोगे, बड़ी शर्म की बात होगी। हमारे शास्त्र भी ऐसी आज्ञा न देते हैं'। पूरी गति पर दौड़ता हुआ भी चाबक से मारा घोड़ा जैसे पहले से भी अधिक विगड़ा हुआ श्रुतकीर्ति बोला—'आप के शास्त्र भाड़ में

भवद्भिराहारः कथं नाङ्गीकृतः।" कुन्ती—(रहस्यं गोपायमाना) श्रुतकीर्तिर्न सदनस्थः आवयोः स्वास्थ्यं न सुचारु। अतो न भुक्तिः विहिता। त्वं पक्वान्नं स्वबालकेभ्यः नय, शोधितपात्रा गेहं प्रयाहि"।

दिवाकरकिरणाः करुणानभिज्ञाः यथा श्रुतकीर्तिसन्देशं पितरावनिवेद्यैवास्ताचलं प्रयाताः। पूजास्थलं सायंकालिकसन्ध्यायै भूरिश्रवसं निष्फलं प्रत्यैक्षत। चुल्लिका पाकक्रियायै कुन्तीकर-कमलस्पर्शाभ्यस्ता सायं तदानागमनहेतुं नाजानात्। तद्गत-स्फुलिङ्गाः कुन्त्याः स्वाभिमानो यथा शीतलतां भेजिरे। कुन्ती यथा तथोत्थाय दीपे कृततैलवर्तिका वेदनावर्धकान्धकारं प्रकाशदण्डे-नाद्रावयत्। घटिकासूचिके स्वगत्या प्राचलताम्। नववादनं, दशवादनम्, एकादशवादनं, द्वादशवादनम्। यथा यथा क्षणा अत्यक्राम्यन्; पित्रोर्हृदयस्पन्दनमवर्धत। वायुवेगप्रकम्पितद्वारं श्रुतकीर्तिना खटखटायमानं विभाव्य पुत्रपदध्वनिं श्रोतुमधीरा कुन्ती निराशा सती पुनः कक्षमागत्य भर्तृसमीपे खट्वायां निष्प्राणा यथाऽपतत्। असून् धर्तुमेकोऽपरस्य मुखे जलबिन्दून् न्यपातयत्।

कुन्ती – (पतिं प्रति) "भर्तः, किं मे सुतः प्रत्यावर्तिष्यते? (उच्चैः रुदती) हा! ममात्मजः कुत्र गतः। भूरिश्रवाः—"कुन्ति, उच्चैर् मा रुदिहि। एष रात्रिकालः। श्रुतरोदनाः प्रतिवासिनोऽत्रा-यास्यन्ति। अद्यत्वे जनाः परगृहं प्रदीप्य कौतुकं द्रष्टुं कामयन्ते। कोऽपि कस्यापि भद्रं नेहते। अथ त्वं जानासि मे निकेतनमपरेषां विशेषतः ईर्ष्यास्थलम्। कुन्ति, पश्य नेदं कृतयुगं यत्र राम-समसुताः जाताः। कलियुगे लोकाः सन्ततये विलपन्ति परमत्रापत्य-शूलम। वन्यशूलं केवलं पादौ विध्यति। परं सन्ततिशूलमापाद-

जाएं। मैं तो व्यावहारिक करूंगा। विधुर केवल विधवा के पास ही जा सकता है। मैं किसी कुमारी से शादी न करूंगा'। ऐसा कह कर गुस्से में ही चला गया।

भूरिश्रवा सैंकड़ों तीरों से विंधा जैसे टूटे मन वाला खाट पर लेट गया। कुन्ती वहां आकर पति को व्याकुल पा कर बोली—'आप यहां क्यों लेटे हो। भोजन का समय भी बीत गया, सवेरे का दूध भी न लिया। क्या कोई गड़बड़ है ? भूरिश्रवा बोला—'श्रुतकीर्ति कहां है ? कुन्ती—'मुझे कुछ मालूम नहीं'। मैं तो रसोईघर में दोनों की प्रतीक्षा कर रही थी'। भूरिश्रवा—'कुन्ती, बहुत बुरा हुआ'। कुन्ती व्याकुल शिथिल कांपती हुई—'हैं, क्या हुआ ? मुझे डर लग रहा है, जल्दी बोलो'। भूरिश्रवा—'श्रुतकीर्ति विद्रोही बन गया। वह किसी विधवा से विवाह करना चाहता है कुमारी से नहीं'। कुन्ती दोनों हाथ सिर पर मारकर—'हाय, हम कर्मकाण्ड के पुरोहित हैं। समाज में कैसे मुंह दिखाएंगे। जिसके अपने घर में आग लगी हो वह दूसरों के घर की आग क्या बुझाएगा'। भूरिश्रवा - 'कुन्ती, इस समय मेरी प्रसिद्धि मुझे खाने दौड़ रही है। क्या ही भला होता, मैं इस प्रकार लोगों में प्रिय न होता'।

रसोईघर दिन भर खाने वालों की प्रतीक्षा करता रहा। परन्तु किसी ने उस में पैर न धरा। दूसरों के घर का काम-धन्धा करने वाली सत्या भोजनालय में पतीलियों को पक्वान्न से भरा देखकर विस्मित कुन्ती के पास आकर बोली—'माता, आज पात्र तो पक्वान से भरे पड़े हैं। आप ने भोजन क्यों नहीं किया'। कुन्ती—(रहस्य को छिपाती हुई) 'श्रुतकीर्ति घर पर न है। हम दोनों का स्वास्थ्य ठीक न है। इस लिये आज खाना नहीं खाया। तुम पका अनाज घर ले जाओ और बर्तन मांज कर चली जाओ।

सूर्य की किरणें मानों दया से अपरिचित जैसे श्रुतकीर्ति का सन्देश माता-पिता को दिये बिना ही अस्ताचल चली गईं। पूजास्थल सायंकाल की संध्या के लिये भूरिश्रवा की निष्फल प्रतीक्षा करता रहा। पाककर्म के लिये कुन्ती के करकमलों के

मस्तकं पित्रोः शरीरं सम्बिष्य चमत्कारं दर्शयते । परिवारसमक्षं दिग्गजत्व-धारिणः, बृहस्पतिसममेधाविनोपि पराजिताः दृश्यन्ते" । कुन्ती —(क्रन्दन्ती) नहि भर्तः, अहं ममात्मजस्य मुखं दिदृक्षामि" ।

भूरिश्रवाः—"कुन्ति, संशयायन्नानां मनांसि सदाऽमङ्गलमेव ध्यायन्ति । न जाने कीर्तिना किमाचरितम् । एतद्भित्तिप्रलम्बितं गात्रपं पश्य । कच्चित् किञ्चित्लिखित स्यात्" । (कुन्ती द्रुतमुत्थाय गात्रपास्यगवेषणपरा तत्रस्थपत्रमेकं भर्त्रे उपहार्यकरोत्) भूरिश्रवा अधीतपत्रः प्राह—"कुन्ति, श्रुतकीर्तिना मनोऽभीष्टविधवाप्रहितपत्रस्य प्रतिलिपिरियम्। कुन्ती —"कुत्रत्या सा" भूरिश्रवाः—"दिल्ल्याः सुभाषपत्तनस्य घनश्यामतनया। सुतसंरक्षणाय आवाभ्यां नवोद्बोध आश्रगीयः" । कुन्ती—"परमेतत्क्षणेऽवसौ कुत्र वर्तते । एतद्व्यथया भिद्यते मे हृदयम्" । (अत्रान्तरे दूरभाषे घण्टिकानिनदः) भूरिश्रवाः द्रुतमुत्थाय गृहीतप्रापकः 'हुँ को भगवान् भाषते' ? उत्तरे "अहं कृष्णकान्तः, नमस्करोमि" भूरिश्रवाः—(विकलस्वरः)—"हुँ भवान् कृष्ण-कान्तः ? किं कुशलं वर्तते" ? कृष्णकान्तः आं, समस्तं मङ्गलमयम् । श्रुत-कीर्तिर् भवन्तमनापृच्छ्य विगतदिवसे अत्रायातः । भवन्तश्चिन्तोपेता मा भवन्तु । सूर्यास्तमनात्पूर्वं सदनं प्रास्यति । तदभीष्टपूर्तौ न वयं दोषं पश्यामः। स्वसा कुन्ती कुत्र वर्तते" ? भूरिश्रवाः—'अत्रैवास्ति' (प्रापकं कुन्तीकरे प्रदाय) भाषतां भवती' । कुन्ती —"अयं मूर्खोऽनिवेद्यैव गतः । रात्रिरावाभ्यां क्लेशेन नीता" । कृष्णकान्तः "खेदं मा कुरु एतन्मार्गे मा भूया अत्ररोधकरा । अद्यत्वे समयगतिमनुलङ्घ्य पदक्रमं विदधाना एव जनाः सुखभाजः"। कुन्ती "मातुल-श्चेन् मन्यते, मम कापत्तिः । प्रेषयतु भवानेनम्" ।

भूरिश्रवाः—"कुन्ति, श्रुतं सकलं त्वया ? साम्प्रतं श्रुतकीर्तेर् मनोगतं पूरयितुं स्वमानसं शिलासमं विधेहि"। कुन्ती प्राह—भर्तः, ललनाः मामनादरेण द्रक्ष्यन्ति । भवत्कर्मकाण्डप्रमुखत्वं सकलभारतं मन्यते । लोकाः किं वदिष्यन्ति।

स्पर्श की अभ्यस्त चुल्हो सायंकाल उसके न आने के कारण को न जान पाई। चुल्हे की चिंगारियां कुन्ती के स्वाभिमान की तरह ठण्डी पड़ गईं। कुन्ती ने जैसे कैसे उठकर दीपक में तेल और बत्ती डाल कर पीड़ा बढ़ाने वाले अन्धकार को प्रकाश के दण्ड से भगा दिया।

घड़ी की सुइयां अपनी गति से चलती रहीं। नो, दस, ग्यारह और फिर बारह बज गये जैसे-जैसे क्षण बीत रहे थे, माता-पिता के हृदय की धड़कन बढ़ रही थी। वायु से हिले दरवाजे को श्रुतकीर्ति से खटखटाया जानकर, पुत्र के पैरों की आवाज सुनने को अधीर, निराश कुन्ती फिर कक्ष में आकर पति के पास खाट पर प्राणहीन जैसे गिर जाती थी। प्राण बचाने के लिये एक दूसरे के मुँह में पानी की बूंदे गिरा रहा था।

कुन्ती (पति के प्रति) 'पतिदेव, क्या मेरा पुत्र लौटकर आएगा ? (ऊंचे से रोती हुई) हाय, मेरा पुत्र कहां चला गया। भूरिश्रवा—-कुन्ती, ऊंचे से मत रो। यह रात का समय है। रोने की आवाज सुनकर पड़ोसी यहां आ जाएंगे। आजकल लोग दूसरे के घर में आग लगाकर तमाशा देखना चाहते हैं। कोई किसी का भला न चाहता है। और तुम जानती हो कि मेरे घर से विशेष कर लोगों को ईर्ष्या है। कुन्ती, देखो यह सतयुग नहीं जहां राम जैसे पुत्र पैदा हुए थे। कलियुग में लोग सन्तान के लिये रोते हैं। पर यहां तो संतति कांटे के समान है। वन का कांटा केवल पैरों को ही बींधता है परन्तु सन्तान का कांटा माता-पिता के शरीर को सिर से पैर तक बींधकर चमत्कार दिखाता है। परिवार के सामने हाथी के समान वज्री और बृहस्पति के समान पंडित भी हार जाते हैं'। कुन्ती (चीखती हुई) नहीं, पतिदेव मैं अपने पुत्र का मुखड़ा देखना चाहती हूं।

भूरिश्रवा—'कुन्ती, संशय में फंसे आदमी का मन बुरा ही सोचता है। पता नहीं श्रुतकीर्ति ने क्या कर लिया है. सामने दीवार पर लटके उसके कोट को देखो हो सकता है, इसमें कुछ लिखकर रखा हो। कुन्ती ने झट उठा कर कोट की जेबें देखीं और उसमें से एक पत्र निकाल कर पति को दिया। भूरिश्रवा - (पत्र पढ़कर बोला) कुन्ती, यह वही पत्र है जो उसने मनचाही विधवा को लिखा है। मालूम होता है, यह उसी पत्र की प्रतिलिपि है'। कुन्ती—'वह कहां की है'। भूरिश्रवा 'दिल्ली से सुभाषपत्तन के वासी घनश्याम की पुत्री'। पुत्र की रक्षा के लिये हमें नया मार्ग अपनाना होगा'। कुन्ती— पर इस समय वह कहां है।

"वयमपमानिता भविष्यामः ।" भूरिश्रवा अवदत्—"कुन्ति, परोपकाराय पीतं विषमपि अमृतायते । महादेवेन संसृतित्राणाय सागरमन्थनोत्थितगरलं निपीय सकलदेवोत्कृष्टताऽवापि । वयमपि भारतीयविधवोद्धारकरा आदौ अप्रियमिवाभासमानं कर्मेदमनुष्ठाय पश्चाद् भारते कीर्तिमर्जयिष्यामः" ।

कुन्ती—"तस्याः पितृभ्यां सम्पर्कः कथं कर्तुं शक्यः" । भूरिश्रवाः—"श्रुतकीर्तिपत्रोद्धृतदूरभाषसंख्यया व्यवहारः कर्तुं पार्यते । एतदहं दूरभाषकेन्द्रात् सुगुप्तं करिष्यामि न गृहस्थदूरभाषेण ।

सायं समायातः श्रुतकीर्तिः पितरौ अभ्यवादयत् । कुन्ती—(सुतं प्रति) 'मूढ, त्वमनापृच्छ्य कथं निर्गतः' । श्रुतकीर्तिः—"पित्रोः स्नेहं परीक्षितुम् ।" कुन्ती (कृत्रिमं विहस्य)—"मूर्ख, पितृस्नेहः किमेवं परीक्ष्यते ? त्वं केन पथा जिगमिषसि" ? श्रुतकीर्तिः—"येन परोपकारप्राणधराः प्रयान्ति" । कुन्ती—"नहि पुत्र, त्वं कुलकलङ्ककरसरणीमाश्रितः" । श्रुतकीर्तिः—अम्ब, रोगनिवारणायास्वादितं कट्वौषधं पश्चात् अमृतायते । ममैत्साहसेन नः कुलं चन्द्रधवलं यशोऽर्जयिष्यति । भवतीचेन्मे पुण्यकर्मणि प्रतिरोधकरा, मम मुखमवलोकितुं विलपिष्यसि ।

कुन्तीमापृच्छ्य भूरिश्रवाः सुभाषपत्तनघनश्यामेन सम्पर्कंकर्तुं कामः क्रोशस्थितं दूरभाषकेन्द्रं प्रचचाल । प्राङ्गणात्पदमात्रं प्रस्थितस्यैव तस्य, सन्ततज्वररोगिण औषधैः प्रशान्तोऽपिज्वरस्तत्पादन्यासपरिश्रमेण यथा सुप्तः स्वान्तः पुनर्जजागार । स मनस्यचिन्तयत्—"भाग्यस्य विचित्रा गतिः । एतन्मानवमनभीष्टमार्गेऽपि प्रचालयति । अग्रतः प्रचलत्पादौ पृष्ठतः केनचिदाकृष्यमाणौ यथानुभवामि । परसदने कर्मकाण्डविधये प्रयाणक्षणानां ये गौरवं क्व लुप्तम् । किमहं स एव भूरिश्रवाः यस्य स्वागताय जना अक्षिपक्ष्माणि आस्तृण्वन ? किमेषा संसृतिर्मोहबलेनैव गतिधरा ? अहं ममात्मजमोहापन्नो मनसः प्रतिकूलाचरणादपि न बिभेमि । परं नियतिमुल्लङ्घयितुं कः क्षमः ?" एवं विचिन्तयन्नसौ दूरभाषकेन्द्रं प्राप्तः अधिकारिणाज्ञप्तः आमितघनश्यामसदनसङ्ख्याकः पलमनु 'हैलो' इति

इस पीड़ा से मेरा हृदय टूट रहा है'। इतने में दूरभाष पर घण्टी का शब्द होता है। भूरिश्रवा जल्दी उठकर रिसीवर को हाथ में लेकर 'हां, आप कौन बोल रहे हैं'। उत्तर में 'मैं कृष्णकान्त हूं। नमस्कार'। भूरिश्रवा (व्याकुल स्वर में) 'अच्छा आप कृष्णकान्त हैं? क्या कुशल-मंगल है'? कृष्णकान्त—'हां, सब ठीक है। श्रुतकीर्ति आपके बिना पूछे कल यहां आ गया था। आप चिन्ता न करें। सूर्यास्त से पहले घर पहुंच जाएगा। उसका मनचाहा करने में हम कोई दोष न देखते हैं। बहन कुन्ती कहां है"? भूरिश्रवा—'यहां ही है'। (रिसीवर को कुन्ती के हाथ में देकर बोला) 'लो बात करो'। कुन्ती—'यह मूर्ख बिना बुलाए ही चला गया। हमने रात बड़े कष्ट से बिताई'। कृष्णकान्त-'दुःख मत मनाओ। आजकल वह लोग ही सुखी हैं जो समय की गति को देख-कर चलते हैं'। कुन्ती—'यदि मामा सहमत हैं तो मुझे क्या आपत्ति है। आप इसको भेज दो'।

भूरिश्रवा—कुन्ती, सुन लिया सब कुछ तूने। श्रुतकीर्ति के मन की बात पूरी करने के लिये अपने दिल को पत्थर बनाओ। कुन्ती—'पतिदेव, स्त्रियां मुझे अनादर से देखा करेंगी। आपके कर्मकाण्ड की धाक सारे भारत में जमी है। हम अपमानित हो जाएंगे'। भूरिश्रवा बोला—'कुन्ती परोपकार के लिये पिया विष भी अमृत बन जाता है। महादेव ने संसार की रक्षा के लिये सागरमन्थन से निकले विष को पी कर सब देवताओं में उच्च पद पा लिया था। हम भी भारतीय विधवाओं का उद्धार करने वाले पहले अप्रिय लगने वाले भी इस काम को करके पीछे से भारत में यश पाएंगे। कुन्ती—'उसके माता-पिता से कैसे सम्पर्क किया जा सकेगा'। भूरिश्रवा—'श्रुतकीर्ति के पत्र में लिखे दूरभाष नम्बर पर। यह मैं दूरभाष केन्द्र से गुप्त रूप से करूंगा, घर के टैलीफोन से नहीं।

शाम को घर पहुंचे श्रुतकीर्ति ने माता-पिता को नमस्कार किया। कुन्ती (पुत्र के प्रति) 'मूर्ख, तू बिना पूछे कैसे निकल गया था' श्रुतकीर्ति—'माता-पिता के प्यार की परीक्षा के लिये'। कुन्ती—(बनावटी हंसी हंसकर) 'मूर्ख, माता-पिता के प्यार की परीक्षा, ऐसे की जाती है? तुम किस रास्ते से जाना चाहते हो'। श्रुतकीर्ति—'जिस से परोपकार के लिये प्राण न्योछावर करने वाले जाते हैं', कुन्ती—'नहीं पुत्र, तुम कुल को कलंकित करने वाले मार्ग से जा रहे हो'। श्रुतकीर्ति—'माता, रोगनिवारण के लिये

निशम्य प्राह "किं घनश्यामसदनमिदम्" ? घनश्यामः 'आं, श्रीमन्तः, अहं घनश्यामः । भवन्तः कुतो भाषन्ते" ? भूरिश्रवा "अहमुज्जयिन्याः भूरिश्रवाः भाषे। भवद्भिरनिवार्यं कार्यं विद्यते । श्वः ममावासमायान्तु भवन्तः"। घनश्यामः—"भवन्तः कर्मकाण्डपण्डिता भूरिश्रवसः" ? भूरिश्रवाः "आमेतदेव" घनश्याम.—"अवश्यमायास्यामि श्रीमन्तः । भवत्सदनदर्शनं मे भाग्योदयसमम्"। एवं दूरभाषे घनश्यामकृतालापोऽसौ गृहं प्रत्याजगाम ।

घनश्यामोऽपरस्मिन्नेव दिवसे उज्जयिनीं प्राप्तः कर्मकाण्डपण्डितप्राङ्गणे प्रविवेश । भूरिश्रवाः—आगन्तुकं घनश्याममेव मत्वा अग्रतो गतः—"किं भवान् सुभाषपत्तनस्य घनश्यामः" ? तेन, "आम्, अहं घनश्यामः" इत्युक्ते तम् अतिथिकक्षावाप्तं "गृह्णातु आसनमिदम्"इत्याज्ञप्तोऽसौ आसने उपविवेश । जलपानेन कृतातिथ्यं तं भूरिश्रवा अपृच्छत्—"किं भवानिन्दुबालातातः ?" घनश्यामः—"आं श्रीमन्तः, इन्दुबाला ममात्मजा, निरपत्या, युद्धविधवा"। भूरिश्रवाः—"किं भवांस्तस्याः पुनर्विवाहं चिकीर्षति" ? "घनश्यामः—आं चेद्भवन्तोऽनुगृह्णन्ति" ।" भूरिश्रवाः —"मम पुत्रः श्रुतकीर्तिरपि विधुरः । अहं तस्मै भवत्तनयामङ्गीकरोमि"। घनश्यामः—(बद्धाञ्जलिः) "श्रीमन्तः, भवन्तः भारतविख्याताः कर्मकाण्डियपण्डिताः । भवन्मार्गदर्शनेन भारतस्य लक्षं विधवा उपकरिष्यन्तं। धन्याः भवन्तः । विवाहतिथिं श्रीमन्त एव निर्धारयिष्यन्ति" । भूरिश्रवाः—'सूचयिष्यामो भवन्तम्" घनश्यामः—"भवदाज्ञया साम्प्रतं जिगमिषाम्यहम्"। भूरिश्रवाः—"भोजनं गृह्णातु भवान्" घनश्यामः—"नहि श्रीमन्तः, एतत्क्षणेभ्यः सदनमिदं मे तनयाश्वशुरालयः । न साम्प्रतमत्र मे भोजनाधिकारः" । ततोऽसो बद्धाञ्जलिर्नमस्कृत्य निर्जगाम ।

गृहमाप्तः सानन्दो घनश्यामः भार्याम् इन्दुमतीं प्राह—"प्रिये, सुखदः समाचारः"। उज्जयिनीवासिना भारतविख्यातकर्मकाण्डपण्डितेन भूरिश्रवसा विधुराय सूनवे इन्दुबाला स्वीकृता । उदितं तनयाभाग्यम् । भगवता वयं

खाई गई कड़वी औषध पीछे से अमृत बन जाती है। मेरे इस साहस से हमारा कुल चन्द्र के समान सफेद यश पाएगा। यदि तुम मेरे इस काम में रुकावट डालोगी तो मेरा मुखड़ा देखने को तरसेगी।

भूरिश्रवा कुन्ती को पूछकर सुभाषपत्तन के घनश्याम से संपर्क करने के लिये एक कोस की दूरी पर स्थित दूरभाष केन्द्र को चल पड़ा। अभी आंगन से वह कुछ ही पैर गया था कि उसकी सोई आत्मा, मियादी ज्वर वाले रोगी का दवाइयों से उतरा हुआ ज्वर चलने से जैसे फिर जाग उठी। वह मन में सोचने लगा—'भाग्य की गति भी कितनी विचित्र है। यह मनुष्य को अनचाहे रास्ते पर भी चला देता है। मुझे ऐसा अनुभव हो रहा कि मेरे आगे जा रहे पैरों को मानों कोई पीछे से खींच रहा है। दूसरों के घर में कर्मकाण्डविधि के लिये जाने वाले समय का मेरा गौरव कहां मिट गया। क्या मैं वही भूरिश्रवा हूं जिसके स्वागत के लिये लोग अपनी पलकें बिछा देते थे? क्या यह संसार मोह के बल पर ही चलता है? मैं अपने पुत्र के मोह में अपने प्रतिकूल आचरण से भी न डर रहा हूं पर भाग्य को कौन टाल सकता है।" इस प्रकार सोचता हुआ वह दूरभाष केन्द्र में जाकर अधिकारी की आज्ञा से घनश्याम के घर का नम्बर घुमाकर पल के बाद 'हैलो' सुनकर बोला 'क्या यह घनश्याम का घर है'? घनश्याम 'हां श्रीमान जी मैं घनश्याम ही हूं'। आप कहां से बोल रहे हैं? भूरिश्रवा—'मैं उज्जयिनी से भूरिश्रवा बोल रहा हूं। आपसे जरुरी काम है! कल मेरे घर आ जाइये'। घनश्याम—'आप कर्मकाण्डपंडित भूरिश्रवा जी हैं?' भूरिश्रवा - 'हां ऐसा ही है'। घनश्याम - 'हां श्रीमान् जी, मैं अवश्य आ जाऊंगा। मेरे बड़े भाग्य हैं। आपके घर के दर्शन का अवसर मिल रहा है'। इस प्रकार दूरभाष पर घनश्याम से बात करके वह घर को लौट आया।

घनश्याम दूसरे ही दिन उज्जयिनी में कर्मकाण्डपण्डित भूरिश्रवा के घर पहुंच गया। भूरिश्रवा आगन्तुक को घनश्याम समझकर आगे जाकर 'क्या आप सुभाषपत्तन के घनश्याम हैं'? 'हां, श्रीमान जी, 'मैं घनश्याम ही हूं' उसके ऐसा कहने पर पण्डित उसे अतिथिकक्ष में ले गया और वह आज्ञा पाकर आसन पर बैठ गया। जलपान से अतिथिसत्कार करके भूरिश्रवा ने उसको पूछा—'क्या आप इन्दुबाला के पिता हैं? घनश्याम—'हां महाराज, इन्दुबाला मेरी पुत्री, संतानहीन युद्धविधवा है'। भूरिश्रवा—'क्या आप उसका पुनर्विवाह

निरापदः[1] कृताः । अचिरेणैव श्रोष्यामः विवाहतिथिम् । इन्दुमती—"भर्तः, भवत्सन्देशाप्तमुदो मे मानसे मातुं न पारयन्ति । अहमिन्दुबालापरिणये विधेय-कर्माणि सुचारुरूपेण साधयिष्ये । अपरकक्षस्थेन्दुबाला समाचारमिमं निशम्य मञ्जूषातः श्रुतकीर्तिलिखितपत्रमादाय वक्षसाऽऽलिङ्ग्य मनस्यचिन्तयत्—"वायुयानात्सागरपतितयात्रिणं हैलीकुप्तरीचालकेन यथा अनेन यूना सङ्कटादुद्धृताहम् एतत्सदनं स्वर्गसमं कर्तुं प्रयतिष्ये ।

ततः श्रुतकीर्तिपरिणयोत्सवप्रस्तुतयः प्रारभन्त । कुन्ती यथाशास्त्रं सकल-विधीनपूरत् । रूढ़िवादाक्रान्ता आलोचनपराः पत्तनललना अन्योन्यकर्णेषु फुस्फु-सायमाना व्यतिष्ठन्त । परं भूरिश्रवसो भयान्न किञ्चित् व्याजह्रुः । श्रावणमास-पञ्चदशमदिवसे वरानुयानिनः वरयात्रायै सुसज्जिता भूरिश्रवसः सदनं समाजग्मुः । उद्वाहचाकचक्यं समीक्ष्य विकसितमानसा अतिथयः विधवाभूति-विहितं[2] भूरिश्रवसः पदमिदं भूरि भूरि प्रशशंसुः । नृत्यत् युवतीनां कलमेखला-कलकलः श्रवणसुखमजनयत् ।

घनश्यामनिकेतनेऽपि तद्बान्धवाः वरानुयायिनां स्वागतसम्भारायोजन-परा अदृश्यन्त । सख्यः वरकण्ठकृते चम्पावकुलप्रभृतिविविधसुगन्धवत्कुसुममालां विरचय्य इन्दुबालायै उपाहरन् । काश्चित्तस्या हस्तयोरलक्तकं कुर्वन्त्यः अदृश्यन्त । तत्क्षणेषु मेघानुद्भिद्य तडित् यथा तद्धृदयं विदार्य काचि-दन्तर्वेदना शून्ये बभ्राम । सा मनसि विधातारं निनिन्द—"अहो विधे ! मयेदमपि द्रष्टव्यमासीत्" । परमपरेष्वेव क्षणेषु शैवाले स्खलितपादो नरो यथा स्तम्भितहृदया—"अहो एतत् किम् ? मङ्गलक्षणेषु मानसे ग्लाने-रुदयः कुतः? धिङ्माम् । एतत्तु ममाश्रयप्रदातुरपमानसमम्" । ततोऽकस्मात्तस्या मस्तके प्रमोदरेखा अदृश्यन्त । तस्याः दक्षिणभागस्था परमनोभावज्ञानकुशला

---

1. निरापदः—आपद्विमुक्ताः ।
2. विधवानां भूतये कल्याणाय विहितम् ।
'प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्' (रघुवंशम्)

करना चाहते हैं' ? घनश्याम —'यदि आप की कृपा हो' । भूरिश्रवा—'मेरा पुत्र श्रुतकीर्ति भी विधुर है। मैं उसके लिये आप की पुत्री को स्वीकार करता हूं' । घनश्याम—(हाथ जोड़कर) 'श्रीमान् जी, आप भारतविख्यात कर्मकाण्ड के पण्डित हैं। आपके मार्गदर्शन से भारत की लाखों विधवाओं का उपकार होगा। आप धन्य हैं। विवाह की तिथि आप ही निश्चित करेंगे'। भूरिश्रवा—'हम आप को सूचित करेंगे'। घनश्याम —'मैं आपकी आज्ञा से अब जाना चाहता हूं'। भूरिश्रवा—'आप भोजन कर लें'। घनश्याम —'नहीं' श्रीमान् जी, अब यह घर मेरी पुत्री का सुसराल है। यहां मेरा भोजन करने का अधिकार नहीं' । फिर वह हाथ जोड़कर नमस्कार करके चला गया।

घर आ कर प्रसन्न घनश्याम ने पत्नी इन्दुमती को कहा —'प्रिये, बहुत सुखदायक समाचार है।' उज्जयिनी के भारतविख्यात कर्मकाण्डपण्डित भूरिश्रवा ने अपने विधुर पुत्र के लिये इन्दुबाला को स्वीकार कर लिया। हमारी पुत्री का भाग्य जाग उठा। भगवान् ने हमें आपत्ति से छुड़ा दिया। शीघ्र ही विवाह की तिथि का पता चल जायगा'। इन्दुमती—"पतिदेव, आप के सन्देश से मिलने वाली प्रसन्नता मेरे हृदय में समा न रही है। मैं इन्दुबाला के विवाह में करने योग्य काम को अच्छे ढंग से करूंगी। दूसरे कमरे में बैठी इन्दुबाला इस समाचार को सुनकर श्रुतकीर्ति के पत्र को छाती से लगा कर मन में सोचने लगी—'वायुयान से समुद्र में गिरे यात्री को हैलीकोप्टर से जैसे इस युवक ने मुझे संकट से बचा लिया। मैं इसके घर को स्वर्ग बनाऊंगी।

फिर श्रुतकीर्ति के विवाहोत्सव के काम प्रारम्भ हो गये। कुन्ती ने सब विधान शास्त्रानुसार पूरे किये। रूढ़िवादी आलोचना करने वाली नगर की महिलाएं एक दूसरी के कान में खुसर-फुसर करने लगीं परन्तु भूरिश्रवा के डर से कुछ बोल न सकीं। 15 श्रावण को बरातिये वरयात्रा के लिये सजधज कर भूरिश्रवा के घर पहुंच गये। विवाह की चहल-पहल बढ़ने लगी। प्रसन्न अतिथि विधवाओं के कल्याण के लिये उठाए गये भूरिश्रवा के इस कदम की बहुत प्रशंसा कर रहे थे। नाचने वाली युवतियों की मेखलाओं की मीठी ध्वनि कानों को सुख देने लगी।

घनश्याम के घर में भी भाई-बन्धु बरातियों के स्वागत की सामग्री जुटाने में लगे थे। सहेलियों ने वर के कण्ठ के लिये चम्पा, वकुल आदि अनेक प्रकार के फूलों से माला बनाकर इन्दुबाला को दे दी। कुछ उसके हाथों में

रेखा नाम सखी तस्या भावपरिवर्तनमवबुध्य तर्जनीमध्यमाभ्यां तत्कपोलं संस्पृश्य प्राह "हले, साम्प्रतं विगतं विस्मृत्य स्वभविष्यन्निध्यायन्ती एकमना: भव"। रेखाक्षरैर्जागृतहृदया विकसितमानसा इन्दुबाला स्वकरालक्तकबिन्दून् निरीक्षितुमारेभे।

वरानुयायिनो भोजयित्वा बान्धवा: वेदिकानिर्माणकार्यंभारेभिरे। रोहिणीनक्षत्रे वर: श्रुतकीर्तिर् वेदिकां प्रविवेश ततः सख्यः सुसज्जितामिन्दुबालां वेदिकायामानिन्युः। गङ्गापूजनमनु पुरोहितः इन्दुबालाकरे कङ्कणं निबध्नन्नपठत् :–

मङ्गलं भगवान् विष्णुर् मङ्गलं गरुडध्वजः।
कङ्कणं ते निबध्नामि सौभाग्यवर्धकं करे॥

इन्दुबालाकरे कङ्कणबन्धनं निरीक्ष्य प्रफुल्लितमना: श्रुतकीर्तिरन्तिमपरीक्षोत्तीर्णस्नातक इव सुखश्वासं जग्राह।

भूरिश्रवसः पाण्डित्यविमोहिता भारताखिलप्रान्तविद्वांस: एतत्पुण्यकर्मणि भागमाददिरे। तत्प्रोक्तमन्त्रध्वनिना सकलपत्तनं भ्रमरवृन्दनिनदेन वाटिका यथा गुञ्जितम् अलक्ष्यत। नारदः स्वयं वीणां वादयँस्तत्रोपस्थितः। पुष्पाञ्जलिकाले नरा:भूतलाद् देवाश्चव्योम्नः वरवधूशीर्षयोः कुसुमानि ववर्षुः। तारका दृश्यमिदम् अनिमेषाक्ष्णा अवालोकन्त। अपरप्रभाते भूरिश्रवसः श्व: सकलभारतसमाचारपत्राणां शीर्षवाक्येषु अवालोक्यत।

इन्दुबाला भूरिश्रवःसदने पदं दधार। सा श्रुतकीर्तेर् मनः वाचं चानुसरन्ती मधुरवाग्भि:, सद्व्यवहारेण, कार्यकुशतया सर्वेषां मनांसि विजिगाय। प्रातः सर्वप्रथमं परित्यक्तास्तरणा, प्रक्षालितमुखकरा, अभिवन्दितश्वशुरपादा, मार्जनीकर्मानुकृताभिषेका, अर्चनास्थलधृतश्वशुरपूजापात्रा स्वयमपि कलामात्रं प्रभुध्यानमग्ना व्यतिष्ठत। ततः श्वश्रूमापृच्छ्य भोजनकर्म समारेभे।

पाककर्मणि लब्धप्रशंसा सा समयेऽवाप्ते निकेतनं विविधविधिभिरभूषयत्। सूचीशिल्पयोस्तस्या एकाधिपत्यं विजानाना: पत्तनस्य शतं ललना-

मैंहदी लगाने लगीं। उन्हीं क्षणों में बादलों को फाड़ कर बिजली जैसे उस के हृदय को चीर कर कोई अन्तःकरण की पीड़ा शून्य में घूमने लगी। वह मन में विधाता की निन्दा करती हुई—'अरे विधाता, मुझे यह भी देखना था'। पर दूसरे ही क्षणों में—'अरे यह क्या? मंगल के पलों में यह ग्लानि कहां से। मुझे धिक्कार है? यह तो मुझे आश्रय देने वाले का अपमान हैं।' फिर अकस्मात् उस के मस्तक पर प्रसन्नता की रेखाएं उमड़ आईं। उसके दाईं ओर बैठी हुई दूसरों के मन की बात को जानने में चतुर रेखा नाम की सहेली उस के भावपरिवर्तन को समझ कर तर्जनी-मध्यमा से उस के कपोल को छू कर बोली—'अरी, अब अतीत को भूल कर अपने भविष्य पर ध्यान लगा कर एक मन बना ले। रेखा के शब्दों से जागे हृदय वाली, प्रसन्न मन वाली इन्दुबाला अपने हाथ की मैंहदी के बिन्दुओं को देखने लग पड़ी।

बारातियों को भोजन खिला कर बन्धु वेदिका बनाने के काम में लग पड़े। रोहिणी नक्षत्र में दुल्हा श्रुतकीर्ति ने वेदी में प्रवेश किया। सहेलियां इन्दुबाला को सजा कर वेदिका में ले आईं। गंगापूजन के बाद इन्दुबाला के हाथ में कंगणा बांधते हुए पुरोहित ने इस प्रकार पढ़ा—'गुरुडध्वज भगवान विष्णु मंगल करें मैं तुम्हारे हाथ में सौभाग्य की वृद्धि करने वाला कंगणा बांधता हूं।' इन्दुबाला के हाथ में कंगणा बंधा देख कर प्रसन्न मन वाले श्रुतकीर्ति ने अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण स्नातक के समान सुख का सांस लिया।

भूरिश्रवा की विद्वत्ता से आकर्षित भारत के सभी प्रान्तों के विद्वानों ने इस पुण्य काम में भाग लिया। उन से बोले गये मंत्रों की ध्वनि से सारा नगर भ्रमरसमूह से वाटिका के समान गुंजायमान हो गया। नारद स्वयं वीणा बजाते हुए वहां आए। पुष्पाञ्जलि के समय लोग भूतल से और देवता आकाश से वर-वधू के सिर पर फूल बरसाने लगे। तारे इस दृश्य को बिना पलक झपके देखने लगे। दूसरे दिन प्रातः भूरिश्रवा की कीर्ति भारत के सभी समाचार पत्रों की सुर्खियों (HEAD LINES) में लिखी गईं।

इन्दुबाला ने भूरिश्रवा के घर में पैर रख दिया। श्रुतकीर्ति के मन-वचन का अनुसरण करती हुई उसने मीठे वचनों से, अच्छे व्यवहार से और कार्य कुशलता से सब का मन जीत लिया। प्रातः सब से पहले बिस्तर छोड़ कर हाथमुंह धो कर सास-ससुर को प्रणाम करके झाड़ू लगाने के अनन्तर स्नान

स्तत्समीपमागत्य मार्गदर्शनमवाप्नुवन् । सकलपत्तनं तत्प्रशंसावाक्यैः समृद्धं शुशुभे । प्रतिवासिन्यो ललनास्तां देवीमिवान्यन्त । श्वशुरयोः प्रमोदस्य नास्तां पारावारे । तौ श्रुतकीर्तिपदं भूरि भूरि प्रशंसतुः । सदनागतातिथयो यजमानाश्च इन्दुबालातिथ्यसन्तुष्टमानसास्तां मुक्तकण्ठमस्तुवन् । यजमानाः श्रुतकीर्ति विशिष्टमानभाजं मेनिरे । बहवो यजमानास्तमर्धाङ्गिनीयुतं समायातुमभ्यर्थया-मासुः । इन्दुबालया भूरिश्रवःसदनं शतगुणमानमालेभे ।

सा सार्धवर्षानन्तरम् अनुपमसौन्दर्यभाजं मस्तके तिलकाङ्कवन्तं सव्यपादे च चक्रचिह्नयुतं शिशुं सुषुवे । कून्तीभूरिश्रवसौ राजयोगशुभचिह्न-समन्वितं पौत्रमवाप्यामन्दानन्दं लेभाते । तन्नामकर्णसंस्कारे भूरिश्रवसाहूताःमेधाविनः पण्डिताः शिशोर्नाम "देवानाम्प्रियः" इतिनिरधारयन् ।

एवं विधवाकरकङ्कणबन्धनप्रियः श्रुतकीर्तिरपि सकलैः श्रुतकीर्तिः सन् चन्द्रधवलं यशोऽवाप ।

★★

करके ससुर के पूजापात्रों को पूजास्थल पर रख कर घड़ी भर स्वयं भी प्रभु का ध्यान करती थी। फिर सास से पूछ कर रसोई के काम में लग जाती थी।

रसोई के काम में प्रशंसा पाने वाली इन्दुबाला समय मिलने पर घर-को अनेक प्रकार से सजाती थी। सूई-कसीदा के काम में उसके एकाधिपत्य को समझती हुई नगर की सैंकड़ों महिलाएं उसके पास आकर अपना मार्गदर्शन प्राप्त करती थीं। सारा नगर उसके प्रशंसा भरे वाक्यों से सम्पन्न हो गया। पड़ोस की महिलाएं उसे देवी जैसी मानती थीं। सास-ससुर की प्रसन्नता का कोई पारावार न था। वह श्रुतकीर्ति के इस कदम की बहुत प्रशंसा करने लगे। यजमान श्रुतकीर्ति का विशेष मान करने लगे। बहुत से यजमान उसे पत्नी समेत आने की प्रार्थना करने लगे। इन्दुबाला से भूरिश्रवा के घर का सौ गुणा मान बढ़ा।

डेढ़ वर्ष के बाद इन्दुबाला ने मस्तक में तिलक और दाएं पैर में चक्र चिन्ह वाले बालक को जन्म दिया। कुन्ती और भूरिश्रवा राजयोग चिन्ह वाले पौत्र को प्राप्त कर बहुत ही प्रसन्न हुए। उसके नामकरण संस्कार में भूरिश्रवा से बुलाए विद्वान पंडितों ने बालक का नाम 'देवानाम्प्रिय' रखा। इस प्रकार विधवा के हाथ में कंकणबंधन को प्रिय समझने वाले श्रुतकीर्ति की कीर्ति को सब ने सुना और उस ने चन्द्रमा के समान सफेद यश को पाया।

★★

मस्तकरुधिरम्

पूर्वकाले भारतवर्षोत्तरे सुदामानगर्याम् एकः सकलशास्त्रपारङ्गतः, धर्मप्रियः, भूपतिसमः विष्णुगुप्तो नाम धनिकोऽत्रसत्। कुबेरकृपया तस्य सम्पदां नासीत् पारावारे। सुदामानगर्यर्धभागस्य स एवाधिपतिर्बभूव। गोष्ठेषु गवां रम्भणम् अश्वशालायां च वाजिनां ह्रेषणं सर्वदाऽश्रूयत। परमपरधनिकापवादस्वरूपोऽसौ विनम्रप्रकृतिः, दयालुर् दीनबन्धुश्चाज्ञायत। तस्य मधुसममाधुर्योपेतसत्यालङ्कृतामृतमयसुखदवचो निशम्य जना मुग्धतां प्रययुः। असौ प्रतिमासं संक्रान्तौ एकस्मै निर्धनाय पयोधरधेनुं प्रददानः क्षेत्रीयाकिञ्चनान् गोदुग्धसन्तृप्तान् विदधानः आशिषो लेभे।

तस्य प्रियम्वदा नाम भार्या साध्वी, पतिव्रता, दानपरायणा, परसुखे सुखिनी पराभीले च[1] सन्तप्तमानसाऽज्ञायत। असौ पर्वदिवसेषु दीनमहिलाभ्यः मनःपूरमन्नवसनानि वितरन्ती, निर्धनकन्यानां सकलपरिणयव्ययं स्वपक्षतः विदधाना चन्द्रधवलं यशो लेभे। कोऽप्यर्थी विष्णुगुप्तसदनान्मोघमनोरथो नायात्। अतः प्रदेशियजनास्तत्सदनं पारिजातसममेवामन्यन्त[2]। मद्यमांसप्रवेशत्रिवर्जितं तन्निकेतनं देवालय इव व्यराजत। तदावासकर्मचारिणः यथासमयं वेतनं लभमानास्तद्गुणानगायन्।

असौ प्रत्यूषे उत्थाय स्नात्वा घटिकात्रयं देवपूजाविलीनोऽध्यात्मचिन्तनपरः संसारव्यवहारस्यापि व्यस्मरत्। तदर्चनाकाले प्रियम्वदा आगन्तुकसत्कारपरा भर्तुः प्रशंसां लेभे। सा स्वयमपि प्रत्यहं मन्दिरमुपगता भक्तिभावं प्रदर्शयन्ती अपरमहिलानां मार्गदर्शनमकरोत्।

सकलसुखेषु सुलभेष्वपि विष्णुगुप्तः पुत्राभावाद्व्यग्रमनाः शर्म न लेभे। प्रियम्वदा विविधव्रतानि सेवमानापि शून्याङ्कैकदा भर्तारं प्राह "पतिदेव, निष्फलकुक्षिरहमेव भवद्विरक्ततानिमित्तम्। भवन्तश्चेदपरपरिणयाय प्रस्तुता भवेयुरहं भर्तृचरणानां महानुग्रहं मंस्ये। विष्णुगुप्तः—"प्रिये, ना भारतीयसंस्कृतिर्नैवमाज्ञापयति। भाग्यलिखितमेव नरः प्राप्नोति"। पत्युर्वचनम्

---

1. आभीले—सङ्कटे। 2. पारिजातसमं—देववृक्षसमम्।

माथे का खून

पिछले समय में भारत के पूर्वोत्तर में सुदामा नगरी में एक सब शास्त्रों को जानने वाला राजा के समान विष्णुगुप्त नाम का सेठ था। कुवेर की कृपा से उसकी सम्पत्ति का कोई ठिकाना न था। सुदामा नगरी के आधे भाग का वह ही मालिक था। पशुशाला में गोओं का रंभाना और घुड़-शाला में घोड़ों का हिनहिनाना हर समय सुना जाता था। पर दूसरे साहूकारों के विपरीत वह नम्र, दयालु और दीनबन्धु था। उस की शहद के समान मीठी सच्ची अमृत जैसी सुखदायक वाणी को सुन कर लोग मुग्ध हो जाते थे। वह प्रतिमास संक्रान्ति को एक गरीब के लिये दूध वाली गो देता हुआ क्षेत्र के गरीबों को गो दूध से तृप्त करता हुआ आशीर्वाद लेता था।

उस की प्रियम्वदा नाम की पत्नी साधु स्वभाव वाली, पतिव्रता, दान देने वाली दूसरे के सुख में सुख और दूसरे के दुख में दुखी मन वाली जानी जाती थी। उस ने पर्व दिनों में गरीब महिलाओं के लिये मन भर कर अन्न वस्त्र देती हुई और निर्धन कन्याओं के सारे विवाह के भार को अपनी ओर से सहन करती हुई ने चन्द्रधवल यश पाया। कोई भी अर्थी विष्णुगुप्त के घर से खाली हाथ न जाता था। इस लिये क्षेत्र के लोग उसके घर को कल्पतरु के समान ही समझते थे। मद्य-मांस के प्रवेश से वर्जित उसका घर मंदिर के समान ही शोभा देता था। उसके घर के कर्मचारी यथासमय वेतन पाते हुए उसके गुणों को गाते थे।

वह प्रभात में उठकर स्नान करके तीन घड़ी देवपूजा में लीन अध्यात्म-चिन्तन करता हुआ संसार के व्यवहार को भूल जाता था। उसकी पूजा के समय में आगन्तुकों का सत्कार करती हुई प्रियंवदा पति की प्रशंसा पाती थी। प्रियंवदा स्वयं भी हर रोज मंदिर में जाकर भक्तिभाव दिखाती हुई दूसरी नारियों को आदर्श प्रस्तुत करती थी।

सारे सुखों के सुलभ होने पर भी पुत्र के अभाव से व्याकुल विष्णुगुप्त को शान्ति न मिलती थी। प्रियम्बदा अनेक व्रतों को करती हुई भी सूनी गोद वाली एक बार पति को बोली - 'पतिदेव, मेरी कोख का निष्फल होना ही

आकर्ण्य भावभूता प्रियम्वदा (मनसि) "एवंविधरामसमैकपत्नीव्रतधरभर्तु-रानृण्यं कथं लप्स्ये। हे राम, अनुकम्पय मां पुत्ररत्नवरदानेन" एवंविचिन्तयन्ती स्वकक्षं प्रविवेश !

अपरेऽह्नि कात्यायनी नाम वृद्धा प्रतिवासिनी पूजानिमित्तं गोघृतार्थिनी विष्णुगुप्तसदनागता प्रियम्वदां प्राह—"पुत्रि, भवत्सदनं शिशुशून्यं निरीक्ष्य दूयते मे मनः। त्वत्पश्चात् समायाताः सकलवध्वः अलङ्कृताङ्का वर्तन्ते। केवलं त्वमेवैकका शून्याङ्का भ्राम्यसि। विष्णुगुप्ताङ्गनं शिशुकेलिविवर्जितं निरीक्ष्य न केवलमहमपितु क्षेत्रगतसमस्तजना व्यथाभारेण नता अवलोकयन्ते। प्रियम्वदा– (नतमुखी) मातः, एतत्सर्वं भाग्यायत्तम्। प्राक्तनजन्मनः कर्मफलभोगान्न कोऽपि विमुक्तः"। कात्यायनी "पुत्रि, त्वं विरक्ततां मा प्रयाहि। प्राक्तनजन्मवामकर्मफलमपि[1] एतज्जन्मपरिश्रमार्जितसुकृत्यैरनुकूलयितुं पार्यते"। प्रियम्वदा-(किञ्चिन्मुखमुन्नमय्य) "भर्तुरपरोद्वाहः?" "हा! पुत्रि एवं कथं भाषसे। धर्मभीरुर् विष्णुगुप्तः कदाचिदेवं करिष्यति? (दुकूलकोणेन तस्या अश्रूणि प्रोञ्छ्य) मा रुदिहि वत्से. पश्य-अहमपि द्वात्रिंशद् वर्षाणि प्रतीक्षापरा व्यतिष्ठे। श्वशुरकुलजनोपालम्भाः मां वृश्चिकदंशवदतुदन्। मम श्वश्रूर् मां गर्भधरामालोकितुं विविधतान्त्रिकोपायान् प्रयुञ्जानापि साफल्यं न लेभे। एकदा मामेककां विहाय सभर्तृको मे सकलपरिवारोऽपरग्राममङ्गलोत्सवे प्रययौ।

तदा मम भाग्ययोगादिवैको योगी भ्राम्यन् मे द्वारमुपागमत्। असौ योगबलेन मेऽभावं विज्ञाय मां प्राह—"त्वं भूर्जपत्रे दाडिमलेखन्या रक्तचन्दनेन'[1] "राम रामेति" सपादलक्षवारं विलिख्य एकैकरामशब्दयुतं भूर्जपत्रखण्डं गोधूमचूर्णेन संलिप्य क्वचिन्सरिति कासारे वा तद्गुटिकाभिर् मत्स्यान् तर्पयन्ती, कार्यविधिसमापनदिवसे एव सलिलसिक्तधरा बीजाङ्कुरयुता यथा गर्भधरा भविष्यसि।।' एतदुपायसम्भाषणेन मामुपकृत्यास्वीकृतभोजनोऽसौ केवलं जलं निपीय निर्जगाम। रात्रौ भर्त्रा विहितपरामर्शाऽहमपरदिवसादेव तदुक्तोपायमारभे। एकस्मिन्नेव हायने श्रेणीद्वयं पारयितुकामा छात्रा यथाविरतपरिश्रममाचरन्त्यहं त्रिमासेष्वेव कार्यविधिमपूरयम्। तस्मिन्नेव दिवसे सम्प्राप्तगर्भाऽहं नवममासे रामदासमिममजनयम्।

---

1. वामकर्मफलं—विपरीतकर्मफलम्।

आप के वैराग्य का कारण हैं। यदि आप दूसरी शादी के लिये मान जाएं तो मैं आप के चरणों की बहुत आभारी रहूंगी।' विष्णुगुप्त बोला—'प्रिये, हमारी हिन्दुसंस्कृति ऐसी आज्ञा न देती है। जो भाग्य में लिखा है उसी को मनुष्य प्राप्त करता है'। पति के वचन को सुन कर भावों से भारी प्रियंवदा—(मन में) इस प्रकार राम के समान एकपत्नीव्रत को धारण करने वाले पति के ऋण से कैसे छूट पाऊंगी! हे राम, मुझ पर पुत्ररत्न के वरदान की कृपा करो। इस प्रकार सोचती हुई अपने कमरे में चली गई।

दूसरे दिन कात्यायनी नाम की बूढ़ी पड़ोसिन पूजा के लिये गौ के घी की इच्छा से विष्णुगुप्त के घर आकर प्रियंवदा को बोली—'पुत्री, आप के घर को बच्चे से शून्य देख कर मेरा मन दुखी हो रहा है। तेरे पीछे आने वाली सभी बहुएं हरी-भरी गोद वाली हैं केवल तुम ही एक सूनी गोद लिये घूमती हो। विष्णुगुप्त के आंगन को बच्चे की खेल से हीन देख कर केवल मैं ही नहीं बल्कि क्षेत्र के सब लोग पीड़ा के भार से झुके दिखाई देते हैं। प्रियंवदा—(मुंह नीचा करके 'माता, यह सब कुछ भाग्य के अधीन है। पूर्वजन्म के कर्मफल भोग से कोई भी न छूट सकता है।' कात्यायनी—'पुत्री, तुम उदास मत हो। पहले जन्म के विपरीत कर्मफल को भी इस जन्म में किये भले कामों से अनुकूल किया जा सकता है।' प्रियंवदा—(मुख ऊपर उठा कर) 'पति का दूसरा विवाह? कात्यायनी—'हाय! पुत्री, ऐसा क्यों बोलती हो।' धर्मभीरु विष्णुगुप्त कभी ऐसा करेगा? (दुपट्टे के कोणे से उसके आंसुओं को पोंछ कर) 'बच्ची, रो मत। देख मैं भी बत्तीस वर्ष तक इन्तजार में रही थी। ससुर कुलजन के उलाहने मुझे बिच्छू के डंग के समान पीड़ित करते थे। मेरी सास मुझे गर्भवती देखने के लिये अनेक तांत्रिक उपायों का प्रयोग करती हुई सफल न हो पाई थी। एक बार मुझे अकेला छोड़ कर पति के साथ मेरा सारा परिवार दूसरे ग्राम के एक मंगलोत्सव में गया था।

तब मेरे भाग्ययोग से घूमता हुआ एक योगी मेरे द्वार पर आया। वह योगबल से मेरे अभाव को जान कर मुझे बोला—'तुम भूर्जपत्र पर अनार की कलम से लालचन्दन के द्वारा 'राम राम' ऐसा सवा लाख बार लिख कर एक एक राम शब्द वाले भूर्जपत्र के टुकड़े को गेहूं के आटे से लेप कर किसी नदी या तालाब में उन गुटिकाओं से मछलियों को प्रसन्न करती हुई कार्यविधि की समाप्ति के दिन ही पानी से सींची धरती बीजांकुर से जैसे

एवं कृतोद्योगा त्वमपि मर्यादापुरुषोत्तमायोध्याधिपतेर् भगवतो रामस्य कृपया पुत्ररत्नमवाप्स्यसि ।' एवमाभाष्य मानसेप्सितघृतालङ्कृतकरा स्वावासं प्रययौ ।

कात्यायनीवचनाश्वस्तमानसा प्रियम्वदा मनस्यचिन्तयत् "शोभनोऽयमुपायः। तान्त्रिकत्रिधयो मे न रोचन्ते । एतन्मिषेण भगवद्रामाराधना भविष्यति। जीवनस्य सर्वोत्तमफलमिदम् । एतस्मिन्पुण्यमपि फलमपि ।" ततोऽसौ निशि एकान्तभाषणपरा कात्यायनीप्रोक्तं भर्तारं निवेदयामास । विष्णुगुप्तः प्राह—"भवत्या एवंविधपरिश्रमेण चेत्ते कुक्षितो मे वंशधरः कश्चिदवतरिष्यति, अहं ते रम्याङ्गयष्टिं हाटकालङ्करणैरलङ्करिष्यामि ।" प्रियम्वदा—(विहस्य) भूषणानां प्रथमं किं काचिन्न्यूनता वर्तते ? भवन्तः सामग्रीमायोजयन्तु । अहं परप्रभातादेव पुण्यं कार्यमिदं कर्तुमीहे ।" विष्णुगुप्तः—प्रियम्वदे, भूर्जपत्रस्य मे सदने न न्यूनता । दाडिमवृक्षो नः वाटिकायामवतिष्ठते । रक्तचन्दनस्य का कथा, अहं ते कुङ्कुमप्रबन्धं करिष्ये । त्वं मङ्गलदिवसे मानसेप्सितमारभस्व । अहं ते सहयोगपरः स्थास्यामि ।

पत्यानुमता प्रियम्वदा प्रसन्नमानसा गुरौ पुष्यर्क्षे वाटिकायां दाडिमपादपं पाद्यार्घ्यगन्धपुष्पादिभिः सम्पूज्य लेखनीकृते शाखां जग्राह । ततोऽसौ अकृतविरामा[1] सार्धत्रिमासेषु सपादलक्षरामनामलेखनविधिं पूरयामास । सरित्तिमिङ्गलाः[2] अहमहमिकया उत्प्लुत्योत्प्लुत्य तत्प्रक्षिप्तगुटिकाः गृह्णानाः प्रियम्वदायाः कुतूहलं जनयन्त स्तस्या आशामपि समेधयामासुः ।

भास्करे कर्कराशिपरिगते विष्णुगुप्तस्य सुखदाश्चर्याय प्रियम्वदा सत्यमेव हस्तर्क्षे गर्भं दधार । विष्णुगुप्त आनन्दकल्लोलस्नातः अनावृतरहस्यो निर्धनेभ्य उपायनानि विततार । प्रियम्वदायाः परिचर्यानिमित्तं परिचारिकाद्वयं नियुयुजे । कात्यायनीमार्गदर्शने सा गर्भानुकूलखाद्यान्याददाना सोपानमार्गेषु शनैः शनैः प्रचचाल । भगवद्रामानुग्रहं मन्यमाना प्रातः कृताभिषेका "रामायनमः" इति पञ्चाक्षरमन्त्रजपपरायणाऽतिष्ठत् ।

सीमन्तोत्सवे महानुत्सव आयोज्यत । प्रदेशियसकलजनाः भोजनायामन्त्रिताः । प्रियम्वदाऽष्टोत्तरशतमाणवकान् भोजयित्वा तेभ्यः सदक्षिणवसना-

---

1. अकृतविरामा—विरामं विना । सातत्येनेत्यर्थः ।
2. तिमिङ्गलाः – मत्स्याः ।

गर्भधारण कर जाओगी ।' इस उपाय को कह कर मेरा उपकार कर के भोजन स्वीकार न कर केवल जल पीकर चला गया । रात को पति से सलाह करके मैंने दूसरे दिन से ही उस उपाय को प्रारम्भ कर दिया । एक ही वर्ष में दो श्रेणी पास करने की इच्छा वाली छात्रा के समान लगातार परिश्रम करते हुए मैंने तीन महीनों में ही इस कार्यविधि को पूरा कर लिया । उसी दिन मुझे गर्भ ठहर गया और नौमें महीने इस रामदास को मैंने जन्म दिया । ऐसा उद्योग करके तुम भी अयोध्या के स्वामी मर्यादापुरुषोत्तम भगवान राम की कृपा से पुत्ररत्न पाओगी ।' ऐसा कह कर मनचाहा घी ले कर अपने घर चली गई ।

कात्यायनी के वचन से आश्वस्त मन वाली प्रियंवदा मन में सोचने लगी -- 'यह उपाय बहुत अच्छा है । तांत्रिक प्रयोग मुझे अच्छे न लगते हैं । इस बहाने भगवान राम की आराधना हो जायगी । यह जीवन का सब से अच्छा फल है । इस में पुण्य भी है और फल भी ।' फिर उसने रात्रि को एकान्त-भाषण में कात्यायनी का कहा सब कुछ पति को बता दिया । विष्णुगुप्त बोला—'आप के इस प्रकार के परिश्रम से आप की कोख से कोई मेरा वंशधर आता है तो मैं तेरे सुन्दर शरीर को सोने के भूषणों से जड़ दूंगा ।' प्रियंवदा—(हंस कर) भूषणों की पहले क्या कोई कमी है ? आप सामग्री जुटा दें, मैं कल से ही इस पवित्र काम को करना चाहती हूं ।' विष्णुगुप्त—प्रियंवदे, भूर्जपत्र की मेरे घर में कमी न है । अनार के पेड़ हमारी बगीची में हैं । लालचन्दन की क्या बात मैं तुम्हारे लिये केसर का प्रबन्ध कर दूंगा । तुम अच्छा दिन देख कर रस मनचाहे काम को प्रारम्भ कर दो । मैं तुम्हें सहयोग दूंगा '

पति से आज्ञा पा कर प्रसन्न मन वाली प्रियंवदा ने बृहस्पति वार पुष्य नक्षत्र में बगीचे में अनार के पेड़ की पाद्य, अर्घ्य, गन्ध, फूलों से पूजा करके कलम के लिये उसकी शाखा काट ली । फिर उसने लगातार परिश्रम करके साढे तीन महीने में ही सवा लाख राम नाम लिखने की विधि को पूरा कर लिया । नदी की मछलियां एक दूसरी से आगे उछल उछल कर उस से फेंकी गुटिकाओं को खाती हुई प्रियंवदा के कौतुक को बढ़ाने के साथ उसकी आशा को भी बढ़ाने लगीं ।

सूर्य के कर्क राशि में आने पर विष्णुगुप्त के सुखदायक आश्चर्य के लिये प्रियंवदा ने सच ही हस्त नक्षत्र में गर्भ धारण कर लिया । आनन्द

नि प्रायच्छत्। तेऽपि पायसभोजनसन्तृप्तमानसावाप्तदक्षिणाः स्तन्यपानानन्तरं गोतर्णका[1] यथा कूर्दमानाः अधावन्। प्रतिवेशिमहिलाः प्रियम्वदायै विविधोपायनान्युपाहरन्त्यो मङ्गलमाशशंसुः। दोहदे पुंसंज्ञकवस्तूनि याचमाना प्रियम्वदा सुतोत्पत्तये भर्तारमाश्वासयन्ती शतगुणस्नेहभाजनमजायत। सा साम्प्रतं बहिर् भ्रमणवर्जा केवलं गेहोद्याने एव बभ्राम। विष्णुगुप्तो भार्याप्रसूतिदिवसानि गणयन् शिशुजन्मक्षणेषु कर्त्तव्यकर्माणि पूर्वत एव निध्यायन् स्वदैनिककर्मसु स्खलितो[2] बभूव।

एकदा प्रियम्वदा पतिं प्राह-"भर्तः मर्यादापुरुषोत्तमभगवद्रामानुकम्पया आवयोर् मनोरथः सम्पूर्यमाणो लक्ष्यते। भवन्तो दाशरथेर्विशालमन्दिरनिर्माणकार्यमारभन्ताम् आधारं खनन् गृहनिर्माणोद्योगपरोनरो भूमितले पैतृकनिधिमवाप्य यथाऽमन्दानन्दयुतो विष्णुगुप्तः प्राह-"प्रिये, त्वया मे हृदयेनैव मन्त्रितम्। पुत्ररत्नप्राप्तिसमकालमेवाहं मन्दिरनिर्माणकार्यमारप्स्ये। प्रियम्वदा-"भर्तः विचित्रमेतत्। भगवद्रामकर्मणि पणः कीदृशः"। गुरोःसमक्षमशुद्धोत्तरं प्रस्तुवन् शिष्यो यथा पश्चात्तापान्वितो विष्णुगुप्तः—"अहो! प्रिये, खेदो मे। भवती वदतु। कदा श्रेयष्करोऽयमारम्भः[3] प्रारम्येत"। प्रियम्वदा "अहं मे प्रसूतिं चैत्रमासेऽनुमिनोमि। स्यात्, रामनवम्यामेव नवागन्तुकः पदं धरेत्। मासद्वयस्यायमन्तरालः[4]। शुभदिनं निरीक्ष्याधारशिलां स्थापयन्तु। नगर्याः पूर्वोत्तरे योऽस्मदीयो भूखण्डः, स एव श्रेष्ठतमः। तं परितः घनो जनावासः। लोका दर्शनसुविधामाप्स्यन्ति। दर्शनार्थिनामावाससुविधायै सर्वसुलभाशौचालयसम्पन्नाः शतं कक्षाः स्युः। मन्दिरसमक्षं पुष्पवाटिकायै विस्तृतभूखण्डः सुरक्षितः स्यात्। मन्दिरस्तूपीं[5] रौप्यनिर्मितां[6] कामयेऽहम्। शिशुनामकरणसंस्कारसमकालमेव यथा देवालये मूर्तिप्रतिष्ठापनं स्यात्तथा भवन्तः प्रयत्नरता भवन्तु"। स्नेहासिक्तो विष्णुगुप्तः प्राह—'प्रिये, अहं त्वत्कृते नभोमण्डलतारा आनेतुं

---

1. गोतर्णकाः—गवां सद्योजातवत्साः।
2. स्खलितः—भ्रान्तः।
3. श्रेयस्करः— कल्याणकरः।
4. अन्तरालः—व्यवधानम्।
5. स्तूपीम्—उपरिष्टकलशम्।
6. रौप्यनिर्मितां— रजतनिर्मिताम्।

मगन विष्णुगुप्त ने बिना किसी को यह रहस्य बताए गरीब लोगों को उपहार बांट दिये। प्रियंवदा की देखभाल के लिये दो परिचारिकाएं नियुक्त कर दीं। कात्यायनी के मार्गदर्शन में वह गर्भ के अनुकूल खानपान लेती हुई पोड़ियों पर धीरे धीरे चलने लगी। भगवान राम की कृपा मानती हुई प्रातःकाल स्नान करके 'रामाय नमः' इस पंचाक्षर मन्त्र का जाप करने लगी।

सीमन्तोत्सव में बहुत बड़े उत्सव का आयोजन किया गया। क्षेत्र के सब लोगों को भोजन के लिये बुलाया गया। प्रियंवदा ने एक सौ आठ बटुओं को भोजन खिलाकर उनको दक्षिणा के साथ वस्त्र दिये वह भी खीर के भोजन से सन्तुष्ट मन वाले दक्षिणा पाकर दूध पीने के बाद बछड़ों की तरह कूदते हुए भागने लगे। पड़ोस की महिलाएं प्रियंवदा को अनेक प्रकार की भेंट देती हुई शुभकामनाएं कहने लगीं। दोहद (गर्भिणी की इच्छा) में पुरुषसंज्ञक वस्तुओं को मांगती हुई प्रियंवदा पुत्रोत्पत्ति के लिये पति को आश्वासन देती हुई सौ गुणा प्यार का पात्र बनी। अब वह बाहर का भ्रमण छोड़ कर घर के बगीचे में ही घूमने लगी। पत्नी के प्रसव के दिनों को गिनता हुआ, बालक के जन्मसमय में करने वाले कामों का पहले ही ध्यान करता हुआ विष्णुगुप्त अपने दैनिक काम में भूल करने लगा।

एक बार प्रियंवदा पति को बोली 'पतिदेव, भगवान राम की कृपा से अब हमारा मनोरथ पूरा होने को है। आप श्रीराम के मन्दिरनिर्माण का काम आरंभ करें। घर बनाने के लिये नीम्ब खोदता हुआ मनुष्य भूमितल में पैतृक खजाना को पाकर जैसे अतिप्रसन्न विष्णुगुप्त बोला - 'प्रिये, आपने मेरे दिल से ही बात की है। पुत्ररत्न की प्राप्ति के साथ ही साथ मैं मंदिर का काम लगा दूंगा। प्रियंवदा —'पतिदेव, यह तो विचित्र बात है। भगवान राम के काम में शर्त कैसी'। गुरु के सामने अशुद्ध उत्तर देने वाले शिष्य जैसे पश्चात्ताप से युक्त विष्णुगुप्त—'अहो, प्यारी मुझे खेद है। आप बोलो। इस कल्याणकारी काम को कब प्रारंभ करना है'। प्रियंवदा—'मेरे अनुमान में प्रसव चैत्रमास में होगा। हो सकता हैं, रामनवमी के दिन ही नया अतिथि पैर धरे। दो महीने का अन्तराल है। शुभ दिन देख कर आधारशिला रख दो। नगर के पूर्वोत्तर में जो हमारा भूखण्ड है वही सब से अच्छा है। उस के चारों ओर घनी आबादी है। लोगो को दर्शनों की सुविधा रहेगी। दर्शनार्थियों की निवाससुविधा के लिये सौ कमरे सर्वसुलभ शौचालय से युक्त होने चाहिये।

क्षमः। मन्दिरविनिर्मितेः का कथा। परश्वोदिवसादेव निर्माणकार्यमारप्स्यते। भवती चिन्तां जहातु " प्रियम्वदा "सीतारामयोः मूर्तिनिर्माणं गेहे एवाभिलषामि। नगरात्क्रयणं न मे रोचते"। विष्णुगुप्तः "अहमनुमोदे ते मतम्। उच्चकोटिशिल्पिनः आहूय तान् परीक्ष्य सर्वोत्तमौ द्वौ एतत्कर्मणि नियोजयिष्येते। श्व एव ढोलकेन घोषणां कारयिष्ये।

अपरेऽह्नि ढोलकवादकः वाद्यं कीलेकन द्विःत्रिराहत्य—(विष्णुगुप्तः अयोध्याधिपतिभगवद्राममूर्तिनिर्माणकाम. क्षेत्रियशिल्पिनः परीक्षानिमित्तमामन्त्रयते। चयनेप्सवः श्वः दशवादनसमये उपस्थिताः भवन्तु ३) अपरदिवसे एकपञ्चाशत् शिल्पिनः स्वनैपुण्यप्रदर्शनेप्सवः श्रेष्ठिन आवासमाजग्मुः। विष्णुगुप्तस्तेभ्यः प्रदत्तप्रस्तरखण्डः हंसमूर्तिनिर्माणमादिदेश। समस्तकर्मकराः स्वप्रतिभानुसारं लोहशलाकां लब्ध्वायसमुद्गरेण प्रस्तरोपरि प्रचालयन्तः यथाशक्यं प्रायतन्त। भास्करास्तमनात्पूर्वं केवलं द्वावेव शिल्पिनौ भीखूराममंगूरामौ स्वकार्यकौशलं प्रदर्शयितुं क्षमौ अदृश्येताम्। तन्निर्मितहंसौ तत्क्षणमेव प्रचलनपरौ यथाऽवालोक्येताम्। विष्णुगुप्तः भीखूराममंगूरामौ मूर्तिनिर्माणाय विचित्यापरानधिगतपारिश्रमिकान् गृहाण्यगमयत्।

असौ भीखूराममंगूरामौ प्राह 'भवतोरनवद्यकलाकौशलं निरीक्ष्य मुदितं मे मानसम्।" युवां सीताराममूर्ती रचयिष्यथः। अहं भवद्भ्यां शिलाघर्षणपतितरजःकणसमरजतं तुलाप्रतोलितं प्रत्यहं प्रदास्यामि"। चिरनिर्धनताप्रताडितौ भीखुराममंगूरामौ राजतपारिश्रमिकवचो निशम्य भास्करोदये कमलवत् विकसितमानसौ अजायेताम्। तौ अवदताम्– "श्रीमन्तः, आवयोरेतत्प्राक्तनजन्मनः शुभकर्मफलम्। सीताराममूर्तिकार्यभारमवाप्य सफलं नौ जीवनम्। आवां भवदादेशमनुसरिष्यावः"। विष्णुगुप्तः—"मर्यादापुरुषोत्तममूर्तिनिर्माणे मर्यादापालनमनिवार्यम्। मन्दिरनिर्माणस्थलाभ्यासविनिर्मितकुटीरे निवसन्तौ भवन्तौ समापनपर्यन्तं स्नानपरायणौ ब्रह्मचारिणौ, एकाहारिणौ, शुचिवसनधरौ, मद्यमांसविवर्जितौ स्थलेशयौ भवेताम्"। भीखूराममंगूरामौ —

"महाराज, भवदाज्ञां सत्यमनसा पालयिष्यावः"।

प्रियम्वदा -(पतिं प्रति) "सम्पन्नं शिल्पीचयनम्"?

विष्णुगुप्तः— "प्रतियोगितायां भीखूराममंगूरामहरिजनौ सर्वोत्कृष्टताम्

मन्दिर के सामने बगीची के लिये विस्तृत भूखंड सुरक्षित हो। मंदिर की स्तूपी चांदी की बनी हुई हो। बालक के नामकरण के साथ ही मंदिर में जैसे मूर्तियों की प्रतिष्ठा हो सके तदनुसार आप प्रयत्न करें। प्यार से भरा विष्णुगुप्त बोला —'प्रिये, मैं तुम्हारे लिये आकाश के तारे ला सकता हूं। मंदिरनिर्माण की तो बात ही क्या। परसों से ही निर्माण का काम आरंभ हो जायगा। आप चिन्ता मत करो।' प्रियंवदा 'सीताराम की मूर्ति का निर्माण मैं घर पर ही चाहती हूं। नगर से खरीदना मुझे अच्छा न लगता है।' विष्णुगुप्त "मैं आप से सहमत हूं। उच्चकोटि के शिल्पी बुला कर सर्वोत्तम दो को इस काम लगाया जायगा। कल ही ढोल पिटा कर घोषणा करवा दूंगा।

दूसरे दिन ढोलवादक ढोल पर दो-तीन चोटें मार कर "सेठ विष्णुगुप्त भगवान राम की मूर्ति बनवाने के लिये क्षेत्रीय शिल्पियों को परीक्षा के लिये बुलाता है। चयन चाहने वाले कल दस बजे उपस्थित हो जाएं"। दूसरे दिन 51 शिल्पी अपनी निपुणता दिखाने के लिये सेठ के घर आ गये। विष्णुगुप्त ने उनको पत्थर के टुकड़े देकर उन पर हंसों की मूर्ति बनाने का आदेश दिया। सब ने अपनी अपनी बुद्धिअनुसार लोहे की छिणी को छोटी हथोडी से पत्थर पर चलाते हुए प्रयास किया। सूर्यास्त से पहले केवल दो ही शिल्पी भीखूराम और मंगूराम अपना कौशल दिखाने में सफल हो पाए। उन से बनाये हंस उसी क्षण उड़ान भरने वाले दिखाई दे रहे थे। विष्णुगुप्त ने उन दोनों को मूर्ति-निर्माण के लिये चुन कर दूसरे कारीगिरों को मजदूरी देकर घर भेज दिया।

वह भीखूराम-मंगूराम को बोला—'आप के सुन्दर कला-कौशल को देख कर मेरा मन बहुत प्रसन्न हुआ है। आप दोनों सीता-राम की मूर्तियां बनाएंगे। मैं आप को पत्थर घिसने से गिरे धूलिकण के बराबर चांदी हर रोज तराजू में तोल कर दूंगा'। चिरकाल की निर्धनता से ग्रस्त भीखूराम-मंगूराम का मन चांदी की मजदूरी की बात सुनकर सूर्योदय पर कमल के समान खिल उठा। वह बोले —'श्रीमान जी, हमारे पूर्वजन्म के शुभ कर्मों का ही यह फल है। सीताराम मूर्ति का कार्य-भार पा कर हमारा जीवन सफल हो गया। हम आप के आदेश का पालन करेंगें। विष्णुगुप्त—'मर्यादापुरुषोत्तम के मूर्तिनिर्माण में मर्यादा का पालन आवश्यक है। मंदिरनिर्माणस्थल के पास ही बनी कुटिया में रहते हुए आप समाप्ति तक स्नान करते हुए, ब्रह्म-

अवाप्नुताम्"। प्रियम्वदा—",किं हरिजनो ?" विष्णुगुप्तः प्रिये ! बुद्धिर्नं पक्षपाताश्रिता। एषा जातिभेदवर्जं सर्वत्र प्रवेशमर्हति । उन्नतजातिजात-प्राणीवत् केचित् हरिजना अपि पूर्वकर्मवशात्-उत्कृष्टप्रतिभाशालिनोऽवलो-क्यन्ते। अनलः पूज्य एव काममसौ अवस्करजनित[1] एव स्यात्। एवं प्रतिमापि यत्रतत्रस्थिता समादरणीयतामर्हति । अथ च राष्ट्रैकतायै स्पृश्यास्पृश्यभेदः परिहरणीयः साम्प्रतम्"। प्रियम्वदा—"शोभनं भवन्मतम्। युगधर्मानुसारिण एव सुखं लभन्ते ।

अपरतः अथर्ववेदतत्त्वज्ञा इव प्रवीणस्थपतय पावनमृत्तिकाघटितेष्टकाभिर् देवालयनिर्माणकार्यमारभन्त। एकसहस्रं कर्मठकर्मकराः 'रामरामेति'मधुरं कीर्त-यन्तः एतत्पुण्यकर्मसंलग्ना बभूवुः। तत्सकलक्षेत्रमयोध्यावत् राममयमेवादृश्यत। विष्णुगुप्तः निर्माणविरतिं[2] यावत् कर्मकरान् स्वावासे एव भोजनमभोजयत्। पाचकाः विविधसात्त्विकपदार्थान् परिवेषयन्तस्तान् प्रासादयन्।

भीखूराममंगूरामयोः कलाकौशलमालोकितुं विष्णुगुप्तदम्पती तत्कुटीरं प्रत्यहमुपगम्यासीममुदः अवाप्नुताम्। प्रियम्वदा—"भर्तः, एतावपि कलियुगस्य स्रष्टारौ। विधाता जनपरोक्षं निर्मीति : एतौ लोकसमक्षं कलां प्रदर्शयतः"। विष्णुगुप्तः" - प्रिये, मया पूर्वमेवाभाणि यत्प्रतिमा जातिभेदं न गणयति। भावाभिव्यक्तिपरलेखकः लेखनीं यथा एतौ अन्तर्मनसा सुविचिन्त्य लोहशलाकां चालयतः"। असौ यथाप्रतिज्ञातं ताभ्यां प्रतिदिवसं घर्षणपतितरजःकणसमं रौप्यं प्राददात्।

अथ विकसितविविधप्रसूनसुगन्धयुतः, कोकिलकलकलध्वनिसमलङ्कृतश्चैत्र-मासः विष्णुगुप्तमनोरथं पूरयितुमिव भूतले पदं दधार । छात्रः परीक्षाफल-तिथिं यथा प्रियम्वदा प्रसवदिवसगणनापराऽतिष्ठत्। रामनवम्याः पूर्वं भीखूराम-मंगूरामौ सीतारामर्मूतिनिर्माणकार्योन्मुक्तौ विष्णुगुप्ताज्ञप्तौ पारिश्रमिकरजत-मादाय निर्धनताभिशापविमुक्तिप्रमुदितमानसौ[3] गृहं प्रतस्थतुः तन्निर्मितमूर्ति-द्वयं निरीक्ष्य दर्शकाः 'एतत्कृत्रिमं वास्तविकं' वेति भेदं कर्तुं नापारयन्। उतः

---

1. अवकीर्यते इत्यवस्करः – वीथीप्रक्षिप्तकर्गलतृणादीनि ।
   'गृहद्वाराशुचिस्थानरथ्यावस्करशोधनम्' (नारदः)
2. विरतिं—समाप्तिम्।
3. निर्धनतायाः अभिशापस्य विमुक्तेः प्रमुदितं मानसं ययोस्तौ ।

चारी, एकाहारी, पवित्रवस्त्र पहने हुए, मद्यमांस का सेवन न करते हुए, भूतल पर सोएंगे। भीखूराम, मंगूराम—'महाराज, हम आप की आज्ञा का सच्चे मन से पालन करेंगे।

प्रियंवदा—पतिदेव, 'क्या शिल्पियों का चुनाव हो गया'? विष्णुगुप्त 'प्रतियोगिता में भीखूराम मंगूराम हरिजन सबसे ऊपर रहे'। प्रियंवदा—'क्या हरिजन'? विष्णुगुप्त—'प्रिये, बुद्धि किसी का पक्षपात न करती है। यह जात-पात का भेद छोड़कर सब जगह प्रवेश कर सकती है। उन्नतजाति में जन्में प्राणी के समान कुछ हरिजन भी पूर्वकर्मवश ऊंची प्रतिभावाले देखे जाते हैं। आग भले ही कूड़ा-करकट के ढेर में लगी हो, वह पूज्य ही होती है। इसी प्रकार प्रतिभा कहीं भी खड़ी हो वह मान्य ही होती है। इस लिये प्रतिभा का सब जगह आदर ही किया जाना चाहिये। और राष्ट्र की एकता के लिये स्पृश्य अस्पृश्य का भेद मिटाना ही पड़ेगा'। प्रियंवदा 'आप का मत बहुत अच्छा है। युगधर्म के अनुसार चलने वाले लोग ही सुख पाते हैं।

प्रियंवदा के गर्भ के बच्चे के अङ्गनिर्माण के साथ भीखुराम—मंगुराम के हाथों से सीताराम की मूर्ति का निर्माण भी प्रारम्भ हो गया। दूसरी ओर अथर्ववेद के सार को समझने वाले चतुर शिल्पी पवित्र मिट्टी की ईंटों से मन्दिर के निर्माणकार्य में लग पड़े। एक हजार परिश्रमी मजदूर 'राम-राम' ऐसा मधुर कीर्तन करते हुए इस पुण्यकाम में लग गये। वह सारा क्षेत्र अयोध्या के समान राममय ही दिखाई देने लगा। निर्माण के अन्त तक विष्णुगुप्त ने मजदूरों को घर पर ही भोजन खिलाया। पाचक अनेक प्रकार के सात्विक पदार्थों को परोसते हुए उन्हें प्रसन्न करने लगे। भीखूराम-मंगूराम के कला-कौशल को देखने के लिए सेठ-सेठानी उनकी कुटिया में हर-रोज जाकर बड़ी प्रसन्नता पाते थे। प्रियंवदा—'पतिदेव, यह भी कलियुग के स्रष्टा हैं। विधाता परोक्ष में बनाता है। यह लोगों के सामने कला को दिखाते हैं'। विष्णुगुप्त—'प्रिये, मैंने पहले ही आप को कह दिया है कि प्रतिभा जातिभेद को न गिनती है। भावों को प्रकट करने वाले लेखक की लेखनी के समान यह दोनों किस प्रकार अन्तर्मन से सोचकर लोहे की छिणी को चला रहे हैं। विष्णुगुप्त अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार हर रोज उन दोनों को घिसने से गिरी रजः कण के बराबर चान्दी दे देता था।

इसके बाद अनेक प्रकार के खिले फूलों की सुगन्ध से युक्त, कोयल की

शतकक्षसमन्वितं परितः पुष्पवाटिकायुतं देवालयभवनमपि श्रीसीतारामचरणारविन्दस्पर्शमाप्तुं समुत्सुकम् अदृश्यत ।

रामनवमीप्रभाते प्रियम्वदा प्रसवपीड़ां निवेद्य आवासजनानाम् उत्कण्ठां समेधयमाना बुधबृहस्पतिशुक्रेषु उच्चराशिं समाश्रयत्सु विष्णुगुप्तकुलालङ्कारभूतं सुन्दरबालकं प्रसूय सम्मानयुतस्नेहं लेभे । अधिगतशुभसमाचाराः क्षेत्रियजनाः विष्णुगुप्तं वर्धापयितुं पङ्क्तिश्वधावन् । असावपि आगन्तुकेभ्यः मिष्ठान्नान्वितविविधोपायनानि प्रददानः स्वामोदं व्यञ्जयामास । असौ समस्ताधमर्णान् कुसीदोन्मुक्तान्[1] विधाय शिशवे तेषामाशिषो लेभे । अतिनिर्धनेभ्यः भूखण्डान् प्रदाय तान् निर्धनरेखात उपरि चकर्ष । तत्सदने ललनाः गीतगानपराः भगवद्रामस्य सढोलकं मधुरकीर्तनम् अकुर्वन् ।

एकादशदिवसे नामकरणसंस्कारोत्सवे भारतविख्यातज्योतिर्विद आहूयन्त । ते बालकाभिधानं "रामशरणः" इति निर्धारयन्तः उच्चग्रहाणां शुभस्थितिं विलोक्य शिशो राजयोगं निवेदयन्तः विष्णुगुप्तप्रसादकरा बभूवुः । उत्सवागताः सहस्रं जनाः विष्णुगुप्तेन सस्नेहं सभाजितास्तत्प्रशंसात्मकवचनानि भाषमाणाः गृहाणि प्रत्यावर्तन्त प्रियम्वदा शिशुना, चन्द्रेण चन्द्रिका यथा शुशुभे ।

नामकरणसंस्कारात्तृतीयदिवसे देवालयप्रतिष्ठायुतं मूर्तिप्रतिष्ठापनमुहूर्तं सन्निहितं[2] समीक्ष्य विष्णुगुप्तबान्धवास्तत्सम्भारायोजने तत्परा अदृश्यन्त । भारतसमस्तसरित्सागरेभ्यः सलिलं समानीयत । हिमालयविन्ध्याञ्चलप्रभृतिभूधरेभ्यः मृत्तिका समाह्रियत । होमकृते चन्दनदेवदारुदाडिमाम्रपादपकाष्ठानि प्राप्यन्त । नगर्याः स्थाने-स्थाने आम्रपल्लवालङ्कृततोरणानि निरमीयन्त । मन्त्रोच्चारणध्वनिः पवनेरितो देवलोकमवाप्नोत् । होमगन्धाकृष्टाः भार्यासहाया गन्धर्वा नभस्तले गीतानि गायन्तः मर्त्यदेवलोकयोः समन्वयमिवाकुर्वन् । मूर्तिद्वयं कमलकुसुमालङ्कृतसिंहासनारोहणक्षणान् प्रत्यैक्षत । उत्सवदर्शनागता बहुसहस्रं जना भगवद्रामं सिंहासनस्थमालोकितुं विवर्जिताक्षिपातं पादाङ्गुष्ठभरेण व्यतिष्ठन्त ।

---

1. कुसीदं वृद्धिजीविका । (व्याजसंज्ञकम्)
   'उद्धारोऽर्थप्रयोगस्तु कुसीदं वृद्धिजीविका' (इत्यमरः)
2. सन्निहितं—समीपस्थम् ।

मीठी ध्वनि से सुशोभित चैत्रमास मानों विष्णुगुप्त के मनोरथ को पूरा करने के लिये ही धरती पर उतर आया छात्र परीक्षाफल की तिथि को जैसे प्रियंवदा प्रसूति के दिनों को गिन रही थी। रामनवमी से पहले भीखूराम-मंगूराम सीताराम की मूर्ति के निर्माण से उन्मुक्त होकर विष्णुगुप्त की आज्ञा पाकर मजदूरी की चांदी लेकर गरीबी के अभिशाप से छूटने के कारण प्रसन्न मन वाले घर को चले गये। उनसे बनाई दोनों मूर्तियों को देखकर दर्शक लोग 'यह बनावटी है या असली है' ऐसा भेद न कर सकते थे। उधर सौ कमरों वाला चारों ओर से पुष्पवाटिका से घिरा हुआ मंदिर का भवन भी श्री सीताराम के चरणकमलों का स्पर्श पाने के लिये उत्सुक था। रामनवमी के प्रभात में प्रसवपीड़ा को बताकर घर के लोगों की उत्कण्ठा को बढ़ाती हुई प्रियंवदा ने बुध, वृहस्पति, शुक्र ग्रहों के उच्चराशि में आने पर विष्णुगुप्त के कुल के अलंकरण सुन्दर बालक को जन्म देकर सम्मान सहित प्यार पाया। इस शुभ समाचार को पाकर क्षेत्र के लोग विष्णुगुप्त को बधाई देने के लिये कतारों में दौड़ पड़े। उसने भी आगन्तुकों को मिठाई सहित अनेक प्रकार की भेंट देते हुए अपनी प्रसन्नता को प्रकट किया। सभी कर्जदारों को ब्याज से छूट देकर बच्चे के लिये उनके आशीर्वाद प्राप्त किये तथा बहुत गरीबों को भूखण्ड देकर उन्हें निर्धनता की रेखा से ऊपर उठाया। उसके घर में महिलाएं गीत गाती हुई ढोलक के साथ भगवान राम का कीर्तन करने लगीं।

ग्यारहवें दिन नामकरण संस्कार के उत्सव में भारत के प्रसिद्ध ज्योतिषी बुलाए गये। उन्होंने बालक का नाम 'रामशरण' रखा और उच्च ग्रहों की शुभ स्थिति बताकर बच्चे को राजयोग बताते हुए विष्णुगुप्त को प्रसन्न किया। उत्सव में आये हजारों लोग विष्णुगुप्त से प्यार के साथ सत्कृत किये हुए, उसकी प्रशंसा करते हुए घरों को लौट गये। प्रियंवदा बच्चे से, चान्द से चान्दनी जैसे शोभा देने लगी।

नामकरण संस्कार से तीसरे दिन मन्दिर की प्रतिष्ठा के साथ ही मूर्ति-प्रतिष्ठा के मुहूर्त को पास आया जानकर विष्णुगुप्त के भाई-बन्धु सामग्री जुटाने में लग गये भारत की सभी नदियों और समुद्रों से पानी लाया गया। हिमालय, विंध्याचल आदि पहाड़ों से मिट्टी लाई गई। हवन के लिये चन्दन, देवदारु, दाडिम, आम के पेड़ों की लकड़ी प्राप्त की गई। नगर में स्थान स्थान पर आम के पत्तों से सजे तोरण बनाये गये। मंत्रोच्चारण की ध्वनि वायु के

अत्रान्तरेऽकस्मात्तत्रैकः गगनभेदी कोलाहलः सागरतरङ्गवदुदतिष्ठत् । अहो ! चर्मकारात्मजः भीखुरामः । एषोऽत्र कथमागतः । द्रावयन्तु हरिजनान् । प्राणप्रतिष्ठापनमनु नैते देवदर्शनाधिकारिणः । केनैतेऽत्र प्रवेशिताः । धावत, धावत । मारयत, मारयत । भीखूरामो भयेन प्रकम्पमानः स्वावासदिशं दधाव । अपरे हरिजना अपि तं धावन्तमालोक्य पलायनपरा अदृश्यन्त । तत्रैको दुर्मतिः, रुढ़िवादी, भारतीयसंस्कृतिपरोक्षरिपुरिव धनदासः भीखूराममनुधावन् तस्य मस्तके यष्टिप्रहारमकरोत् . हा ! भीखूराममस्तकदक्षिणकोणरुधिरं क्षणेषु तस्य पादावस्पृशत् । असौ रुधिरप्रतिरोधाय शाटिकाखण्डं विदार्य तेनावृतव्रणः हताशः सदनं प्रययौ। वस्त्रखण्डेन वेष्टितमस्तकं तं निरीक्ष्य ज्ञानवती "एतत्किम् ? किं क्वचित् स्खलितो भवान्" ? भीखूरामं वेपमानं रुद्धस्वरं निरीक्ष्य सा संजाताभासा रुदत्यवादीत् –"मया भवन्तः पूर्वमेव तत्रगमनात् वारिताः परं भर्तार. भार्यावचनेषु न विश्वसन्ति" । ततः सा व्रणवसनखण्डमपवार्य निरीक्षितव्रणा स्तब्धा घृतमुष्णीकृत्य हरिद्रामिश्रितं व्रणे चकार। तत्रागता मंगूरामभार्या मेघवती प्राह "मयैतच्छङ्कयैव मे भर्ता तत्र गन्तुं नाज्ञप्तः । अन्यथासावपि स्फुटितमुण्डः समायास्यत् । ज्ञानवती— 'सखि, मयाऽपि पुनः पुनः प्रार्थितं परमयं न मेने न जाने साम्प्रतं कति दिनानि व्रणारोपणे अपेक्षिष्यन्ते' । मेघवती (सहानुभूतिज्ञापनाय) 'हुं व्रणस्तु न गाधः । हरिद्रामिश्रितोष्णघृतेन द्रुतं भरिष्यति । भवती न चिन्तापरा भवतु' ।

भीखुराममालोकितुं तत्रायाता हरिजनाः परस्परं प्राहुः —'एते जनाः स्वयमेव स्वपादे कुठाराघातं कुर्वन्तः न विरमन्ति । लक्षं हरिजना एतद्व्यवहारविक्षुब्धा एतान् विहाय परधर्माश्रिताः एतत्प्राणवैरिणः लक्ष्यन्ते तथापि न बुद्धेरुदयः । किं भगवद्रामः नः रक्षको न भवति ? किं रामेण शबरीकुटीरे वदरीफलानि नास्वादितानि ? असौ सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापकः दीनबन्धुश्च अणौ अणौ विराजते । किं भीखुरामः स्वपाणिसाधितमूर्ति स्वनयनाभ्यां निरीक्षितुं नार्हः ? विचित्रमेतत् । वयं रामभक्ता भवामः । रामप्रियाः स्थास्यामः । काममेतेऽपमानयन्तु अस्मान् । एवं चेद् भीखूराममंगूरामौ मूर्तिनिर्माणाय कथं न्ययोजिषाताम् । वयं चेत्सत्यं रामनिष्ठाः, भक्तवशम्वदोऽसौ चिरादचिराद्वा नोऽन्तरात्मानं परिचेष्यति । तेष्वेको हरिजन-

द्वारा देवलोक में पहुँच गई। होम की सुगन्ध से आकर्षित गन्धर्व पत्नियों के साथ आकाशतल में गीत गाते हुए मर्त्यलोक और देवलोक में समन्वय जैसा करने लगे।

दोनों मूर्तियां कमल फूल से सजे सिंहासन पर चढ़ने के क्षणो की प्रतीक्षा करने लगीं। उत्सव देखने के लिये हजरों लोग भगवान राम को सिंहासन पर बैठा देखने के लिये बिना पलक गिराये पैरों के अंगूठों के भार बैठे हुए थे।

इतने में वहां अकस्मात् आकाश को छूने वाला कोलाहल समुद्र की लहरों के समान उठ खड़ा हुआ। अरे ! यह चमार का पुत्र भीखूराम ! यह कहां से आ गया। भगाओ भगाओ हरिजनों को। प्राणप्रतिष्ठा के बाद यह देवदर्शन न कर सकते हैं। इनको यहां किसने आने दिया। दौड़ो, दौड़ो। मारो, मारो। भीखूराम डर से कांपता हुआ अपने घर की ओर भागा। उसे भागता हुआ देखकर दूसरे हरिजन भी उसके पीछे दौड़ा पड़े। वहां एक दुष्टबुद्धिवाले, रूढ़िवादी जो मानों परोक्ष रूप से भारतीय संस्कृति का शत्रु ही हो ऐसे धनदास ने भीखूराम के पीछे दौड़ते हुए उसके माथे पर लाठी मार दी।। हाय ! भीखूराम के माथे के दाएं कोने से निकला खून पल भर में ही उसके पैरों तक पहुंच गया। उसने खून को रोकने के लिये धोती का टुकड़ा फाड़कर व्रण को ढक लिया और निराश होकर घर चला गया। वस्त्र के टुकड़े लपेटे मस्तक वाले उसको देखकर ज्ञानवती 'यह क्या, आप कहीं गिर गये' ? भीखूराम को कांपता हुआ, रुके गले वाला देखकर उसे पता चल गया और वह रोती हुई बोली 'मैंने आपको पहले ही वहां जाने से रोका था। परन्तु पति, पत्नियों की बात पर विश्वास न करते हैं'। फिर उसने वस्त्र को हटाकर व्रण को देखा और घी गर्म करके उसमें हल्दी मिला कर जखम पर लगा दी। वहां आई मंगूराम की पत्नी मेघवती बोली—मैंने इस शंका से ही अपने पति को वहां न भेजा था नहीं तो वह भी सिर फुटाकर आता। ज्ञानवती—'बहन, मैंने भी इनको बहुत समझाया था पर माने नहीं। अब पता नहीं जखम भरने में कितने दिन लगेंगे'। मेघवती (हमदर्दी जताने के लिये) 'व्रण बहुत गहरा न है। हल्दी मिले गर्म घी से जल्दी भर जायेगा। आप चिन्ता मत करो'।

परिभाषाम् एवं प्राह—

हरिणा जन्म दत्तं मे पाल्येऽहं हरिणा सदा ।
हरिष्यति हरिश्चैव हरिजनो भवाम्यहम् ॥
हरिर्वसति मे चित्ते ध्यायाम्यहं हरिं सदा ।
हरिं विना न जीवामि हरिजनो भवाम्यहम् ॥
हरीच्छयागतोविश्वे जीवामि च हरीच्छया ।
हरीच्छया मरिष्यामि हरिजनो भवाम्यहम् ॥
"परिभाषामिमामाकर्ण्य सर्वे तालिकामवादयन्"

मन्दिरे विविधवाद्यवादनपूर्वकं शङ्खण्टास्वनैश्च सीतारामभूर्ती सिंहासनयोर्, व्यराजेताम् । वेदान्ताचार्योनित्यानन्दपूजकः प्रतिष्ठाकाले नवधा-भक्तिव्याख्यां प्रकुर्वाणः प्रथमदिवसादेव जनमानसे पदं दधार ।

अपरेऽह्नि पूजाविषये मन्दिरमायातो नित्यानन्दो भगवद्राममस्तकदक्षिणैक-भागे रक्तबिन्दुं समीक्ष्य (मनसि) 'किमेतत्कुङ्कुमचिह्नम्"? (पुष्पेण पुनः पुनर् मार्जयति । परं कुसुमप्रोच्छितेऽपि तस्मिन् रुधिरबिन्दुरुदियाय । असौ वेपमानः शिथिलशाटिकः स्वावासमुपगम्य भार्यां सुभद्रां प्राह—"सुभद्रे, भग-वद्राममस्तकाद्रुधिरं वहति । अहं बिभेमि । भवती मामनुव्रजतु" । सुभद्रा—"एतत्कथम् । भवान् भ्रमापन्नः वर्तते । अहं पश्यामि" । ततोऽसौ झटिति धौतवसनानि परिधाय शुचिकृतकरा पतिमनुययौ । नित्यानन्दः मूर्त्यभ्यर्ण मुपगम्य[1] द्वारस्थां सुभद्रां व्रणं प्रदर्श्य कुसुमेन रुधिरबिन्दुं परिमार्जयति । परं क्षतजकणः पुनरपि तथैवोदेति । सुभद्रा - (प्रकम्पमानस्वरे) 'एतत्तु सत्यं व्रणात् रुधिरं वहति । विष्णुगुप्तो द्रुतं विज्ञापयितव्यः" ।

---

1. अभ्यर्णं समीपम् ।

भीखूराम को देखने के लिये वहाँ आए हरिजन आपस में बोलने लगे —'यह लोग अपने आप ही अपने पैर पर कुल्हाड़ी चलाने से पीछे न हटते हैं। लाखों हरिजन इन के व्यवहार से दुखी हो कर इन्हें छोड़ कर दूसरे धर्म में जाकर इन के प्राणों के वैरी बने वैठे हैं। परन्तु अब भी इन को अकल नहीं आई। क्या भगवान राम हमारे रक्षक न हैं? क्या श्रीराम ने भीलनी की कुटिया में बेर न खाये थे? वह सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक, दीनबन्धु अणु-अणु में रहता है। 'क्या भीखूराम अपने हाथों से घड़ी मूर्ति को अपनी आंखों से न देख सकता था? यह तो बड़ी विचित्र बात है। हम रामभक्त हैं और राम के प्यारे बन कर ही रहेंगे। यह भले ही हमें तंग करते रहें।' 'यदि ऐसी बात थी तो भीखूराम – मंगूराम को मूर्तिनिर्माण के काम में लगाया ही क्यों था। यदि राम में हमारी सच्ची निष्ठा है तो वह देर-सवेर में हमारी अन्तरात्मा को जरूर पहचानेंगे'। उन में एक ने हरिजन की परिभाषा इस प्रकार की—

मुझे हरि ने जन्म दिया है और हरि ही मुझे पालता है।
हरि ही मुझे उठा कर ले जायगा, मैं हरिजन हूं ॥ १ ॥
हरि मेरे चित्त में निवास करता है। मैं हरि का ही सदा ध्यान करता हूं।
मैं हरि के बिना जीवित न रह सकता हूं इस लिये मैं हरिजन हूं ॥ २ ॥
मैं हरि की इच्छा से संसार में आया हूं।
हरि की इच्छा से ही जीता हूं।
हरि की इच्छा से ही मैं मरूंगा इस लिये मैं हरिजन हूं ॥ ३ ।

इस परिभाषा को सुन कर सब ने तालियां बजाईं। मंदिर में अनेक बाजों के और शंख और घंटियों की आवाज के साथ श्रीसीताराम की मूर्तियां सिहांसनों पर विराजमान हो गईं। वेदान्ताचार्य नित्यानन्द पुजारी ने प्रतिष्ठा-काल में नवधा भक्ति की व्याख्या करते हुए पहले दिन से ही लोगों के मन में पैर जमा लिया।

दूसरे दिन पूजा के लिये मंदिर में आया हुआ नित्यानन्द भगवान राम के माथे के दाईं ओर लालबिन्दु को देख कर 'मन में' 'क्या यह तिलक का चिह्न है? फूल से बार बार हटाता हैं परन्तु फूल से पोंछने पर भी उस में खून का बिन्दु निकल आता था। वह कांपता हुआ अपने घर जा कर पत्नी सुभद्रा को बोला – 'सुभद्रे, भगवान राम के मस्तक से खून बह रहा है। मुझे

तत उभौ विष्णुगुप्तसदनमुपगम्याज्ञाप्तप्रवेशौ अन्तः प्रविविशतुः। विष्णुगुप्तः (नित्यानन्दं प्रति)। 'निवृत्तो भवान् प्रातःकालिकरामार्चनाविधेः? सम्भ्रान्तः कथम्"? नित्यानन्दः—(प्रकम्पितस्वरे) धनिकवर, भगवद्राममस्तकाद्रुधिरं वहति। अहं भवन्तं विज्ञापयितुं समायामि"। विस्मयकरं वचनमिदं निशम्य विष्णुगुप्तः प्रातःकालिकचर्याविनिवृत्तोऽपि भयाकुलः उदरे अव्यवस्थाम् अनुभवन् अशौचालयं दधाव। असौ मनस्यचिन्तयत्—"मूर्खैर् मूर्तिनिर्मात्रा भीखूरामेण सहापव्यवहृतम्[1]। कच्चित्तस्यैवेयं परिणतिः। अत्रान्तरे सुभद्रावाप्तसमाचारा प्रियम्वदा तत्रोपस्थिता भर्तारं प्राह—"भवन्तो द्रुतमुपचारमाचरन्तु। भगवद्रामकृपावाप्तस्य मे सूनोश्चेत्किञ्चिदनिष्टं मामसुधरां न निरीक्षिष्यन्ते भवन्तः"। विष्णुगुप्तः पुनः स्नात्वा धृतशुचिवसनः प्रियम्वदानुगम्यमानो मन्दिरं प्रति प्रचचाल। क्षणेषु समाचारोऽयमनलवत् सकलक्षेत्रे प्रासरत्। सहस्रं जनाः मन्दिरं परित एकत्रिता बभूवुः। सर्वेषां वाचि 'मस्तक रुधिरं, मस्तकरुधिरमित्येकमेव वाक्यं प्ररूढमश्रूयत। हरिजनावासनिवासिनः अन्योन्यमाहुः—"अवलोकिता भगवद्रामस्य दीनबन्धुता'? भीखूराममस्तककृतयष्टिप्रहारो भगवद्रामभाले न्यपतत्। एते साम्प्रतं स्वाचरितफलं भुञ्जन्तु। दाशरथी रामः सर्वेषां संरक्षको नैकवर्गस्य कस्यचित्"।

मन्दिरमुपगताः समस्तजनाः गलकृतवसनाः प्रार्थयामासुः—हे भगवन्, अयोध्याधिपते, क्षमस्वास्मान्। अपनय मस्तकरुधिर प्रभो, अपनय"। विष्णुगुप्तः सकलजनान्तराले किमपि भाषितुं न शशाक। धनदासः आरक्षिगृहीतश्चौरो यथा पश्चात्तापपरः स्वदुष्कृत्यं भृशं निनिन्द।

प्रियम्वदा—"हे रघुकुलनन्दन, कौशल्यानन्दवर्धन, अहं भवच्चरणारविन्दपतिता क्षमां याचे। प्रभो, कृपां कुरु। मस्तकरुधिरापनयनोपायं ब्रूहि। भगवन्, उपायं ब्रूहि।"

अत्रान्तरे जनमानसाभीलवारणाय श्रीभगवद्रामप्रेरिता आकाशवाणी आकर्ण्यत—

"यदा सकलहरिजनोपस्थितौ विष्णुगुप्तः पुनारामार्चनां करिष्यति तदैव भगवद्राममस्तकरुधिरं लुप्ततां प्रयास्यति"।

इमां परोक्षवाचं संश्रुत्य सकलजना अपगतमानसव्यथाभारा रघुकुला-

1. अपव्यहृतम्—अभद्रव्यवहारः कृतः।

डर लग रहा है। आप मेरे साथ चलो'। सुभद्रा—'यह कैसे ? आप को भ्रम हो रहा होगा। मैं देखती हूं। फिर वह झट धोए कपड़े पहन कर हाथों को साफ कर पति के पीछे चली गई। नित्यानन्द मूर्ति के पास जा कर द्वार पर खड़ी सुभद्रा को व्रण दिखा कर फूल से खून के बिन्दु को साफ करता है। परन्तु रुधिर की बूंद फिर वैसे ही निकल आती है। सुभद्रा—(कांपते स्वर में) यह तो सचमुच व्रण से खून बह रहा है। विष्णुगुप्त को जल्दी पता करना चाहिये '।

फिर दोनों विष्णुगुप्त के घर में पहुंच कर आज्ञा पा कर अन्दर चले गये। विष्णुगुप्त—(नित्यानन्द के प्रति) 'क्या प्रातःकाल की रामपूजा हो चुकी ? घबराये क्यों हो' ? नित्यानन्द – 'कांपते स्वर में' 'सेठ जी, भगवान राम के माथे से खून बह रहा है। मैं आप को बताने आया हूं'। अचम्भे से भरे इस वचन को सुनकर प्रातःकाल की चर्या से निवृत्त होने पर भी भय के मारे विष्णुगुप्त के पेट में मरोड़ पड़ गया और वह अशौचालय को दौड़ गया। वह मन में सोचने लगा – 'मूर्खों ने मूर्ति बनाने वाले भीखूराम से गन्दा बर्ताव किया। हो सकता है उसी का यह परिणाम हो'। इतने में सुभद्रा से समाचार पा कर प्रियंवदा वहां आकर पति को बोली —'आप जल्दी कोई उपाय करें। भगवान राम की कृपा से प्राप्त मेरे पुत्र को कुछ हो गया तो मैं जिन्दा न रहूंगी'। विष्णुगुप्त फिर स्नान करके पवित्र कपड़े पहन कर प्रियंवदा के साथ मंदिर को चल पड़ा। कुछ ही क्षणों में यह समाचार आग के समान सारे क्षेत्र में फैल गया। हजारों लोग मंदिर के चारों ओर इकठ्ठे हो गये। सब की जीभ पर 'माथे का खून, माथे का खून' एक ही वाक्य चढ़ा हुआ था। हरिजन की बस्ती में रहने वाले लोग आपस में बोलने लगे 'देखा, भगवान राम कैसे दीनबन्धु हैं। भीखूराम के माथे पर किया लाठी का प्रहार भगवान राम के मस्तक पर पड़ा। अब यह अपने किये का फल भोगें। दशरथ के पुत्र राम सब के संरक्षक हैं किसी एक वर्ग के नहीं।'

मंदिर में आए सब लोग गले में कपड़ा डाल कर प्रार्थना करने लगे— हे भगवान अयोध्या के स्वामी, हमें क्षमा करो। माथे के खून को दूर करो, प्रभु दूर करो। सब लोगों के बीच में खड़ा विष्णुगुप्त कुछ भी कहने में असमर्थ था। धनदास पोलिस से पकड़े चोर के समान पश्चात्ताप में पड़ा अपने गन्दे काम की निन्दा कर रहा था। प्रियंवदा—'हे रघुकुलनन्दन, कौशल्यानन्द-

लङ्कारदाशरथेः कीर्तनं कर्तुमारेभिरे । 'जयरामेति' ध्वनिना नभः गुञ्जितं समास्त । विष्णुगुप्तः झटिति भीखूरामसदनात्तस्तं समस्तहरिजनैः समं मन्दिरमायातुं प्रार्थयामास । असावपि मूर्तिनिर्माणपारिश्रमिकक्रीतशुद्धवसनानि परिधाय तदावाससकलहरिजनानुगम्यमानो मन्दिरं प्राप्नोत् ।

ततो नित्यानन्दः सहरिजनसकललोकोपस्थितो सस्वरवेदमन्त्रैः विष्णुगुप्तेन पुनः कारितरामार्चनः चरणोदकं सर्वेभ्यो व्यतरत् । लोका भगवद्राममस्तकरुधिरविलोपनसमाचारमाप्तुं समुत्सुकाः उत्थायोत्थाय पूजकमवैक्षन्त । विष्णुगुप्ताभ्यर्थितो नित्यानन्द उदघोषयत् –"भगवतो रामस्य मस्तकं निर्व्रणमपगतरुधिरं च साम्प्रतम् । उच्चैर् जयं भाषन्ताम् ।"

"अयोध्यापतिर्भगवान् रामः जयतुतमाम्" सर्वे तदुक्तमुच्चै र्भाषमाणाः शुचिवसनालङ्कृतभीखूरामं सतृष्णं सादरं च निरीक्षमाणाः गृहाणि न्यवर्तन्त । हरिजनावाधप्रवेशं तन्मन्दिरं हिन्दुजातेरस्पृश्यताकलङ्कं सद्बुद्धिसलिलेन प्रक्षालयत् सकलसङ्कटहरं जनमङ्गलकरञ्चाज्ञायत ।

विष्णुगुप्तो युगधर्ममनुपालयन् पञ्चाशत्वर्गक्रोशस्थितहरिजनग्रामेषु एकविंशतिश्रीराममन्दिराणि निर्माय कौशल्यानन्दने तदास्थां दृढां विधाय राष्ट्रस्यैकतामायुगं स्थिरां प्रकुर्वन् सकलभारते प्रशंसां लेभे ।

* * *

वर्धन, मैं आप के चरणकमलों में गिरी क्षमा मांगती हूं। हे प्रभु, कृपा करो। माथे का खून दूर करने का उपाय बताओ भगवन्, उपाय बताओ।

इतने में लोगों के मन की पीड़ा दूर करने के लिये भगवान राम की प्रेरणा से आकाशवाणी हुई "जब सब हरिजनों की हाजरी में विष्णुगुप्त फिर राम की पूजा करेगा तो ही भगवान राम के माथे का खून मिटेगा"।

इस परोक्ष वाणी को सुनकर सब लोग मानसिक पीड़ा दूर होने से रघुकुलभूषण राम का कीर्तन करने लगे। 'जय राम' की ध्वनि से आकाश गूंजने लगा। विष्णुगुप्त झट भीखूराम के घर गया और सब हरिजनों के साथ मंदिर आने की प्रार्थना की। वह भी मूर्तिनिर्माण की मजदूरी से खरीदे शुद्ध कपड़ों को पहन पर उस की वस्ती के सारे हरिजनों के साथ मंदिर पहुच गया।

फिर नित्यानन्द ने हरिजनसहित सब लोगो की हाजरी में सस्वर वेदमंत्र पढ़ कर विष्णुगुप्त से राम की पूजा करवाई और चरणामृत सब को बांट दिया। लोग भगवान राम के माथे का खून मिट जाने का समाचार पाने के लिये उठ उठ कर पुजारी को देख रहे थे। विष्णुगुप्त के कहने पर नित्यानन्द ने घोषणा की—"भगवान राम के माथे का जखम मिट गया है और खून भी लुप्त हो गया है। सब ऊंचे से जयकार बोलो "अयोध्यापति भगवान राम की जय"। सब लोगों ने ऊंचे से जयकार किया और पवित्र वस्त्र पहने भीखूराम को तृष्णा और आदर के साथ देखते हुए अपने घरों को लौट गये। हरिजनों के बे रोक टोक प्रवेशवाला वह मंदिर हिन्दुजाति के अस्पृश्यता कलंक को सद् बुद्धि के पानी से धोता हुआ, सब संकटों को दूर करने वाला और लोगों की भलाई करने वाला जाना गया।

विष्णुगुप्त ने युगधर्म का पालन करते हुए पचास वर्गक्रोश में बसे हरिजन ग्रामों में इक्कीस राममंदिर बनाकर श्रीराम में हरिजनों की निष्ठा को मजबूत बना कर राष्ट्र की एकता को युगों तक स्थिर करते हुए सारे भारत में प्रशंसा पाई।

***

सुवर्णपादपः

काश्मीरेषु समस्तिपुरग्रामे गोविन्दाभिधानः कृषकः न्यवसत् । तत्परिश्रमस्वेदबिन्दुसन्तृप्तकेदाराः गोधूमचणकयवमक्कीकतिलसार्षपादिसकलधान्यानि सस्पर्धं प्रायच्छन् । तद्भार्या मञ्जरी स्कन्धेन स्कन्धं तस्य साहाय्यमाचरन्ती ग्राममहिलाभ्य आदर्शं प्रास्तौत् । गोविन्दगोष्ठं महादेववृषभमप्यतिशयानेन[1] 'जुगनु-मजनू' नाम बलीवर्दयुगलेन शुशुभे । गोविन्दः उभावपि वृषभौ राष्ट्रपालकौ विज्ञाय बालकौ यथाऽपालयत् । असौ प्रातरुत्थाय सर्वप्रथमं गोष्ठे वृषभदर्शनेन दिनचर्यां प्रारेभे । स्नेहज्ञापनेप्सुस्तत्पृष्ठधृतकरस्ताभ्यां घृताभिघरितगोधूमकरपट्टिकाचूर्णं प्रत्यहमभोजयत् । वृषभावपि तत्स्कन्धन्यस्तगलकम्बलौ स्नेहलिप्तकृतज्ञतां व्यज्ञापयताम् । आयामे, उच्चतायां, गतौ बले च समतां प्रदर्शयतोस्तयोः कुम्भसमककुदौ सौन्दर्यवृद्धिकरौ अज्ञायेताम् । केदारं प्रति व्रजतोस्तयोः लम्बतमे पुच्छे पश्चात्प्रचलत्गोनिन्दमार्गकण्टकशोधनपरे स्वामिनः भक्तिमिवादर्शयताम् । एकोऽपरस्य स्पर्शनेहया यथा कुण्डलाकृती शृङ्गे सरणिस्थानां कुतूहलकरे अलक्ष्येताम् । तयोर् दोलायमानप्रलम्बसास्ने ग्रीष्मर्तु घर्मार्तधरणीतलव्यजनमिवाकुरुताम् । विस्तृतशफाः सबीजसस्यगाहने मञ्जरीभ्यः द्रुतं बीजनिस्सारणक्षमाः गोविन्दकार्यभारमलघयन् । तयोर घनगर्जनसमरम्मणं निशम्य लोका दूरात् अबिभयुः । शवलवर्णौ मस्तके चन्द्रबिन्दुधरौ मानवजगति यथा पशुसंसृतावपि विधातुः रचनाचातुर्यं प्रकटयाञ्चक्रतुः । प्रकृतिशीलावपि तौ आकृत्या निर्विषफटाटोपधरव्यालवत् लोकेभ्यः दूराद् भयमजनयताम् । कोऽप्यपरिचितः वृषभभीत्या गोविन्दानाज्ञप्तस्तद्गोष्ठे पदं धर्तुं न शशाक । उभयोर् वहौ[2] लोहवद्दृढौ सर्वधुराकर्षणक्षमौ असिध्येताम् । मञ्जरीगोविन्दौ गोष्ठं पाकशालामिव स्वच्छमधारयताम् । तत्र न गोमयगन्धो न मूत्रगन्धः । जुगनुमजनू अपि मानववत् ज्ञानधरौ यथासमयमेव गोमयमूत्रे विससृजतुः । रज्जुवर्जमेव केदारं प्रस्थितौ बलीवर्दौ घ्राणगन्धेन

---

1. अतिशयानेन तिरस्कुर्वता । तस्मात् श्रेष्ठतमेनेति भावः ।
2. वहौ—स्कन्धप्रदेशौ । 'स्कन्धप्रदेशस्तु वहः सास्नागलकम्बलः'

सोने का पेड़

काश्मीर के समस्तीपुर में गोविन्द नाम का एक किसान रहता था। उस के परिश्रम की पसीने की बूंदों से तृप्त खेत गेहूं, चणा, जो, मक्की, तिल, सरसों आदि सब प्रकार के अनाज को स्पर्धा के साथ देते थे। उस की पत्नी कन्धे से कन्धा मिला कर गोविन्द की सहायता करती हुई ग्राम की महिलाओं के लिये आदर्श प्रस्तुत करती थी। गोविन्द की गोशाला महादेव के बैल को भी तिरस्कृत करने वाले जुगनु-मजनु नाम के दो बैलों से शोभा देती थी। गोविन्द दोनों बैलों को राष्ट्र का पालक समझ कर उन्हें बालक जैसे पालता था। वह प्रातःकाल उठ कर सब से पहले गोशाला में बैलों का दर्शन कर दिनचर्या प्रारम्भ करता था। अपना प्यार जताने के लिये उन की पीठ पर हाथ रख कर उन को गेहूं की रोटियों की घी से बनी चूरी हर रोज खिलाता था। बैल भी उसके कंधे पर गलकम्बल रख कर प्यारभरी कृतज्ञता जताते थे। लम्बाई में, ऊंचाई में, चाल में और बल में बराबरी रखने वाले उन की घड़े के समान ठूठें दोनों की सुन्दरता को बढ़ाती थीं। खेत को जा रहे उन दोनों की पूंछे पीछे चल रहे गोविन्द के रास्ते के कांटों को साफ करती हुई मानों स्वामी की भक्ति दिखाती थीं। मानों एक दूसरे के स्पर्श की इच्छा से ही कुंडलों की शकल वाले सींग रास्ते के लोगों को तमाशा पैदा करने वाले दिखाई देते थे। उनके झूलते हुए लम्बे लम्बे गलकम्बल ग्रीष्म ऋतु की गर्मी से पीड़ित धरती को मानों पंखा करते थे। चौड़े चौड़े खुर, बीज भरी खेती के गाहने में मिजरों से जल्दी बीज निकालते हुए गोविन्द के काम के भार को कम करते थे। बैलों के घनगर्जन के समान रंभण को सुन कर लोग दूर से ही डरते थे। चित्र विचित्र रंग के, माथे पर चन्द्रबिन्दु वाले मानवसंसार में जैसे पशुजगत में भी विधाता की रचना की चतुराई प्रकट करते थे। स्वभाव से शील भी वह शकल से विषहीन फटाटोप को रखने वाले सांप के समान दूर से ही लोगों को भय पैदा करते थे। कोई भी अपरिचित व्यक्ति बैलों के डर से गोविन्द की आज्ञा के बिना उस की गोशाला में पैर न रख सकता था। दोनों के कन्धे लोहे की तरह

क्षेत्रज्ञानपरौ तत्रोपगम्य युगसमीपे अवातिष्ठताम् । गोविन्द उभयस्कन्धकृत-युग:गलकृतयोत्र: घृतलाङ्गूलपुच्छस्तौ गन्तुं प्रेरयामास । तावपि रणभूमौ योद्धारःसेनापतिसङ्केतेन वैरिमर्दनाय यथा गोविन्दोच्चारित 'हुं' शब्देन उन्नत-ग्रीवौ केदारमृदं सद्योऽङ्कुरप्रसवहेतवे नवनीतसमकोमलामाप्तुं[1] द्रुतपदं प्रचेलतुः। सगलघण्टिकानिनदं हलं वहतोस्तयोर्गतिं निरीक्ष्य पवनोऽपि विस्मयं भेजे।

गोविन्दोऽपि हलं चालयन् गन्त्रीचालकवत् सर्वेन्द्रियसावधानोऽतिष्ठत्। बीजवपनकाले गोविन्दमनुसरन्ती लाङ्गूलरेखायां तर्जन्यङ्गुष्ठाभ्यां बीजानि विकिरन्ती, स्मयमाना मञ्जरी भर्तारं प्राह "पतिदेव, एतावद्द्रुतं मा चालयतु। रेखामध्यगतबीजान्येव दृढमूलयुतानि फलदानि जायन्ते। मृद-मुपरि इतस्ततः प्रसृतबीजोद्भूतनिर्बलान्यङ्कुराणि वाताघातासहानि आतपेन दूयन्ते। वर्षापातक्षरितमूलानि धरातले स्वपन्ति। अथ चाद्यत्वे भारते महाराजनयनयोर् धूलिं प्रक्षिपन्तः द्विसङ्ख्याकव्यवहारपराः वणिजो यथा लोलुपाः खगाः उपरितलपतितबीजानि भक्षयन्तः नः कृषेर्ह्रासं जनयन्ति। गोविन्दः प्राह—"त्वं चिरपरिचिता यदेकहल्यकेदारे वृषयोरधमागतिः, द्विहल्ये मध्यमा त्रिहल्ये चोत्तमा। साम्प्रतं केदारोऽयं त्रिहल्यः। ते मन्दगतिं वक्रनयनेन निरीक्षमाणौ, पश्य, जुगनुमजनू अपि कथमुपहसतः। वस्तुतस्त्वं प्रथमत एव धावनकलानभिज्ञा। भास्करः मयूखचरणैर् मध्याह्नरेखां स्प्रष्टुमधीरः। अद्य प्रभाते लवणान्वितचूर्णिकाप्रसेवितौ एतौ पिपासितौ लक्ष्येते। हलचालनमनु काष्ठपट्टेन लाङ्गूलरेखासमीकरणमपि वर्तते। अतस्त्वं द्रुतगतिमाश्रयस्व"। मञ्जरी (विहस्य) प्राह—"भवतु नाम, भवान् धावयतु। अहमनुसरामि।" हलचालनानन्तरं पाठशालावकाशमनु कूर्दमानाश्छात्राः यथा प्रसादभाग्वृषभौ विषाणैर् वल्मीकश्रृङ्गाण्युत्पाटयन्तौ समुन्नतपुच्छौ वप्रपरिक्रमां कर्तुमिव परितः दधावतुः। मञ्जरीगोविन्दावपि बाजरककरपट्टिकोपरिकृतनवनीतपिण्डौ सतक्रभोजनममुङ्क्ताम्। निपीतसलिलयोस्तृणं प्रभुज्योपविष्टयोर्भुक्तपाचनाय रोमन्थपरायणयोः, स्नेहज्ञापनायपरस्परं भालं लिहतोर्वृभयोर्मुखात् धरणीगत-फेनबिन्दवो मुक्ताफलानीव शुशुभिरे।

---

1. नवनीतम् अकृताग्निसंयोगघृतम्।
'घृतमाज्यं हविः सर्पिर्नवनीतं नवोद्धृतम्' (इत्यमरः)

मजबूत हर प्रकार की धुरा के खींचने में समर्थ थे। मंजरी और गोविन्द गोशाला को रसोईघर के समान ही साफ सुथरा रखते थे। न वहां गोबर का गन्ध था और न मूत्र का। जुगनु-मजनु भी मनुष्य की तरह ज्ञान रखने वाले ठीक समय पर ही गोबर और मूत्र करते थे। रस्सी के बिना ही खेत को जा रहे बैल नाज की गन्ध से अपने आप ही खेत का ज्ञान रखने वाले वहां जा कर जुए के पास खड़े हो जाते थे गोविन्द दोनों के कन्धों पर जुआ रख कर गले में जोत डाल कर हल की पूंछ हाथ में पकड़ कर उन्हें चलने की प्रेरणा करता था। वह भी रणभूमि में योधा सेनापति के संकेत से शत्रुओं को मसलने के लिये जैसे गोविन्द से बोले 'हुं' शब्द से गर्दन ऊंची करके खेत की मिट्टी को जल्दी अंकुर पैदा करने के हेतु मक्खन के समान कोमल बनाने के लिये जल्दी जल्दी दौड़ते थे। गल की घंटियों के शब्द के साथ हल चला रहे उन दोनों की चाल को देख कर हवा भी विस्मय मनाती थी।

गोविन्द भी हल चलाता हुआ बस के ड्राइवर की तरह सब इन्द्रियों से सावधान रहता था। बीज बोने के समय में गोविन्द के पीछे चलती हुई हल की रेखा में तर्जनी और अंगूठे की सहायता से बीजों को गिराती हुई मुस्कराती मंजरी पति को बोली—"पतिदेव, इतनी जल्दी मत चलाओ। रेखा के बीच में पड़े बीज ही मजबूत जड़ों वाले और फलदायक होते हैं। मिट्टी के ऊपर इधर-उधर पड़े बीजों से पैदा होने वाले अंकुर वायु के आघात को न सह सकते हैं और गर्मी से सूख जाते हैं। वर्षा के पानी से उन की जड़ें धुल जाती हैं और वह धरती पर सो जाते हैं, : और आजकल भारत में महाराजा के नेत्रों में धूल झोंकते हुए दो नम्बर के व्यापारी जैसे पक्षी ऊपरी तल पर पड़े बीजों को खाते हुए हमारी खेतीबाड़ी को नुक्सान पहुंचाते हैं। गोविन्द बोला—'तुम्हें देर से मालूम है कि एक हल वाले खेत में बैलों की गति अधम, दो वाले में मध्यम और तीन वाले में उत्तम होती है। इस खेत में अब तीसरा हल चल रहा है। तेरी मन्दगति को टेढ़ी आंख से देखते हुए यह बैल भी किस प्रकार मजाक कर रहे हैं। असल में आप पहले से ही दौड़ना न जानती हो। अब दोपहर हो रहे हैं। आज सवेरे इन को नमक वाली चूरी दी है इसलिये यह प्यासे हैं। हल चलाने के बाद सुहागे से हल रेखाओं को भी मिटाना है। इसलिये तुम जल्दी-जल्दी चलो'। मंजरी—(हंसकर) 'अच्छा कोई बात नहीं' आप दौड़ाओ।

गोविन्दगोष्ठे मङ्गलापिङ्गलानामधेनुयुगलमपि विरराज । उभावपि गावौ घटोध्न्यौ[1] । प्रस्रवणात्सलिलं[2] यथा तयोः स्तनेभ्यः क्षीरमवहत् । प्रभाते शतं जनास्तक्रं दधि चादातुं मञ्जरीगेहमुपजग्मुः । सा मुक्तहस्तकमागन्तुकेभ्यः यथेप्सितं प्रददौ । 'नेति' शब्दः कदाचित्तन्मुखान्नाश्रूयत । अत एव ग्राम्यजनास्तां 'वरदादेवी' इति व्यजानन् ।

मञ्जरीगोविन्दयोः परिश्रम एव धर्मः । प्रत्यूषे जागृतौ प्रक्षालितहस्तमुखौ अशौचादिकर्मनिवृत्तौ कृताभिषेकौ मन्दिरे जगन्नियन्तृकृतदर्शनौ स्वकार्यं प्रारभेताम् । मञ्जरी मन्थन्यां[3] प्रक्षिप्तदधिका[4] मन्थनदण्डे कृतरज्जुर् विलोडनपराभवत् । गोविन्दः गोष्ठे गोसेवानिरतो बभूव । प्रतिवर्षं कार्तिकशुक्ले गोपाष्टम्यां गोविन्दगोष्ठस्यानुपमैव शोभा । असौ मुख्यद्वारे आरोपितकदलीस्तम्भः विविधपुष्पमालाभिर् गोष्ठं सुसज्जयन् सकलं दिनं तत्र घृतज्योतींषि प्रादीपयत् । होमगन्धो धूपगन्धश्च मार्गस्थानामाकर्षणकरौ असिध्येताम् । गोवंशमस्तककृतकुङ्कुमतिलकौ शृङ्गेषु माल्यानि समर्पयन्तौ पुनः पुनर्नमन्तौ विविधमिष्ठान्नखाद्यानि गोवृषभान् भोजयामासतुः । राजप्रासादे दीपमालोत्सवमिव तद्गोष्ठच्छविं निरीक्षितुं समागतलोकान् गोविन्दः शुद्धाज्यविनिर्मितमोदकैः सभाजयामास ।

गोविन्दस्य सुतद्वयम्, धनीरामः देवीरामश्च । दशमपरीक्षामनु उभावपि सुतौ कृषिकार्यनियोजनकृतमानसं भर्तारं मञ्जरी प्राह –"पतिदेव, श्रीमन्तः सुतोन्नतशिक्षाप्रदानात्कथं विरक्तः ? अद्यत्वे निर्धना अपि सन्ततिं स्नातकोपाधिविभूषितामालोकितुं समुत्सुकास्तिष्ठन्ति । भवन्तः सामर्थ्ये सत्यपि एतौ महाविद्यालयं कथं न गमयतः" ? गोविन्दः प्राह—"प्रिये, संसृतौ कृषिकार्यात्पुनीतं किमपि कृत्यं नयनयोर्नावतरति । पुण्यं हलप्रवाहणम् । पिता केवलं कुटुम्बं भरति । परं कृषकाः समस्तराष्ट्रमन्नदानेन पालयन्ति । मञ्जरि, पश्य –

सीमासु सैनिकाः सज्जाः क्षेत्रेषु कृषकास्तथा ।
स्वाधीन्यं तस्य देशस्य न कोऽपि छेत्तुमर्हति ।

---

1. घटवत् ऊधः यस्याः सा घटोध्नी । ते घटोध्न्यौ । (ऊधसोऽनङ्)
2. प्रस्रवणात् निर्झरात् ।
3. मन्थनी गर्गरी तस्याम् ।
4. प्रक्षिप्तं दधि यया सा प्रक्षिप्तदधिका । विलोडनार्थमितिभावः ।

मैं पीछे भागती हूं। हल चलाने के बाद पाठशाला में छुट्टी के बाद कूदते हुए छात्र जैसे प्रसन्न बैल सींगों से वामी की चोटियों को उखाड़ते हुए, पूंछ उठाये मानों खेत की परिक्रमा करने के लिये जैसे चारों ओर दौड़ते थे। मंजरी और गोविन्द भी बाजरे की रोटी पर माखन का पेड़ा रख कर छांछ से भोजन करते थे। पानी पीकर और घास खाकर बैठे हुए, खाये को पचाने के लिये जुगाली करते हुए, प्यार जताने के लिये एक दूसरे के माथे को चाटते हुए बैलों के मुख से धरती पर गिरे झाग के बिन्दु मुक्ताफल के समान शोभा देते रहे थे।

गोविन्द की गोशाला में मंगला-पिंगला नाम की दो गौएं भी रहती थीं। दोनों ही गौएं घड़े के समान बड़े उल्ह वाली थीं। झरने से पानी के समान उनके स्तनों से दूध निकलता था। प्रभात में सैंकड़ों लोग छांछ और दही के लिये मंजरी के घर आते थे। वह भी खुले हाथ, आने वालों को मनचाहा देती थी। 'नहीं' शब्द उसके मुंह से कभी न निकलता था। इसीलिये क्षेत्र के लोग उसे 'वरदादेवी' के नाम से पहचानते थे।

मंजरी और गोविन्द का परिश्रम करना ही धर्म था। प्रभात में उठ कर हाथ मुंह धोकर अशौचादि से निवृत्त होकर स्नान करके मंदिर में भगवान के दर्शन करके अपना काम प्रारम्भ करते थे। मंजरी चाटी में दही डालकर मंथन दण्ड में रस्सी डाले छोलने का काम करती थी। गोविन्द गोवंश की सेवा में लग जाता था। हर वर्ष कार्तिक शुक्लपक्ष गोपाष्टमी के दिन गोविन्द के गोष्ठ की अनोखी ही शोभा होती थी। वह मुख्य द्वार पर केले के खम्बे लगा-कर अनेक प्रकार के फूलों की मालाओं से गोष्ठ को सजाकर सारा दिन वहां घी की ज्योतियां जगाता था। हवन और धूप की सुगन्ध मार्ग के लोगों को अपनी ओर खींचती थी। गोवंश के माथे पर केसर का तिलक लगाकर सींगों को मालाओं से सजाते हुए बार-बार नमस्कार करते हुए गौ-बैलों को अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थ खिलाते थे। राजमहल में दीपावली के उत्सव को जैसे उसकी गोशाला की शोभा देखने के लिये आए हुए लोगों का गोविंद शुद्ध घी से बने लड्डुओं से सत्कार करता था।

गोविन्द के धनीराम और देवीराम दो पुत्र थे। दसम परीक्षा के बाद दोनों पुत्रों को खेती-बाड़ी में लगाने की इच्छा वाले पति को मंजरी बोली—'पतिदेव, आप पुत्रों को उच्च शिक्षा देने से क्यों विरक्त हैं? आजकल तो गरीब

महाविद्यालयस्था बहवश्छात्राः परीक्षोत्तरणाय कृतानुकरणा दिनं दिनमुद्दण्डतामाश्रयन्ति । नित्यान्दोलनप्रसक्तमानसास्ते पुस्तकानीक्षितुं समयमेव नोपलभन्ते । योग्यतायाश्चिह्नमपि नावलोक्यते । अतो नाहमुच्चशिक्षाप्रलोभने ममात्मजो मानवतानिम्नतले निनीषामि । मञ्जरि, पश्य । वयं भूपतयः । वयमेव प्रजापालनभारं स्कन्धयोर्वहामः । अपरे तु केवलं दण्डधराः" ।

मञ्जरी प्राह—"भर्तः, नाहं भवन्मते अन्तरायं चिकीर्षामि । परं तदैतो परिणीय कथं न कृषिकर्मणि वधूसंहाया भवेम । गोविन्दः प्राह—"युगलमिदमागामिवत्सरे एकविंशतिं पूरयिष्यति, तदोद्वाहं करिष्यामः । त्वमद्यदिवसादेवोभार्यां कृषिकन्यान्वेषणं प्रारभस्व" ।

गोविन्दः साम्प्रतं कृषिपण्डितोपाधिविभूषितः ग्राम्यकृषकैः कृष्युत्पादनप्रवरविधीन्विज्ञातुम् अहरहरगम्यत । मञ्जरीगोविन्दौनास्तामेककोवप्रकोणेषु साम्प्रतम् । धनीरामदेवीरामौ, अञ्जनावन्दने वध्वावपि केदारशोभामवर्धयन्त । वध्वौ गृहकर्मणि श्वश्र्वाः साहाय्यमाचारन्त्यौ पितृकुलश्रेष्ठतापरिचयं प्रददतुः । केदारधृतपदे ते क्षेत्रालङ्करणमिवाज्ञायेताम् तन्नूपुरध्वनिजागृतनवाङ्कुराणितयोर्मुखदर्शनोत्कण्ठयैव प्रतिक्षणमुच्चतां समाशिश्रियुः । वध्वौ एवंविधलावण्ययुते यथा देवलोकान्मर्त्यलोकमालोकितुमेव भूतलमाययतुः । दात्रं, कोटिशः, खनित्रं कृषिकर्मयन्त्राणि अहमहमिकया तत्करौ स्प्रष्टुं समुत्सुका इव समासत । धनीरामदेवीरामौ हलमचालयताम् । अञ्जनावन्दने लोष्ठभेदनम् अङ्कुरवाधाकरतृणावचयञ्चाकुरुताम् । मञ्जरी साम्प्रतं पाकशालाधिकारिणी तेभ्यः सुमधुरखाद्यानि निर्माय क्षेत्रेषु प्रापयन्ती सम्मानं लेभे ।

एष आसीन्माधवो मासः । खलधान्यैककोणे गोधूमाः, अपरकोणे चणकाः, तृतीयकोणे सर्षपाः, चतुर्थकोणे च मसूराः । एतेषां ढेरकाणि परस्परं स्पर्धयेवाकाशं चुचुम्बुः । गोविन्दः मञ्जरीं प्राह "प्रिये, पश्य कीदृशा अन्नपतयो भूपतयो वा वयम् । अस्माभिरेव राष्ट्रं भ्रियते । स्वाधीन्येऽधिगते विदेशान्नं भुञ्जाना वयं परदेशसमक्षं ग्लानिभारनताः यथा ऐक्ष्यामहि । अद्य परिश्रमेण वयमन्नदातृम्पोऽपि धान्यानि प्रददाना गौरवोन्नतमस्तका परिचीयामहे । मञ्जरि, किं भवती उत्तमदेशपरिभाषां विजानाति ? मञ्जरी प्राह—"नहि भर्तः, नाहं बुध्ये । भवन्तः ब्रुवन्तु परं छन्दसि । श्रीमतां प्रेयश्छन्दासि मोह-

लोग भी अपने बच्चों को बी० ए० तक तो पढ़ा ही लेते हैं। आप सामर्थ्य होने पर भी इनको कॉलेज में क्यों न भेजते हो' ? गोविन्द बोला—'प्रिये, संसार में खेती-बाड़ी से पवित्र काम कोई है ही नहीं'। हल चलाना ही पुण्यदायक है। पिता केवल अपने कुटुम्ब को पालता है परन्तु किसान अन्नदान से सारे राष्ट्र को पालते हैं। मंजरी देखो :—

जिस देश की सीमाओं पर सैनिक और खेतों में किसान सजे हों उस देश की स्वाधीनता को कोई भी न छीन सकता है। कालेज के छात्र परीक्षा पास करने के लिये नकलें करते हुए हर रोज उदण्ड बनते जा रहे हैं। आये दिन आन्दोलन में फंसे हुए उनको पुस्तकें देखने का सलय ही न मिलता है। योग्यता का चिह्न भी न दिखाई देता है इस लिये मैं उच्चशिक्षा के प्रलोभन में अपने पुत्रों को मनुष्यता के नीचले तल में न ले जाना चाहता हूं। मंजरी, देख—हम राजे हैं। हम ही प्रजापालन के भार को अपने कन्धों पर उठाते हैं। बाकी तो केवल दंडधारी हैं। मंजरी बोली—'पतिदेव, मैं आप के मन में विघ्न न करना चाहती हूं। तो फिर उन की शादी करके क्यों न हम बहुओं को भी अपने काम में सहायक बना लें।' गोविन्द बोला—'अगले साल यह इक्कीस वर्ष के हो जाएंगे। तब इन की शादी करेंगे। तुम आज से ही इन के लिये कोई किसान की कन्याएं ढूंढना आरंभ कर दो।

गोविन्द को अब कृषिपंडित की उपाधि मिल चुकी थी। इलाके के किसान खेती-बाड़ी के अच्छे तरीके सीखने के लिये हर रोज उसके पास आते थे। मंजरी और गोविन्द अब खेतों के कोणे में अकेले थे। धनीराम, देवीराम और अंजना, वंदना बहुएं भी खेतों की शोभा बढाती न थीं। बहुएं घर के काम-काज में सास की सहायता करती हुई अच्छे पितृकुल का परिचय देती थीं। खेत में गई हुई वह उनका भूषण जैसे समझी जाती थीं। उनके नूपुरों की ध्वनि से जागे हुए नये अंकुर मानों उनका मुखड़ा देखने की उत्कंठा से ही पल-पल ऊंचे होते जाते थे। बहुएं इतनी सुन्दर थीं मानों मर्त्यलोक को देखने के लिये ही देवलोक से आई हों। दराती, कुठेला, खुर्पा आदि कृषिकर्म के यंत्र एक दूसरे से आगे होकर उनके हाथों को छूने के लिये उत्कंठित रहते थे। अंजना, वंदना ढेलों को पीटना और अंकुर पैदा होने में बाधा डालने वाले घास को उखाड़ने का काम करती थीं। मंजरी अब रसोईघर में उन के लिये विविध पदार्थ बनाकर खेतों में पहुंचाती हुई मान पाती थी।

यन्ति मे मनः" । गोविन्दः—"त्वयाऽहं परीक्षायां विनिपातितः । शृणु—

खाद्यशस्त्रात्मतन्त्रो यश्चान्तःकलिविवर्जितः ।
कलहो न पदेत्सार्यं देशोऽसौ भुविमानभाक् ।।

मञ्जरी—"भवतां कवितां श्रावि श्रावि न तृप्यति मे मनः"

(अत्रान्तरे समाचारपत्रकरो धनीरामः खलित्रप्रविष्टः पत्रं पितृहस्ते समार्पयत्) गोविन्दः समाचारपत्रे कृषकाणाम् ऋणोन्मुक्तिसमाचारमधीत्य स्तब्धहृदयः मञ्जरीं प्राह—"प्रिये ! अत्याहितम् ।" मञ्जरी—कि कश्चिन्नेता परलोकमाश्रितः" ? गोविन्दः—"नहि, इतोप्यभद्रतरम्" मञ्जरी—"द्रुतं वदन्तु भवन्तः । मम हृदयं विकम्पते" गोविन्दः—"कृषका ऋणोन्मुक्ताः करिष्यन्ते" । मञ्जरी—"हुं भवन्तः सदैवोपहासपराः" । एतस्मिन् कापत्तिः" ? एष तु प्रमोदविषयः", गोविन्दः—"मञ्जरि, त्वं बोधशून्या नारी । एषाऽ निष्कुरी परम्परा । एतया कृषिवला अकर्ण्यंताकुण्डे विनिपातिताः । भविष्यति कोऽपि हलधरः ऋणं न प्रत्यावर्तिष्यते । सङ्क्रामकोऽयं रोगो अपरक्षेत्रऋणिनोऽपि प्रभावयिष्यति । लोका असत्यऋणान्यादाय महाराजात्तदुन्मुक्तिं कामयिष्यन्ते । नवीनोऽय भ्रष्टाचाराजगरो राष्ट्रं दंष्टुमवतीर्णः । एतेन भारतार्थव्यवस्था तितउवच्छतच्छिद्रतां प्रयास्यति । मञ्जरी—भर्तः, चेदेवं तदैवंविधाचरणात्कथं न विरमन्ति एते जनाः" । गोविन्दः—"स्वार्थलिप्सैवात्र कारणम्"। एते महाजनाः समाननागरिकसंहितामनादृत्य धर्मनिरपेक्षतारम्यकलेवरं सापेक्षताशवाच्छादनेन छादयन्तः, युगेभ्यो मैत्रीमेखलानिबद्धभारतीयेषु कृषकश्रमिकहरिजनोन्नतवर्गनिम्नवर्गाल्पमतबहुमतवर्गभेदमुत्पाद्य विविधप्रलोभनानि प्रदर्शयन्तः, पृथक् विधिनियमान् निर्धारयन्तः राष्ट्रमूलोच्छेदनतत्परा दृश्यन्ते ।

मञ्जरी—भर्तः, धर्मनिरपेक्षराष्ट्रस्य का परिभाषा ? गोविन्दः प्राह—

समाना संहिता यत्र समस्तदेशवासिभ्यः ।
धर्मानपेक्षराष्ट्रं तन्मुनिभिः समुदाहृतम् ।।
समानसंहिताभावे जना दूषितवृत्तयः ।
धर्मान्धा एव जायन्ते राष्ट्रं तु खण्डयन्ति ते ।।

यह वैशाख का महीना था। खलिहान के एक कोणे में गेहूं, दूसरे में चणे, तीसरे में सरसों और चौथे में मसूर। इन के ढेर आपस में स्पर्धा से ही आकाश को छू रहे थे। गोविन्द मंजरी को बोला—'प्रिये, देख हम कैसे अन्न-पति और भूपति हैं। हम ही राष्ट्र को धारण करते हैं। स्वतंत्रता मिलने पर विदेशों का अन्न खाते हुए हम लोग परदेश के सामने ग्लानि के भार से झुके देखे जाते थे। आज परिश्रम से अन्न देने वालों को भी अनाज देते हुए; गौरव से ऊंचे मस्तक वाले पहचाने जाते हैं। मंजरी, क्या तुम उत्तम देश की परिभाषा जानती हो? मंजरी 'नहीं पतिदेव, मैं न जानती हूं। आप बताओ पर छन्द में। आप के छन्द मेरे मन को मोह लेते हैं। गोविन्द – "तुम ने मुझे परीक्षा में डाल दिया। सुन

जो देश खान-पान की वस्तुओं में और अस्त्र-शस्त्र में स्वतंत्र होता है और जहां पद की प्राप्ति के लिये झगड़ा न हो वही देश संसार में मान पाता है।

मंजरी 'आप की कविता को सुन-सुन कर मेरा मन तृप्त न होता है।

इतने में धनीराम समाचारपत्र लेकर खलिहान में आया और पत्र पिता के हाथ में दे दिया। गोविन्द समाचारपत्र में किसानों की ऋणछूट का समाचार पाकर सुन्न हृदय वाला मञ्जरी को बोला—"प्रिये बहुत बुरा हुआ। मंजरी—'क्या कोई नेता स्वर्ग सिधार गया?' गोविन्द-'नहीं इससे भी बुरी बात।' मंजरी – 'आप जल्दी बताइये, मेरा दिल कांप रहा है'। गोविन्द—'किसानों के कर्जे माफ कर दिये जाएंगे'। मंजरी—'हा ३ आप को भी सदा मजाक ही दिखाई देता है। इस में क्या बुराई है। यह तो प्रसन्नता का विषय है।' गोविन्द—'तू बहुत ही भोली नारी है। यह परम्परा तो बहुत ही खतरनाक है। इस ने किसानों को अकर्मण्यता के कुंड में धकेल दिया। भविष्य में कोई भी किसान कर्ज नहीं लौटाएगा। यह संक्रामक रोग दूसरे क्षेत्र के ऋणियों को भी प्रभावित करेगा। लोग झूठे कर्ज लेकर महाराजा से उसका छुटकारा चाहेंगे। यह नया भ्रष्टाचार का अजगर राष्ट्र को डंसने के लिये उतर आया। इस से देश की अर्थव्यवस्था में छानणी के समान सौ छेद पड़ेंगे। मंजरी 'पतिदेव, यदि ऐसा है तो वह इस प्रकार के आचरण से मुंह क्यों नहीं मोड़ते हैं। गोविन्द—'स्वार्थ की चाहना ही इस का कारण है। यह बड़े लोग समान नागरिकसंहिता को ठुकरा कर धर्म

मञ्जरी ततस्तु ईश्वर एवैतद्देशरक्षकः।

सप्ततिहायनः शिथिलकायो गोविन्दः साम्प्रतं कृषिकार्याक्षमः क्षेत्रकोणगतकुटीरस्थः कृषिकार्यप्रसक्तसुतयोः निरीक्षणं विदधानस्तयोस्त्रुटीरवारयत्। घनीरामयुगे निरीक्षितशिथिलबन्धनोऽसौ प्राह – "वत्स, युगे हलस्त्वया न रज्जुना दृढं निबद्धः। एतेन वृषभौ वाहने असुविधामनुभवतः। सुधारयैतत्। घनीरामः स्वप्रामदखिन्नः हलं युगे रज्जुना दृढं निबबन्ध। ततो बलीवर्दौ द्रुतगतिम् अधारयताम्। एवमसौ लाङ्गलरेखयाऽपपरेखामविरलं सन्धयितुमप्यशिक्षयत्।

कासश्वासरोगाक्रान्तो गोविन्दः श्वासकुठाररससेवनेन शमं प्राप्तस्तत्कृपानाम्यस्तः भार्यावारितोऽपि तत्सेवनेन पुनरपि पूर्वावस्थां समाप्नोत्। रोगात्याक्रमणे सति मञ्जरी तस्मै मयूरपक्षभस्म सेवितुं प्रददौ। एतेनासौ ससुखश्वासः किञ्चिद् रोगप्रशमनं लेभे।

एकदा रुग्णशय्यागतो गोविन्दः सवधूकौ पुत्रावाहूयावदत्—"पुत्रौ, भवन्तौ कृषिकार्यकुशलौ चरित्रवन्तौ निर्लोभौ च निरीक्ष्याश्वस्तं मे मनः। पक्वं फलं चिरादचिद्वा महीं चुम्बत्येव। सान्ध्यभानुरिव मे जीवनं साम्प्रतमस्तोन्मुखम्। ये पितरः स्वसन्ततिकृत्यसन्तुष्टात्मानः शरीरं विजहति ते भाग्यशालिनः। अहमपि तेष्वेको गण्ये। ईर्ष्यालवः प्रतिवासिनो मे सदने कलहाग्निस्फुलिङ्गक्षेपणे समर्थाः न भवेयुरेतदर्थमहं भवन्तौ सावधानौ विदधामि। विद्वेषदहनो मे समृद्धसदनं मा दहेदित्येव मेऽन्तिमोऽभिलाषः. भवतो जननी मञ्जरी अतिसाध्वी सरलान्तरात्मा। एतयाऽहमाजीवनं छायावदनुसृये। मयि विगते एषाऽऽभीलं मानुभूयात्। कृषिकार्यलाभो गोवंशनिर्भरः। मम गोकुलं मयि संस्थिते[1] नाश्रुनयनं स्यात्।" तनयौ वध्वौ च ताताज्ञां सादरं जगृहुः।

अथ पितरि उपरते घनीरामदेवीरामौ कृषिकार्यरतौ यथापूर्वं लाभमवाप्नुताम्। परं त्रिवर्षाभ्यन्तरे एव ईर्ष्यालवः, कर्णेजपा[2] महिला अञ्जनावन्दनयोर्मानसं निम्बूकरसविन्दुदुग्धं जलाद् यथा पृथक्कर्तुं प्रारेभिरे।

1. संस्थिते—मृते।

2. कर्णेजपाः—पिशुनाः।

निरपेक्षता के सुन्दर शरीर को सापेक्षता के कफन से ढांपते हुए, युगों से भिन्नता की डोरी में बंधे देशवासियों में किसान, मजदूर, हरिजन, उन्नत वर्ग, पिछड़ा वर्ग, अल्पमत, बहुमत जैसा वर्गभेद पैदा करके अनेक प्रलोभनों को दिखाते हुए, भिन्न-भिन्न वर्गों के लिये अलग कानून बनाते हुए राष्ट्र की जड़ों में ही तेल देते दिखाई दे रहे हैं। मंजरी 'पतिदेव, भला धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र का लक्षण क्या है'? गोविन्द बोला—जहां सारे देशवासियों के लिये एक समान कानून हो उसे ही धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र कहते हैं। समान नागरिक संहिता के अभाव में लोगों की वृत्तियां दूषित हो जाती हैं और वह धर्मान्ध होकर राष्ट्र को खण्डित करने लग जाते हैं।

मंजरी— 'फिर तो भगवान ही इस देश का रक्षक है'।

सहत्तर वर्ष का दुर्बल शरीर वाला गोविन्द खेती का काम करने में असमर्थ, खेत के कोणे में बनी कुटिया में बैठ कर कृषिकाम में लगे पुत्रों का निरीक्षण करता हुआ उनकी त्रुटियों का सुधार करता था। धनीराम के जुए में हल का बन्धन ढीला देखकर वह बोला—'बच्चे, जुए में हल को तूने रस्सी से कस कर न बांधा है इस से बैलों को हल चलाने में असुविधा रहती है। इसमें सुधार करलो'। अपनी भूल से खिन्न धनीराम ने जुए में हल को रस्सी से कस कर बांध दिया। तब बैल जल्दी जल्दी चलने लगे। इस प्रकार हल की रेखा को दूसरी रेखा से बिल्कुल मिलाने की विधि भी सिखाता था।

श्वास-कास रोग से ग्रस्त गोविन्द को श्वासकुठाररस के सेवन से कुछ शान्ति मिलती थी परन्तु छांछ पीने का स्वभावी होने से पत्नी के रोकने पर भी उसके सेवन से पहली अवस्था में ही आ जाता था। रोग का भयानक आक्रमण होने पर मंजरी उसे मयूरपक्षभस्म का सेवन करवाती जिससे श्वास लेने में उसे सुविधा प्रतीत होती थी।

एक बार रुग्णशय्या पर पड़े गोविन्द ने बहुओं तथा पुत्रों को बुलाकर कहा –'पुत्रो, आपको कृषिकाम में निपुण, चरित्रवान और निर्लोभ देखकर मेरा मन आश्वस्त है। पका फल देर-सवेर में धरती पर गिरता ही है। सायंकाल के सूर्य के समान मेरा जीवन अब अस्त होने वाला है। जो माता-पिता अपनी संतान के कामों से संतुष्ट शरीर को छोड़ते हैं वही भाग्यशाली होते हैं। मैं भी उनमें एक हूं। ईर्ष्यालु पड़ोसी मेरे घर में कलह रूपी आग की चिंगारी न फेंक सकें इसके लिये मैं आपको सावधान करता हूं। विद्वेष की

एकदाऽञ्जना रहसि[1] भर्तारं धनीरामं प्राह—"किं गोमयं केदारं प्रापयितुमहमेवैकका, वन्दना कथं न। एषा तु प्रातरेव कृताभिषेका रम्यवसनालङ्कृता सुन्दरी सती चुल्ल्याः समीपस्था भर्त्रे सुस्वादुखाद्यान्ननिर्माणलग्ना सञ्जायते। आवां गोष्ठे भ्राम्यावः"। धनीरामः—"अञ्जने, देवीरामो मेऽनुजः। एवंविधधारणा न मनोग्राह्या"।

ततः वन्दना पत्ये पयः उपाहरन्ती प्राह ::अहं रहस्यमेकं वक्तुकामा भवामि। किं भवन्तः विश्वसिष्यन्ति"? देवीरामः—"वदतु भवती" वन्दना—"गोष्ठे धारोष्णदुग्धं कः पिबति"? देवीरामः—"न कोऽपि"। वन्दना—(उपहस्य) "भवन्तः सरलप्रकृतयो न किमपि बुध्यन्ते। कोऽपि न चेत्तदा कडङ्गरे[2] कांस्यपात्रं किमर्थं गोपायितम्"? देवीरामः—"क एवं करोति"? वन्दना—"भवद्भ्रातृजाया अञ्जनैवमाचरति। किं नावलोकन्ते भवन्तः, एतत्कपोलरक्तिमा कथं दिनं दिन वर्धते।" देवीरामः—"त्वयैतत्कथमज्ञायि"? वन्दना—"मम सख्या सुदर्शनया रहस्यमिदं विवृतम्"।

देवीरामः—वन्दने, अस्मदभ्युदयमसहमानजनाः नः गेहे कलहाङ्गारक्षेप्तुकामा एवं भाषन्ते। त्वं मा विश्वसिहि"। वन्दना—"परमञ्जना शिरोव्यथामिषेण पल्यङ्कं निषेवते। अहं केदारे बीजविकिरणपरा क्लान्ता भवामि। नाहमेतया सह कालक्षेपक्षमा"।

कूपे जलभरणार्थमायाते सुदर्शनाशारदे अन्योन्यम्—सुदर्शना (हसन्ती) शारदे, धर करे करम्, क्षिप्तो मया, स्फुलिङ्गः। पश्यावः साम्प्रतम् अञ्जनावन्दने कथं सम्मिलितशीर्षे मधुरं भाषेते। गोविन्दकेदारेषु हलद्वयं प्रचलिष्यति साम्प्रतं नैकं लाङ्गलम्"। शारदा—"सुदर्शने, मन्येऽहं ते पाटवम्। न ते भेदनकलां ब्रह्मापि बोद्धुं क्षमः। यत्र तत्र मङ्गलोत्सवेषु, भोजनपङ्क्तिषु एते स्वमहत्त्वं प्रादर्शयताम्। एतयोरहम्भावः साम्प्रतं शरदि व्यालो यथा पातालं प्रयास्यति। अहं त्वां श्वश्रूपरोक्षं क्षीरं भोजयिष्यामि"।

गोविन्दस्य संस्थितस्य[3] द्विवर्षपूर्तेः प्रागेव तस्य चलाचलसम्पदां विभाजनं समापतत्। मङ्गलालब्धजन्मानो वृषभो धनोरामः पिङ्गलात्मजो च देवीरामः

1. रहसि—विजने।
2. कडङ्गरो—बुसे। 'कडङ्गरोबुसं क्लीवे धान्यत्वचि तुषः पुमान्' (इत्यमरः)।
3. संस्थितस्य—मृतस्य।

आग मेरे समृद्ध घर को न जलाने पाए यही मेरी अन्तिम अभिलाषा है। आप की माता मंजरी साधु स्वभाव और सरल आत्मा वाली है। इस ने जीवन भर छाया के समान मेरा अनुसरण किया है। मेरे चले जाने पर इसे कोई कष्ट न होना चाहिये। खेतीवाड़ी का लाभ गोवंश पर निर्भर होता है। मेरी मृत्यु पर मेरे गोकुल की आंखों में आंसू न आने चाहियें। पुत्रों और बहुओं ने पिता के उपदेश को आदर के साथ ग्रहण कर लिया।

इसके बाद पिता के मर जाने पर धनीराम, देवीराम कृषिकार्य में पहले जैसा ही लाभ प्राप्त करते रहे। पर तीन वर्ष के अन्दर ही ईर्ष्यालु चुगलखोर महिलाओं ने अंजना-वंदना के मन को निम्बू के रस की बूंद दूध को पानी से जैसे अलग करना आरंभ कर दिया। एक बार अञ्जना ने पति धनीराम को कहा—'क्या गोबर खेत में ले जाने को मैं ही अकेली हूं। वन्दना क्यों नहीं। यह तो प्रातःकाल ही सुन्दर वस्त्र पहने हुए चुल्हो के पास बैठी पति के लिये स्वादु खाना बनाने में लग जाती है और हम दोनों गोशाला में भटकते फिरते हैं'। धनीराम—'अञ्जना, देवीराम छोटा भाई है, ऐसा सोचना ठीक न है'।

उधर वन्दना पति को दूध देती हुई बोली –'मैं आपको एक गुप्त बात बताना चाहती हूं। क्या आप विश्वास करेंगे' ? देवीराम—'आप बोलो'। वन्दना—'गोष्ठ में धारोष्ण दूध कौन पीता है'? देवीराम—'कोई भी नहीं'। वन्दना—(हँस कर) 'आप भोले स्वभाव के हैं इसलिये कुछ न समझते हैं। यदि कोई भी नहीं तो भूमे में कटोरा क्यों छिपाया हुआ है'? देवीराम—'ऐसा कौन करता है'। आपकी भावज अञ्जना ऐसा करती है। क्या आप देखते नहीं इस की गालों की लाली किस प्रकार दिन दिन बढ़ती जा रही है'। देवीराम—'तुम्हें यह कैसे पता चला। वन्दना –'मेरी सहेली सुदर्शना ने यह रहस्य बताया है'। देवीराम—'वन्दना, हमारी तरक्की को न सहने वाले लोग हमारे घर में कलह की चिनगारी फैंकने की इच्छा से इस प्रकार कहते हैं। तुम विश्वास मत किया करो'। वन्दना—पर अञ्जना सिर पीड़ा के बहाने से खाट पर सोई रहती हैं और मैं खेत में बीज का केरा करती हुई थकती हूं। मैं इसके साथ समय नहीं बिता सकती'।

कुएं पर पानी भरने आई सुदर्शना और शारदा आपस में :—सुदर्शना—(हंसती हुई) 'शारदा ले वाचा, मैंने चिनगारी फैंक दी। अब देखती हैं अंजना-वंदना किस प्रकार सिर मिलाकर आपस में मीठी बातें करती हैं। गोविन्द के

अगृह्णात् । धनीरामदेवीरामविद्वेषरेखा ज्येष्ठमासदिवसं यथा लम्बतामाशिश्रिये। एकदा धनीरामक्षेत्रे चरितुं गतं देवीरामवृषभम् अञ्जना दण्डेनाताडयत्। वन्दनया विरोधे ज्ञापिते कलहपरायणे उभे गालिकाऽसन्तुष्टे परस्परं केशाकेशिमकुर्वाताम्[1] । भार्यावाग्जालनिबद्धसहोदरौ निर्णयार्थं पंचायतनमुपतस्थतुः । परं तत्सदस्या गोविन्दोपकाराणां स्मरन्तः उभौ प्रबोध्य मौखिकवाग्भिरेव कलहमशमयन् ।

परं दुर्दिनान्यापृच्छ्य नायान्ति । पुत्रकलहाग्नि सन्तप्तमानसा मञ्जरी भर्तृपादौ निध्यायन्ती स्वर्गमारुरोह । एतत्कालेन जरद्गवौ जुगनुमजनू अपि निमीलितलोचनौ परलोकं प्रजग्मतुः । एकस्मिन् भूखण्डकोणे गोविन्दारोपितो वटतरुसमं विस्तारमावहन् वातादवृक्षः समतिष्ठत् । असौ पादपो भूरिमात्रायाम् उत्कृष्टकोटिवातादफलानि प्रायच्छत् । तर्जन्यङ्गुष्ठमर्दितान्येव तत्फलानि अन्तर्बीजम् उदगिरन् । असौ विटपी प्रतिवर्षं गोविन्दाय विंशतिसहस्रमुद्राणां लाभं प्रददौ । तत्फलाढ्यतां निरीक्ष्य गोविन्दस्तं तरुं 'सुवर्णपादपः' इत्यवदत् । असौ महीरुहः सकलक्षेत्रे एतेनैव नाम्ना व्यज्ञायि ।

सुवर्णपादपस्य दक्षिणतो धनीरामक्षेत्रं वामतश्च देवीरामकेदारोऽवर्तत । तरोः सन्धितन्त्रस्थितेः उभौ सहोदरौ स्वीयं स्वीयं पूर्णाधिपत्यं व्यज्ञापयामासतुः । एकदाञ्जना महीरुहारूढं, देवरं निरीक्ष्य द्रुतं गृहमागत्य भर्तारं प्राह— "देवीरामो वातादफलान्यवचेतुं सुवर्णपादपारूढः, भवन्तोऽत्रस्था जृम्भन्ति । अस्माननापृच्छ्य एष कथं विटपिनमारूढः ।" धनीरामो द्रुतं तत्रोपगम्य गृहीतदेवीरामजङ्घस्तमधोऽवतारयत् । फलानि भूमौ न्यपतन् । अत्रान्तरे अञ्जनावन्दनेऽपि तत्राययतुः । तेषां केशाकेशिमुष्टीमुष्टिदण्डादण्डियुत[2]कलहं निरीक्ष्य कुतूहलिनो बहवो जनास्तत्राजग्मुः । तस्मिन्नेव काले एको वृद्धः कमण्डलुकरः स्नानार्थं वापिकां व्रजंस्तत्रागतस्तौ प्राह—"भवन्तौ गोविन्दाभिधानं कलङ्कयितुं कथमुद्यतौ । फलान्यर्धार्धं विभज्य किमर्थं न गृह्णीतः" । धनीरामः— "परं सुवर्णपादपो मे सीम्नि वर्तते एतस्य फलादाने कोऽधिकारः" । देवीरामः—"तरुरयं मे भूखण्डस्थः न धनीरामस्य । अहं राजस्वविभागान्निर्णयं

---

1. केशाकेशिम्—केशेषुकेशेषु गृहीत्वेदं युद्धं प्रवृत्तं केशाकेशि ।
2. दण्डादण्डि—दण्डैर्दण्डैश्च प्रहृत्येदं युद्धं प्रवृत्तं दण्डादण्डि । 'अन्येषामपि दृश्यते' अनेन सूत्रेण दीर्घः ।

खेतों में अब एक नहीं दो हल चलेंगे।' शारदा—'सुदर्शना, मैं तेरी चतुराई को मानती हूं। तेरी फूट की कला को ब्रह्मा भी नहीं जान सकता। जहां तहां मंगलोत्सव में, भोजन की पंक्तियों में यह अपना महत्त्व दिखाती थीं। इनका घमंड अब शीतकाल में सांप के समान पाताल चला जायगा। मैं तुम्हें सास की पीठ पीछे खीर खिलाऊंगी'।

गोविन्द के मरने के दो साल के अन्दर ही उस की चलाचल सम्पत्ति का विभाजन हो गया। मंगला से जन्मे बैलों को धनीराम ने और पिंगला से जन्म लेने वालों को देवीराम ने लिया। दोनों भाइयों के विद्वेष की रेखा जेठ मास के दिन के समान लम्बी ही होती चली गई। एक बार धनीराम के खेत में चरने गये देवीराम के बैल को अंजना ने डंडे से पीट दिया। वन्दना के विरोध जताने पर झगड़े में उलझी दोनों गालियों से सन्तुष्ट न होकर एक दूसरे के केस खींचने लगीं। पत्नियों के वाग्जाल में फंसे दोनों भाई निणय के लिये पंचायत के पास चले गये। परन्तु सदस्यों ने गोविन्द के उपकारों का स्मरण करते हुए, दोनों को समझा कर मौखिक रूप से ही झगड़ा शान्त कर दिया।

पर खोटे दिन पूछ कर न आते हैं। पुत्रों के कलह की आग से संतप्त मनवाली मञ्जरी पति के चरणों का ध्यान करती हुई स्वर्ग सिधार गई। जुगनु मजनु दोनों बूढ़े बैल भी आंखें बन्दकर परलोक चले गये। एक भूखंड के कोणे में गोविन्द से लगाया, बड़ के पेड़ के समान बड़े विस्तार वाला बादाम का पेड़ था। वह पेड़ बड़ी मात्रा में उच्च कोटि के बादाम के फल देता था। तर्जनी और अंगूठे से दबाए हुए ही उन फलों की गिरी बाहर आ जाती थी। वह पेड़ हर साल गोविन्द को बीस हजार रुपये का लाभ देता था। उस पर फलों की भरमार को देखकर ही गोविन्द ने उस पेड़ का नाम 'सुवर्णपादप' रखा था। सारे क्षेत्र में इसी नाम से उस पेड़ को जाना जाता था।

सुवर्णपादप के दाईं ओर को धनीराम का और बाईं ओर को देवीराम का खेत था। पेड़ के मेंड पर होने के कारण दोनों भाई अपना अपना पूरा कब्जा जताते थे। एक बार अंजनाने पेड़ पर चढ़े अपने देवर को देख कर जल्दी घर आ कर पति को कहा 'देवीराम फल तोड़ने के लिये सुवर्णपादप पर चढ़ा है और आप यहां जंभाइयां ले रहे हो। हमें बिना पूछे यह पेड़ पर कैसे चढ़ गया'? धनीराम ने जल्दी वहां जा कर देवीराम को लात से पकड़ कर

लप्स्ये"। वृद्धः—(मनसि) 'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः' (प्रकाशम्) भवन्तो राजस्वाधिकारिणः संयावं भोजयताम्"। इत्युक्त्वा स्वसरणिमाशिश्राय।

अपरप्रभाते देवीराम। राजस्वपत्रधरस्य (पटवारिणः) समीपमायातः प्राह—"मदीयं कार्यमेकं वर्तते"। असौ (निम्नग्रीव एव) "एतस्मिन् समयेऽहं कार्यव्यस्तः। भवान् श्व आयातु"। (देवीरामः कक्षात् सेरकमात्रवातादफलानि तस्य पुरतोऽवारयत्) ततोऽसौ—उत्तनग्रीवः—"भवतोः सुवर्णपादपकलहो न प्रशान्तः साम्प्रतम्"? देवीरामः—"नहि! अहं परिमापनेप्सुर्भवामि। भवन्तश्चेन् मे पक्षे मतं प्रदास्यन्ति अहं पञ्चशतमुद्राः प्रदास्यामि", पत्रधरः—(सङ्ख्यापटं निष्कास्य) "चत्वारिंशदधिकपञ्चशतसंख्याको भूखण्डो भवदीयः। एकचत्वारिंशंदधिकपञ्चशतसंख्याकः केदारो धनीरामस्य। रेखास्थोऽयं सुवर्णपादपः। अहं प्रयतिष्ये भवत्पक्षे मतं साधयितुम्"।

तस्मिन्नेव प्रभाते धनीरामोऽपि उपरिष्टकर्मचारिणं कानूनगोमहोदयमुपगम्य समर्पितवातादफलोपहारः प्राह—स्वीकुर्वन्तु भवन्त उपहारमिमं कार्यञ्च मे साधयन्तु'। असौ वातादफलेष्वेकं तर्जन्यङ्गुष्ठाभ्यां विमर्द्यान्तर्बीजं मुखे निपात्य स्वादुतां व्यञ्जयन् प्राह—"किं सुवर्णपादपकलहः"? धनीरामः "एष विवादानलो भवतां सहयोगसलिलैनैव शमं प्रयास्यति। भवन्तश्चेत् परिमापनश्रृङ्खलां मे पक्षे निपातयिष्यन्ति, अहमेकसहस्रमुद्राः प्रदास्यामि"। कानूनगोमहोदयः—"एतदेवमेव भविष्यति। अहं पटवारिणम् आदिशामि अद्यैव।" ततो निकटस्थ-आह्वातारं प्राह—"दामोदर, त्वं पटवारिणः पार्श्वे प्रयाहि तं चादिश सपरिमापनश्रृङ्खलं समस्तपत्रैश्च समं प्रभाते दशवादनसमये धनीरामसदने समायातुम्। दामोदरः—"यथाज्ञापयन्ति भवन्तः"।

अपरेऽह्नि पटवारिकानूनगोमहोदयौ उभयसहोदरयोः क्षेत्राणि परिमातुं प्रारेभाते। कानूनगोमहोदयः धनीरामपक्षं पटवारिकश्च देवीरामपक्षं जग्राह। भास्करः एककः स्वकिरणैः सकलं जगत् परिमाप्यास्ताचलोन्मुखोऽदृश्यत परं तयोः क्षेत्रपरिमापनं समाप्तिं नायात्। कुतूहलिनः सायंकालिकगोरम्भणं निशम्य धेनुदोहनविलम्बमनुभवन्तः स्वगृहाणि निवर्तितुं प्रारेभिरे। स्फुटितपयोविलोडनपरिश्रम इव राजस्वकर्मचारिणोः परिश्रमः फलदो नासिध्यत्। धनीरामदेवीरामौ मोघमनोरथौ शिथिलपादौ गृहं प्राचलताम्। कानूनगोमहोदयः पथि व्रजन् (मनसि) 'धूर्तोऽयं पटवारिकः। एतेन मेऽनादरोऽकारि। एतं पाठं पाठयिष्यामि। मासाभ्यन्तरे एषोऽन्यकूपस्यैव जलं पास्यति'।

नीचे उतार दिया। फल धरती पर गिर गये। इतने में अंजना-वंदना भी वहां आ गईं। उनके केशाकेशि, दंडादंडि, मुष्टीमुष्टि वाले झगड़े को देखकर तमाशा देखने के लिये बहुत सारे लोग वहां इकट्ठे हो गये। उसी समय एक बूढा हाथ में कमण्डलु लिये स्नान करने के लिये बोली को जाता हुआ उन को बोला—"आप दोनों गोबिन्द के नाम को क्यों कलंकित कर रहे हो। फल आधे आधे बांट कर क्यों नहीं ले लेते'। धनीराम—'परन्तु सुवर्णपादप मेरी सीमा में है उस का फल लेने में क्या अधिकार है'। देवी राम—यह पेड़ मेरे खेत की सीमा में है धनीराम की सीमा में नहीं। मैं राजस्व विभाग से निर्णय लूंगा'। बूढ़ा (मन में) 'विनाशकाल में बुद्धि विपरीत हो जाती है'। (प्रकट) 'आप दोनों राजस्व विभाग के अधिकारियों को हलवा खिलाओ'। ऐसा कह कर अपने रास्ते चला गया।

दूसरे दिन देवीराम राजस्वरिकार्ड रखने वाले पटवारी के पास जा कर बोला—'मेरा एक काम है? वह नीची गर्दन वाला ही 'इस समय मैं कार्यव्यस्त हूं। आप कल आइये' देवीराम ने बगल से एक सेर भर बादाम निकाल कर उसके आगे रख दिये। तब वह ऊंचा सिर करके बोला—'आप का सुवर्णपादप का झगड़ा अभी शान्त न हुआ है'? देवीराम—'नहीं, मैं पैमायश करवाना चाहता हूं। यदि आप मेरे पक्ष में मत देंगे तो मैं आप को पांच सौ रुपया दे दूंगा'। पटवारी—(संख्यापट को निकाल कर) "खसरा नं० 540 आप का है और 541 धनीराम का है। सुवर्णपादप मेंड पर है। मैं आप के पक्ष में मत बनाने का प्रयत्न करूंगा।

उसी दिन धनीराम भी ऊपर के अधिकारी कानूनगो के पास जा कर बादाम की भेंट देकर बोला—'आप यह भेंट स्वीकार करें और मेरा काम बनाएं'। उसने एक बादाम को तर्जनी—अंगूठे से दबा कर गिरी को मुंह में डाला और उसकी स्वादिष्टता को प्रकट करता हुआ बोला—"क्या सुवर्ण—पादप का झगड़ा'? धनीराम—'इस कलह की आग आप के सहयोगरूपी पानी से ही शान्त होगी। यदि आप जरेब मेरे पक्ष में डालेंगे तो मैं आप को एक हजार रुपया दूंगा'। कानूनगो—'यह ऐसा ही होगा'।

मैं आज ही पटवारी को आदेश भेजता हूं। तब पास बैठे चौकीदार को बोला—'दामोदर, तुम पटवारी के पास जाकर उस को कहो कि वह कल दस बजे जरेब और सारे रिकार्ड के साथ धनीराम के घर में आ जाए'। दामोदर—'जैसे आप की आज्ञा है'।

अग्रिमदिवसे देवीरामः पटवारिकमुपगम्य प्राह—"भवद्भिर् महत् प्रयतितं परं जले यष्टिप्रहारवत् विफलः प्रयत्नः। अनुमिनोमि, मेऽग्रजेन कानूनगोमहोदयः पूर्वमेवात्मसात्कृतः। साम्प्रतं भवन्तो मे मार्गदर्शनं कुर्वन्तु"। असौ प्राह—"भवान् न्यायालये दिवानीनामाभियोगं प्रचालयतु। निर्णयो- भवत्पक्षगः स्थास्यति। अहं भवत्क्षेत्रप्रतिलिपिं प्रददामि। वाक्कीलं प्रदर्शयतु। स समस्तं साधयिष्यति"। देवीरामः—'कियत्कालेन निर्णयः समक्षमायास्यति"? पटवारिकः—"अनुमानतो वर्षद्वयेन"।

गेहायातं देवीरामं वन्दनाऽपृच्छत्- पटवारिकेण किमुक्तम्"? देवीरामः—"असौ न्यायालये अभियोगार्थं प्रेरयते'। वन्दना—"एतद्विषये भवन्तः किं चिन्तयन्ति"? देवीरामः—"भ्रातृकलहो न मे रोचते"। वन्दना—"परं यदि एतत्काले अञ्जनायै पाठो न पाठितस्तदैतौ नौ दुर्बलौ विज्ञाय पीडयिष्यतः। शीर्षे उलूखलप्रक्षिप्ते मुसलेभ्यः का भीतिः। अभियोग आश्रणीय एव। श्वः उपमण्डले तर्कज्ञोत्कृष्टवाक्कीलेन परामर्शं विदधातु भवान्। यतोहि अभियोगविजयः वाक्कीलनिर्भरः।

परदिवसे देवीरामः उपमण्डले प्रभुरामवाक्कीलमुपगम्य प्राह—'मम सुवर्णपादपे मेऽग्रजः स्वाधिकारं ज्ञापयति। अहं न्यायालयमाशिश्रियिषामि। भवन्तो मे पक्षं प्रस्तुवन्तु। एतानि सम्बद्धपत्राणि"। प्रभुरामः—(पत्राणि निरीक्ष्य) आं भवत्पक्षस्तर्कसंगतः। निर्णयो भवत्पक्षमाश्रयिष्यति। शुल्कं द्विसहस्रमादास्यामि"। देवीरामः—"निर्णयश्चेन्मे पक्षगः, एतावदेव प्रदास्यामि"। प्रभुरामः "वयं न ठेककीयाः। प्रयत्नः विधास्यते, फलं भवद् भाग्याधीनम्। एकसहस्रं पूर्वमादास्यामि। सहस्रञ्च पश्चात्। देवीरामः—(एकसहस्रं प्रदाय) "तिथेर्निर्धारणं कदा भविष्यति"? प्रभुरामः—"अहं सूचयिष्यामि। भवान् सदनसरणिमाश्रयतु"।

अग्रिमप्रभाते आकारणापत्रहरः साह्वानपत्रः धनीरामसदनं गवेषयन् समस्तिपुरं प्राप्तः तमपृच्छत्—"किं भवान् गोविन्दात्मजो धनीरामः"? धनीरामः—"आम्, अहमेव धनीरामः"। ततोऽसौ पिटकात् पत्रं निष्कास्य धनीरामाय प्रदाय प्रतिलिप्यां तद्धस्ताक्षराण्यादाय निर्जगाम।

आह्वानपत्रकरो[1] धनीरामः पाकशालास्थामञ्जनां प्राह—"अञ्जने,

1. आह्वानपत्रं करे यस्य सः।

दूसरे दिन पटवारी और कानूनगो ने दोनों भाइयों के खेतों को मापना प्रारंभ कर दिया। कानूनगो ने घनीराम के और पटवारी ने देवीराम के पक्ष को लिया। सूर्य अकेला अपनी किरणों से सारे संसार को माप कर अस्ताचल को चल पड़ा परन्तु वह दोनों कर्मचारी खेतों की पैमायस को समाप्त न कर पाये। तमाशा देखने वाले सायंकाल में गौओं के रंभाने की आवाज सुनकर उन के दोहन में देर को समझते हुए अपने अपने घरों को लौटने लग पड़े। फटे दूध को छोलने के परिश्रम के समान राजस्वकर्मचारियों का प्रयास सफल न हुआ। घनीराम-देवीराम भी निष्फल मनोरथ वाले ढीले पैरों से घर चले गये। रास्ते में जाता हुआ कानूनगो (मन में) 'यह पटवारी धूर्त है। इस ने मेरा अनादर किया है। इसे मैं सबक सिखाऊंगा। अगले महीने यह दूसरे कुएं का ही जल पीयेगा'।

अगले दिन देवीराम पटवारी के पास जाकर बोला—'आप ने बहुत कोशिस की परन्तु जल में लाठी के प्रहार की तरह प्रयास सफल न हुआ। मैं समझता हूं मेरे बड़े भाई ने कानूनगो को पहले ही अपना बना लिया था। आप अब मेरा मार्गदर्शन करें'। वह बोला 'आप न्यायालय में दिवानी दावा कर दो। निर्णय आप के पक्ष में रहेगा। मैं आप के खेत का पर्चा दे देता हूं। वकील को दिखाओ। वह सब ठीक कर देगा'। देवीराम—'निर्णय के लिये कितना समय लगेगा'? पटवारी—'अनुमान से दो वर्ष'।

घर आए देवीराम को वन्दना ने पूछा—'पटवारी ने क्या कहा है'। देवीराम—'वह न्यायालय में दावा करने को कहता है'। वन्दना—'फिर इस बारे में आप क्या सोचते हैं'। देवीराम—'भाई से झगड़ा मुझे अच्छा न लगता है'। वन्दना—'पर यदि इस समय अंजना को पाठ न सिखाया तो यह दोनों हमें दुर्बल जान कर तंग करेंगे। जब सिर ऊखल में दे दिया तो फिर मुसलों से क्या डर। दावा तो करना ही चाहिये। आप कल तहसील में किसी तर्क के ज्ञाता उत्कृष्ट वकील से बात करें। अभियोग में विजय वकील पर ही निर्भर होती है।'

अगले दिन देवीराम तहसील में जा कर प्रभुराम वकील को बोला—'मेरे सुवर्ण पेड़ पर मेरा बड़ा भाई अपना अधिकार जताता है। मैं न्यायालय की शरण लेना चाहता हूं। आप मेरा पक्ष प्रस्तुत करें। यह संबंधित कागज पत्र हैं'। प्रभूराम (पत्रों को देख कर) 'हां आप का पक्ष तर्कसंगत है। निर्णय आप के हक में जायगा। फीस दो हजार होगी'। देवीराम—'यदि निर्णय मेरे हक में होगा तो इतना ही दे दूंगा'। प्रभुराम—'हम ठेके पर काम न करते हैं। प्रयत्न किया जायगा, फल आप के भाग्याधीन। हजार पहले ले लूंगा आधा बाद में।

देवीरामेणाभियुक्तोऽहं सुवर्णपादपे पूर्णाधिकारमाप्तुम् । एतन्मे पाणिस्थ-माकारणपत्रम्[1]" । अञ्जना—(सविस्मयम्) "एतत्सकलं वन्दनानाटकम् । आवामर्धभागं स्वीकुर्वः । एतावेव एकाधिकारं कामयेते । भवन्तः मा भवन्तु विकलाः । अन्यायवारणाय कण्टकाकीर्णमार्गमप्याश्रयन्ति लोकाः । भूखण्ड-प्रतिलिपिं मापनरेखाचित्रं च भवन्तो धारयन्ति । भोजनं प्रस्तुतं वर्तते । उपभुज्य उपमण्डले केनचिद् वाक्कीलेन परामर्शं कुर्वन्तु ।

धनीरामः उपमण्डलं प्राप्य आज्ञारामवाक्कीलमभियोगपत्रं भूखण्ड-सम्बद्धपत्राणि च प्रादर्शयत् । आज्ञारामः— (पत्राणि निरीक्ष्य) "एतस्मिन्नभियोगे न बलम् । अतः निरस्ततां प्रयास्यति । मम शुल्कं त्रिसहस्रं वर्तते । अद्य भवानर्धं प्रददातु अर्धं च पश्चात् । धनीरामः सार्धसहस्रं तस्मै प्रदाय शिथिलपादो गृहं प्राप्तः रुग्णो यथा खट्वायां लुलोठ । अञ्जना गोवंशस्य मध्यकालीनसलिलसेवामनु प्रतिनिवृत्ता भर्तारमुदासीनं निरीक्ष्य प्राह—"कृतवाक्कीलसम्पर्काः भवन्तः ? विरक्ताः कथम्" ? धनीरामः—"सहस्त्रत्रयमभियोगशुल्कं निर्धारितम् । अर्धं मयाऽदायि । अर्धं पश्चात् प्रदेयम् । मया देवीरामं सुवर्णपादपादवतार्य व्यर्थमेव कलहः उपार्जितः । साम्प्रतं न जाने कदा निर्णयः समक्षमायास्यति" । अञ्जना—"भवन्तः मुधैव[2] शिथिमानसाः[3] सञ्जायन्ते । वन्दना चिरादुन्नतपादाऽवालोकयत । कलहोऽनिवार्यं आसीत् । सुवर्णपादपो मार्गे नायास्यत्, अपरः कश्चित् प्रसङ्ग उदैष्यत् । श्रीमन्तः पुरुषोपाधिधारिणः । स्वल्पं साहसमपि आश्रयन्तु ।

जनवरी मासस्यषोडशदिवसे उभौ सहोदरौ पृथक् पृथङ्मार्गेण न्यायालय-माप्तौ सकलं दिनं जृम्भामाददानौ आह्वानं प्रत्यैक्षेताम् । अपराह्ले त्रिवादनकाले आह्वानकरः—"देवीरामः प्रतिकूलं धनीरामः ३" । ध्वनिमिमं निशम्य सुप्तोत्थितौ यथा धक् धक् कुर्वत् हृदयं संस्तभ्य वाक्कीलमुखं भिक्षुकवन्निरीक्ष-माणौ विपत्सागरं यथा न्यायालयं प्रविविशतुः । वाक्कीलौ प्रतिनिधित्वपत्रे प्रददतुः । वाचक उभयोः पत्राणि सम्यङ्निरीक्ष्य धनीरामायाभियोगपत्रं समर्प्य तदुत्तरार्थं दिसम्बरमासस्य दशमदिवसमलेखयत् ।

---

1. पाणिस्थं—करधृतम् ।
2. मुधैव—व्यर्थमेव ।
3. शिथिलमानसाः—शिथिलं मानसं येषां ते शिथिलमानसाः ।

देवीराम—(एक हजार देकर) 'तिथि का निश्चय कब होगा' ?

प्रभुराम—'मैं सूचित कर दूंगा। आप घर चले जाओ'।

अगले महीने प्यादा समन लेकर घनीराम का घर पूछता हुआ पहुंच गया। उसने पूछा—'क्या आप गोविन्द के पुत्र घनीराम हैं' ? घनीराम—'हां मैं घनीराम ही हूं'। तब उसने टोकरी से समन निकाल कर घनीराम को दे दिया और दूसरी कापी पर हस्ताक्षर करवा कर चला गया।

समन हाथ में लिये घनीराम रसोईघर में बैठी अंजना को बोला—'अंजना, देवी राम ने सुवर्णपादप पर अपना पूर्णाधिकार प्राप्त करने के लिय मुझ पर दावा कर दिया है। यह समन मेरे हाथ में है' अंजना (अचम्भे में) 'यह सब वन्दना का ही नाटक है। हम आधा भाग मानते हैं। यही दोनों अपना एकाधिकार जताते हैं आप घबराएं नहीं। अन्याय दूर करने के लिये लोग कांटों भरे रास्ते पर भी चल लेते हैं। पर्चा और अक्स आपके पास हैं भोजन तैयार है। खाकर जाओ और तहसील में किसी बकील से सलाह कर लो'।

घनीराम ने तहसील में जा कर आज्ञाराम बकील को समन और भूखंड से संबंधित पत्र दिखा दिये। आज्ञाराम (पत्र देख कर) 'इस अभियोग में कुछ भी ताकत नहीं है। यह खारिज हो जायगा। मेरी फीस तीन हजार है। आधा आज दे दो, आधा बाद में दे देना।

घनीराम डेढ़ हजार उसे देकर शिथिल पैरों से घर आया और रोगी के समान खाट पर लेट गया। गौओ-बैलों को दोपहर का पानी पिला कर लौटी अंजना ने पति को उदास देख कर कहा—"क्या बकील से बात हो गई ? उदास क्यों हो'। घनीराम—'अभियोग की फीस तीन हज़ार निश्चित हुई है। आधी मैंने दे दी। आधी बाद में देनी होगी। मैंने देवीराम को सुवर्णपादप से उतार कर व्यर्थ में ही झगड़ा मोल ले लिया। अब पता नही निर्णय में कितनी देर लगेगी'। अंजना—'आप व्यर्थ में ही दिल छोड़ बैठते हैं। वन्दना बड़ी देर से ऊंचे पैर घूम रही थी। झगड़ा तो होना ही था। सुवर्णपादप रास्ते में न आता कोई और प्रसंग बन जाता। आप पुरुष हैं, कुछ हौंसला भी रखा करो'।

सोलह जनवरी को दोनों भाई न्यायालय में अलग अलग रास्ते से पहुंच गये और दिन भर जंभाइयां लेते हुए अपनी आवाज की प्रतीक्षा करने लगे। दोपहर बाद तीन बजे आवाज देने वाले ने पुकारा—'देवीराम प्रतिकूल घनी राम ३' आवाज को सुन कर सोये से उठे जैसे धक् धक् करते अपने हृदय को थाम कर बकील के मुखड़े को भिखारी के समान देखते हुए विपत्ति के समुद्र में जैसे न्यायालय में प्रविष्ट हो गये। वकीलों ने अपने अपने बकालतनामे दे

ग्रीष्मवर्षाशरत्प्रभृतिरज्जुसमाकृष्टः दिसम्बरमासोऽपि पदं दधार । एतद्दशमदिवसे उभौ सोदर्यौ उपमण्डलमाप्तौ वाक्कीलकार्यालयोपस्थितिमदर्शयताम् । तद्दिने न्यायाधीशं प्रतीक्षमाणाः अभियोज्याभियोक्तारः क्लान्ततां प्रयाता इतस्ततो भ्राम्यन्त आकारणाकरं पुनः पुनरपृच्छन्—"किमद्य न्यायाधीशो नागमिष्यति" ? असावपि स्वपदमहत्त्वं प्रदर्शयन् "प्रतीक्षन्ताम्, अधुनैवागमिष्यति" इत्यवदत् । मध्याह्नेऽतीते वाचकः वाक्कीलान् प्राह—"न्यायाधीशमहोदयोऽद्यावकाशपरः । अग्रिमतिथौः श्रोतुं स्वपक्षान् समाह्वयन्तु । धनीराम-देवीरामाभ्यामग्रिवर्षस्य मईमासैकादशदिवसः उदघोष्यत ।

मईमासैकादशदिवसोऽपि कलक्रमेणानवरुद्धगतिः समाययौ । तद्दिने सहोदरौ द्वितीयवारं न्यायालयमपश्यताम् । देवीरामः प्रभुरागकार्यालयमाप्तस्तं पप्रच्छ—"किमद्योत्तरं प्रस्तोष्यते प्रतिद्वन्दिना" ? प्रभुरामः—"अद्य तु केवलं तिथिपरिवर्तनमेवाशास्यते" । देवीरामः—"एवं तु बहुवर्षाणि व्यग्रतालिङ्गितः स्थास्यामि" । प्रभुरामः—"न्यायालयनियमा आगन्तुकानां मनोवेदनां न परिचिन्वन्ति । भवानेतत्पुस्तकैः सह न्यायालयमायातु" । देवीरामः—(मनसि) "अहं कृषिपण्डितगोविन्दात्मजः एतत्पुस्तकानि कथं वक्ष्यामि । एतल्लज्जास्पदम् । नास्मि गर्दभो भारंवोढुम् । परं 'नेति' प्रत्युक्तोऽयं कदाचिद् रुष्टः स्यात् । अतः किञ्चिन् मिषं प्रकुर्वे" । (प्रकाशं कर्गलगेकं प्रदर्श्य) श्रीमन्तः, ममैकेन प्रतिवासिना नगरवासिसम्बन्धिने सन्देशोऽयं प्रहितस्तत्र जिगमिषामि" । प्रभुरामः—"प्रयातु भवान्, अन्यः कश्चित् प्रणेष्यति" ।

अद्यतनतिथौ न्यालालयमाप्ताः सकलजनाः वर्षर्तौ बीजवपनोद्यताः कृषकाः मेघमण्डलमिव न्यायाधीशं निर्निमेषनयनाः प्रत्यैक्षन्त । घटिकासूच्यौ शनैः शनैरेकादशवादनम् असूचयताम् । विस्रस्तधैर्याः जनाः गवाक्षात् पुनः पुनर्वेत्रासनं शून्यं निरीक्षमाणास्तद्दिनफलमपि नैष्यियुतम् आकलयन्तः शिथिलपादाः शुष्कमुखा इतस्ततो जलपानेप्सवो अधावन् । तद्दिने प्रातरेव न्यायाधीशमहोदयस्य मित्र—मण्डलं समाजगाम । वयस्यप्रेरितोऽसौ अवकाशमादाय भ्रमणमनाः निर्जगाम । समित्रमण्डलं लघुवाहनेन प्रयान्तं न्यायाधीशं जनाः अकृतसदनप्रबन्धं विदेशप्रयाणपरं पितरं पुत्रा यथा साश्रुनयना अवैक्षन्त । न्यायाधीशसमक्षं परस्परं

---

1. तिथयो द्वयोः—पुंसि स्त्रियां च ।

दिये। रीडर ने दोनों के पत्र अच्छी तरह देख कर घनीराम को अभियोगपत्र दिया और 10 दिसम्बर का दिन उत्तर के लिये लिखा दिया।

ग्रीष्म, वर्षा, शरत् आदि ऋतुओं की रस्सी से खींचा हुआ दिसम्बर महीना आ गया। इस के दसवें दिन दोनों भाई तहसील में पहले अपने-अपने वकील के पास गये। उस दिन अभियोज्य, अभियोक्ता जज की प्रतीक्षा में थके हुए इधर-उधर घूमते हुए आवाज देने वाले को बार-बार पूछ रहे थे—"क्या आज जज साहब नहीं आएंगे' ? वह भी अपने पद का महत्त्व दिखाता हुआ—'इन्तजार करो अभी आ जाएंगे'। दोपहर के बाद रीडर ने वकीलों को कहा—'जज साहब आज छुट्टी पर हैं। अगली तिथियां सुनने के लिये अपने-अपने पक्ष को बुला लो'। घनीराम—देवीराम को अगले वर्ष मई का ग्यारहवां दिन नोट करवाया गया।

ग्यारह मई का दिन भी कालक्रम से बे रोक-टोक आ गया। उस दिन दोनों भाई तीसरी बार न्यायालय में पहुंचे। देवीराम ने प्रभुराम के कार्यालय में जाकर उससे पूछा 'क्या प्रतिवादी की ओर से आज उत्तर मिल जायेगा'? प्रभुराम—'नहीं आज तो तिथि बदलने की ही संभावना है'। देवीराम—'इस प्रकार तो कई वर्ष व्याकुलता में ही बिताने होंगे'। प्रभुराम—'न्यायालय के नियम आने वालों की मानसिक पीड़ा को न पहचानते हैं। आप यह पुस्तकें कोर्ट में ले आइये'। देवीराम—(मन में) मैं कृषिपण्डित गोविन्द का पुत्र हूं। इन पुस्तकों को कैसे उठाऊंगा। यह तो लज्जा की बात होगी। मैं कोई भार उठाने वाला गधा न हूं। परन्तु इन्कार करने पर कहीं यह नाराज न हो जाए। कोई बहाना बनाता हूं'। (एक कागज़ को दिखाकर प्रकट) श्रीमान जी, मेरे एक पड़ोसी ने नगर के एक सम्बन्धी के लिये यह सन्देश भेजा है। वहां जाना चाहता हूं। प्रभुराम - "आप जाइये, कोई और ले जायेगा"।

आज की तिथि पर कोर्ट में आए सभी लोग वर्षा ऋतु में बीज बोने को तैयार किसान मेघ मण्डल को जैसे जज की बिना पलक गिराये प्रतीक्षा कर रहे थे। घड़ी की सूइयां धीरे-धीरे ग्यारह पर पहुंच गई। लोग धीरज खो कर खिड़की से बार-बार कुर्सी को सूना देख कर उस दिन को भी फलहीन समझते हुए शिथिल पैरों वाले, सूखे मुखड़े वाले पानी पीने की इच्छा से इधर-उधर दौड़ रहे थे। उस दिन सवेरे ही जज महोदय के कुछ मित्र आ गये। मित्रों की प्रेरणा से वह घूमने की इच्छा से अवकाश ले कर चला गया। मित्रमण्डल के साथ कार में जाते हुए जज को लोग, घर का प्रबन्ध किये बिना विदेश जाने को तैयार पिता को पुत्र जैसे आंखों में पानी भर कर देख रहे थे जज के सामने आपस में वैरी और बाहर घनिष्ट मित्रता दिखाते हुए वकील उस दिन

वैरिणः परं वहिर् घनिष्टमित्रतां धारयन्तस्तद्दिनमस्तिष्कभारोन्मुक्ताः प्रसन्न-मानसाः वाक्कीलाः मनोऽनुकूलवार्ताः भाषमाणाः स्वाश्रमान् प्रययुः । वाचकेन भ्रातृभ्यां दिसम्बरषोडशतमदिवसोऽश्राव्यत ।

अथोभौ भ्रातरौ शिथिलचरणौ खिन्नमानसौ स्वस्वगृहं प्रविविशतुः । वन्दनादेवीरामाय पयः उपाहरन्ती पप्रच्छ—"अद्यतनं किं फलम्"? देवीरामः—न कोऽपि लाभः । अग्रिमदिनाङ्कोऽपि पक्षयोरवमतिथिरिव शून्यपरिणामः प्रयास्यति । यतोवाचकेन परिवर्तिततिथयो ना धकृतदिनाङ्काः गण्यन्ते । दिसम्बर-षोडशतमो दिवसः अद्यत एवाग्रिमतिथिं प्रतीक्षमाणो ऽवतिष्ठते । वन्दने, न्यायालयकद्वनुभवं श्रोतुं श्रोत्रे सुसज्जय । दयनीयदशा लोकानाम् । तत्र यष्टि-बलेन प्रचलन्तो वृद्धाः, अर्भकानङ्के धारयन्त्यो युवतयः, शिक्षिताः, अशिक्षिताः, अधनाः, सधनाः सकलविधलोका न्यायार्थम् आव्रजन्ति । केचिदासुतेन मक्की-ककरपट्टिकाः भक्षयन्तः, अपरे जलबलेनैव शुष्कग्रासान् गलान्तः प्रकुर्वन्तः अवलो-क्यन्ते । अद्यैका विचित्रघटना नयनयोरापतत् । गर्भिण्येका न्यायालयसदने एव प्रसवपीडामन्वभवत् । अपरमहिलास्तां सन्निहितचिकित्सालयं प्रणीय तत्सम्मान-मरक्षन् । वधिरो नः महाराजाधिराजो न न्यायालयव्यवस्थां द्रुतगतिं लघुव्ययां च प्रकुरुते । अद्य न्यायाधीशमहोदये निर्निमित्तं निर्गते मार्मिकपीडायुताः सकल-जनाः भारवत्पादैर् गृहाणि प्रत्यावर्तन्त । वन्दने, अहमपि लूलाकीट[1] इव स्वयं जाले निबद्धः । तप्तग्रासो मुखे कृतो यथा न निगलितुं न चोद्गलितुं शक्यते, सैव मे दशा वर्तते । कश्चित्सज्जनश्चेन् न्यायालयं न प्रधावेत्" । वन्दना—"परं भवान् ज्येष्ठसहोदरेण जङ्घामवलम्ब्य सुवर्णपादपाधः कथमवतारितः । भवतां चेद् कश्चिदङ्गमङ्गोऽभविष्यत्तदाहमापदि-अपतिष्यम् । एनयोः का हानि-रासीत् । भवन्तो धैर्यमाश्रयन्तु । अपरैर्निर्निमित्तं सन्तापिताः समस्तलोका न्यायमाप्तुं न्यायालयं प्रव्रजन्ति । साहसमेव पुरुषपरिचयः । भवतो मनोदौर्बल्यं न मे बुद्धिगम्यम्" । एवमुक्त्वा धेनुं दोग्धुं गोष्ठसरणिं समाश्रयत् ।

न्यायालयं प्रधावतोः सहोदरयोः सप्तसमाः[2] व्यत्यायन् ? वर्षंतु वारिद-पयोधारा शनैः शनैर्यथा तयोर् विरोधोऽपि मन्दतां भेजे । धनीरामस्य सुतद्वयं

---

1. लूता लूतकापि । 'लूतास्त्रीतन्तुवायोर्णनाभमर्कटकाः समाः । 'मकड़ी' इत्याख्या । (इत्यमरः)
2. समाः—वर्षाणि ।

के दिमाग के भार से छूटे प्रसन्न मन वाले मन के अनुकूल गप्पें हांकते हुए घरों को चले गये। रीडर ने दोनों भाइयों को दिसम्बर की सोलह तारीख लिखवा दी।

आज दोनों भाई खिन्न मनवाले ढीले पैरों से अपने-अपने घर में प्रविष्ट हुए। वन्दना ने दूध का गिलास हाथ में लिये पति से पूछा — 'आज का क्या परिणाम रहा'? देवीराम—'कोई लाभ नहीं'। अगली तिथि भी पक्षों की गलित तिथि के समान बिना परिणाम ही जाएगी क्योंकि रीडर से दी गई तारीखें अविकृत न गिनी जाती हैं। सोलह दिसम्बर का दिन भी आज से ही अगले दिन की प्रतीक्षा में है। वन्दना, न्यायालय के कड़वे अनुभव को सुनने के लिये अपने कानों को तैयार कर। लोगों की दशा दया के योग्य है। वहां लाठी के सहारे चलने वाले बूढे, बच्चों को गोदी में उठाए युवतियां, पढ़े-लिखे, अनपढ़, धनी निर्धन सभी लोग न्याय के लिये आते है। कई अचार से मक्की की रोटियां खाते हुए दूसरे पानी के सहारे से ही सूखे ग्रासों को गले के नीचे करते हुए दिखाई देते हैं। हमारे महाराजाधिराज बहरे हैं जो न्यायालय की व्यवस्था को द्रुतगति और कम व्यय वाली न बनाते हैं। आज एक विचित्र घटना देखने में आई। एक गर्भिणी न्यायालय भवन में ही प्रसव-पीड़ा का अनुभव करने लगी। दूसरी महिलाओं ने चिकित्सालय में पहुंचा कर उस की लाज बचाई। आज जज साहब के बिना निमित्त ही चले जाने पर मार्मिक पीड़ा का अनुभव करते हुए सब लोग भारी पैरों से अपने घरों को लौट गये। वन्दना, मैं भी मकड़ी के समान स्वयं ही जाल में फंस गया। मुंह में डाला गर्म ग्रास जैसे न निगला जाता है और न उगला जाता है, वही दशा आज मेरी है। कोई भला हो वह न्यायालय में न जाए। वन्दना - 'परन्तु आप को बड़े भाई ने टांग से पकड़ कर सुवर्ण-पादप से नीचे क्यों उतारा था। अगर आप का कोई अंग टूट जाता तो आपत्ति में मैं गिरती, इन दोनों का क्या जाता। आप धीरज करो, दूसरों से बिना निमित्त के लताड़े हुए लोग न्याय पाने के लिये कोर्ट में जाते हैं। पुरुषों का परिचय हौंसले में ही है। आपकी मनकी दुर्बलता मेरी समझ में न आती है। ऐसा कह कर गौ दोहने के लिये गोष्ठ को चली गई।

कोर्ट को दौड़ते हुए दोनों भाइयों के सात साल बीत गये। बरसात में बादल की जलधारा के समान उन का विरोध भी अब धीरे धीरे मन्द पड़ने लगा था। धनीराम के दो लड़के थे, देवीराम का एक लड़का और एक लड़की एक ही आंगण में खेलते थे और एक ही पाठशाला में पढ़ते थे। कोर्ट में अब

देवीरामस्यैकस्तनयः एका च कन्या एकस्मिन्नेव प्राङ्गणे अक्रीडन्। एकस्मिन्नेव च विद्यालये पाठान् पेठुः। न्यायालये साम्प्रतं तृतीयो न्यायाधीशः। उभौ भ्रातरौ पञ्चदशवारं न्यायालयमवालोकेताम्। विदुषा न्यायाधीशेन निर्णयं श्रावयितुम् एप्रिलमासस्य पञ्चविंशतितमो दिवस उद्घोषितः। तद्दिने अञ्जना वन्दना च प्रातरेवोत्थाय स्नात्वा मन्दिरे प्रभोः पुरतः विजयं कामयमाने प्रस्थानोद्यतस्वामिनौ शर्करामिश्रितदधि अभोजयताम्।

न्यायाधीशे वेत्रासनोपविष्टे आकारणाकरः तद्दिने सर्वप्रथमं तयोरेव नामोच्चचार। वाक्कीलाभ्यां पूर्वभाषितस्य सङ्क्षेपतः पुनरावृत्तौ कृतायां मनीषी न्यायाधीशो निर्णयमश्रावयत् — "चत्वारिंशदधिकपञ्चशतसंख्याको भूखण्डो देवीरामस्य। एकचत्वारिंशदधिकपञ्चशतभूखण्डाधिपतिर् धनीरामः। सन्धितले उभयोः सुवर्णपादपः विराजते। साक्षिणः पृथक् पृथक् साक्षित्वं प्रददुः। तदधिकृत्याभियोक्तुरभियोज्यस्य वा पादपे एकाधिकारो न न्यायसङ्गतः। अतोऽहमुद्घोषयामि उभयोः समानाधिकारम्। उभौ फलानि अर्धार्धं विभज्य नेतुमर्हतः। अभियोगव्ययं स्वीयं स्वीयं वक्ष्यतः।

सुवर्णपादपे एकाधिकारं कामयमानौ सहोदरौ निर्णयं निशम्य किञ्चित् खिन्नमानसौ अपि तृतीयश्रेण्युत्तीर्णछात्रवत्—हृदयं प्रबोध्य कक्षाद् बहिः पदक्रमोद्यतौ निरीक्ष्योभयोर् वाक्कीलौ मध्याह्नं यावत्तौ प्रतीक्षितुमवदताम्। अर्थान्तकाशे प्रभुरामः देवीरामं प्राह— "निर्णयो भवत्पक्षगः, वर्धापनं भवते"। देवीरामः "ममानुकूलः कथम्? मान्यन्यायाधीशेनार्धं एव भागो मदर्थं, निरणायि", प्रभुरामः "अहो बन्धो, त्वमनभिज्ञस्तर्कशास्त्रस्य। मम युक्तिभिश्चेन् न्यायाधीशः प्रभावितो नाभविष्यत्, समग्रपादपो धनीरामाधिकारेऽगमिष्यत्। वस्तुतः इंग्लिशभाषापूर्णाधिकाराभावाद् भवान्मे युक्तिबलं बोद्धुं नापारयत्। एकसहस्रं मे शुल्कमवशिष्टम्। विजयपुरस्कारं भवान् स्वेच्छं प्रददातु।"

आज्ञारामः धनीरामं प्राह— "अवलोकितं त्वया मे युक्तिप्रभुत्वम्? मम वाग्धाराप्रभावितो न्यायाधीशः मस्तकधृतलेखनीकः कथं निर्णयार्थं चिरमध्यायत्। ततश्चविवशोऽस्मत्पक्षे निर्णयं प्रददौ। अहं मे ग्राहकपक्षेऽन्तर्मनसा युध्ये। सार्धसहस्रमवशिष्टं मे शुल्कं दीयतां विजयपुरस्काराश्चापि अपेक्ष्यते"। धनीरामः— (मनसि) वाक्प्रगल्भा एते विधिवक्तारो वाग्भिरेव जनान् सम्मोहयन्ति। एते मृत्युमुखपतितलोकानपि त्रायन्ते। एतत्परिश्रमो न सामान्यजनबुद्धिगम्यः"

तीसरा जज था। दोनो भाई पन्द्रह बार कोर्ट में गये। विद्वान जज ने निर्णय सुनाने के लिये एप्रिल की पन्द्रह तारीख निश्चित की। उस दिन अंजना-वंदना ने प्रातः काल उठ कर स्नान करके मंदिर में प्रभु के पास विजय की कामना करते हुए चलने को तैयार अपने पतियों को शक्कर मिलाकर दही पिलाया।

विद्वान जज के कुर्सी पर बैठ जाने पर आवाज लगाने वाले ने उस दिन उन दोनों भाइयों का ही पहले नाम बोला। वकीलों द्वारा पहले कहे की संक्षेप से पुनरावृत्ति करने पर जज महोदय ने इस प्रकार निर्णय सुनाया।—'खसरा नं० 540 देवीराम का और 541 धनीराम का। दोनों की मींड पर सुवर्णपादप है। गवाहों ने अलग-अलग ब्यान दिये हैं। उसके अनुसार अभियोक्ता या अभियोज्य का एकाधिकार न्यायसंगत न हैं। इस लिये में इस पर दोनों के समानाधिकार की घोषणा करता हूं। दोनों फलों को आधा आधा बांट सकते हैं। अभियोग का व्यय दोनों का अपना अपना होगा'।

सुवर्णपादप पर एकाधिकार चाहने वाले दोनों भाई निर्णय सुन कर खिन्न मन वाले तीसरे दर्जे में पास छात्र के समान दिल को समझा कर कमरे से बाहर आने लगे तो दोनों के वकीलों ने दोपहर तक उनका इन्तजार करने को कहा।

आधे अवकाश में प्रभुराम देवीराम को बोला—'फैसला आप के पक्ष में रहा, आप को बधाई हो'। देवीराम—'मेरे पक्ष में कैसे? जज ने तो मेरे लिये आधे भाग का ही निर्णय दिया'। प्रभुराम 'अरे भाई, आप को तर्कशास्त्र का ज्ञान न है। यदि मेरी युक्तियों से जजसाहब प्रभावित न होते तो सारा पेड़ धनीराम के अधिकार में चला जाता। वास्तव में इंग्लिश का ज्ञान न होने से आप मेरी युक्तिशक्ति को पहचान न पाये। एक हजार मेरी फीस बाकी है और विजय का पुरस्कार आप अपनी इच्छा से दे दो'।

आशाराम ने धनीराम को कहा—'देखा मेरी दलीलों का प्रभाव! मेरी वाग्धारा से प्रभावित होकर जज महोदय माथे पर कलम रख कर किस प्रकार निर्णय के लिये सोचते रहे और फैसला हमारे हक में दे दिया। मैं अपने ग्राहक के पक्ष में अन्तर्मन से लड़ता हूं। डेढ हजार मेरी फीस बाकी है और विजय पुरस्कार भी मिलना ही चाहिये'। धनीराम—(मन में) बोलने में चतुर यह वकील लोग वाणी से ही लोगों को वश में कर लेते हैं। यह मौत के मुंह में गये लोगों को भी छुड़ा कर लाते हैं। इनकी मेहनत को साधारण लोग क्या समझ

ततस्तस्मै द्विसहस्रं प्रदाय गृहसरणिस्थः सप्तवर्षाणां कष्टानि विचिन्तयन् देवीरामस्य सुवर्णपादपावतारणं स्वप्रमादं मन्यमान आत्मानं भृशं निनिन्द।

सदनागतं देवीरामं वन्दनाऽपृच्छत्—"श्रावयन्तु निर्णयम्। प्रतीक्षापरया मयाद्य महत्कष्टेन क्षणा अनायिषत"। देवीरामः— (रुद्धवाचा) "न्यायाधीशेन सुवर्णपादपे नौ समानभागनिर्णयोऽदायि"। वन्दना—"आस्तां तावत्। ज्येष्ठसहोदरेण जङ्घां सङ्गृह्य पादपावतारणदण्डः सप्तवर्षाणि भुक्तः। भविष्यति कदाप्येष एवंविधाचरणं नाचरिष्यति। भवन्तो मा भवन्तु विकलाः। जलमुष्णं वर्तते। अहं भवत्पादौ क्षालयामि। ततः सन्ध्यामुपास्य भोजनं गृह्णन्तु"। भुक्तिमनु देवीरामो वन्दनां प्राह—"वन्दने धनीरामो मेऽग्रजः। अहं तद्विरुद्धं न्यायालयं प्रधावितः। क्व कृतयुगलब्धजन्मानौ रामभरतौ क्व-चावां कलियुगीयौ। यद्यपि मे सोदर्येण मां सुवर्णपादपादवतार्य प्रमादोऽनुष्ठित-स्तथापि न्यायालयाश्रयणं नासीन्मे भ्रातृधर्मः। अद्य कलहानलप्रशमनक्षणाः। नैते पुनर् लप्स्यन्ते"। वन्दना—"न मे काप्यापत्तिः। भवन्तोऽग्रजं द्रष्टुमर्हन्ति"। ततो देवीरामो धनीरामसदनमुपजगाम। असौ सहोदरं समीक्ष्य प्रसन्नमनास्तं वक्षसाऽऽलिलिङ्ग। अञ्जना देवरं पयोऽपाययत्। उभौ विस्मृतवैरौ परप्रभाते सुवर्णपादपफलान्यवचेतुं निरणयताम्।

प्रातः उभौ सहोदरौ स्नात्वा गृहीतप्रातराशौ पिटकगोणिपाणी वाता-दफलान्याहर्तुं सुवर्णपादपमुपजग्मतुः। परं विटपी तु तयोः कलहानलताप तप्त इव शुष्कशाखः, पत्रफलविहीनः, क्षयरोगकृशतनुर् मानवो यथा स्थाणुः सन् भूमिपाताय शुभदिनं निध्यायन्नवतस्थे। धनीरामदेवीरामौ एतदवस्थं सुवर्ण-पादपं मरणासन्नं पितरं गोविन्दं यथा निरीक्ष्य दीर्घं निःश्वस्य हतभाग्याविव रिक्तकरौ गृहं प्रत्यावर्तेताम्।

**

सकते हैं'। फिर उसे दो हजार देकर घर के रास्ते में सात सालों के कष्टों को सोचता हुआ, देवीराम को सुवर्णपादप से उतारने में अपनी भूल को मानता हुआ अपने को कोसने लगा।

घर आए देवीराम को वन्दना ने पूछा—'निर्णय सुनाओ। इन्तजार में मैंने बड़े कष्ट से समय बिताया'। देवीराम (रुके स्वर में) जज साहब ने सुवर्णपादप पर हम दोनों के समान भाग का निर्णय दिया'। वन्दना—'कोई बात नहीं'। बड़े भाई ने टांग से पकड़कर पेड़ से उतारने का दण्ड सात साल भोगा। भविष्य में यह कभी ऐसा आचरण न करेगा। आप उदास मत होइये। पानी गर्म है, मैं आपके पैर धो देती हूं। फिर संध्या करके भोजन करो'। भोजन के बाद देवीराम ने वन्दना को कहा—'वन्दना, धनीराम मेरा बड़ा भाई है। मैं उसके विरुद्ध कोर्ट में चला गया। कहां कृतयुग में जन्म लेने वाले राम-भरत और कहां हम कलियुगी। यद्यपि मेरे भाई ने मुझे सुवर्णपादप से उतारने की भूल की थी तो भी न्यायालय में जाना मेरा भ्रातृधर्म न था। आज यह कलह की आग बुझ सकती है। फिर यह समय नहीं आएगा'। वन्दना—'मुझे कोई आपत्ति नहीं, आप बड़े भाई से मिल सकते हैं'। फिर देवीराम धनीराम के घर चला गया। उसने छोटे भाई को प्रसन्न मन से गले लगा लिया। अंजना ने देवर को दूध पिलाया। दोनों ने वैर-विरोध को भूलकर प्रातः काल सुवर्णपादप से फल तोड़कर लाने का विचार बनाया।

प्रातः काल दोनों भाइयों ने स्नान किया और अल्पाहार करके बोरियां और टोकरियां हाथ में लिये हुए बादाम तोड़ने के लिये सुवर्णपादप के पास चल पड़े। परन्तु पेड़ तो मानों उन दोनों की कलह की आग के ताप से तपा हुआ, सूखी टहनियों वाला, पत्र और फलों से हीन, क्षयरोग से कृश शरीर वाले मनुष्य के समान ठूंठ बना, धरती पर गिरने के लिये किसी शुभ दिन का ध्यान करता हुआ खड़ा था। धनीराम और देवीराम मृत्युशय्या पर लेटे पिता गोविन्द को जैसे इस अवस्था में पड़े सुवर्णपादप को देखकर लम्बी सांस लेकर, मानों जैसे उनके भाग फूट गये हों, खाली-हाथ घर को लौट आये।

★★

पुत्नामनरकः

हिमनगशीतलोपत्यकायां देवपुरग्रामे धर्मदत्तो नाम प्रख्यातश्रेष्ठी निवसति स्म। असौ द्विपञ्चाशद्वर्षीय एव श्वासकासरोगाक्रान्तः अम्बादत्तनामसुतं विलपन्तमुत्तराधिकारिणं विहाय परलोकं प्रययौ। अम्बादत्तः पूर्ववयसि वर्तमानोऽपि गृहप्रबन्धकुशलोऽल्पदिवसेष्वेव लोकेषु लब्धमानो मातुर् विद्योत्तमायाः भर्तृवियोगभारमलघयत्। तस्यानितानाम भार्या तदाज्ञानुवर्तिनी अधमर्णव्यवहारान्वितसमस्तकार्येषु तत्साहाय्यमाचरन्ती भर्तृमानसे प्रतिष्ठां लेभे। सा प्रथमप्रसवे बालां सुषुवे। अम्बादत्तः कन्यानामकरणोत्सवे लोकविस्मयकरमुक्तहस्तं व्ययितवित्तोऽपरेभ्यः प्रस्तुतशुभादर्शः परमानन्दं भेजे। पण्डिताः कन्यानाम 'अरुणेति' निरचिन्वन्। अम्बादत्तभगिनी रेणुकोपहासपरा तं प्राह—"आमोदाविष्करणे मर्यादितो भवतु भवान्। अन्यथाऽपरप्रसवेऽपि कन्यामुखमालोकितुं तत्परस्तिष्ठतु"। अम्बादत्तः "कन्याबालयो किमन्तरम्? भवती कन्यारूपे नोत्पन्ना? एवंविधसङ्कीर्णविचारेषु नार्यः कथं कूर्दन्त? नाहं भेदकरः कन्याबालयोः"।

अम्बादत्ततनयारुणा शुक्लपक्षे चन्द्रकलेव ववृधे। परिवारजना अहमहमिकया तामङ्के कर्तुमुत्का व्यतिष्ठन्त। सापि कलकेलिभिर् जनितकौतूहला सदनसुषमां समैधयत। अरुणायाः सार्धत्रिहायनपूर्तौ अनिता पुनर्भ्रूणधरा विरराज। प्रथमदिवसादेव कुलजना आशान्वितास्तद्गर्भात् पुत्रोत्पत्तये भगवन्तं प्रार्थयामासुः। विद्योत्तमाऽभीष्टपूर्तये क्षेत्रविख्यातभानुदत्तचेलकाभिमन्त्रितकृष्णोर्णासूत्रं तत्कट्यां निबबन्ध। अनितायाः पूरितवसुमासगर्भः जवनिकान्तर्गवहास्यपरपात्रमीक्षितुं[1] दर्शकानां यथा कुलजौत्सुक्यं क्षणं क्षणं वर्धयामास। नवममासैकादशदिवसे प्रसूतद्वितीयकन्याऽनितायास्तस्मिन् सदने भूयो भूयः समागच्छतो जामातुः श्वशुरालये यथा अर्घादरोऽस्तमयात् केवलं व्यवहारपूर्तये एव ते किङ्करेण यथा तया सहाभाषन्त। अम्बादत्तोदृढमानसोऽपि

---

1. जवनिका—तिरस्करिणी। 'प्रतिसीरा जवनिका स्यात्तिरस्करिणी च सा। (इत्यमरः)

पुन्नाम का नरक

हिमालय की ठण्डी तलहटी के देवपुर ग्राम में धर्मदत्त नाम का प्रसिद्ध सेठ रहता था। वह बावन वर्ष की आयु में ही श्वासकास रोग के कारण उत्तराधिकारी अम्बादत्त नाम के पुत्र को विलाप करता हुआ छोड़ कर स्वर्ग सिधार गया। अम्बादत्त ने अपनी छोटी आयु में ही थोड़े ही दिनों में घर का प्रबन्ध संभाल कर लोगों में मान पाया और माता विद्योत्तमा के पतिवियोग के भार को हल्का किया। उसकी आज्ञा का पालन करने वाली, कर्जदारों के व्यवहार सहित सब कामों में सहायता करने वाली पत्नी अनिता ने उसके मन में प्रतिष्ठा का पद पाया था। उसने पहले प्रसव में कन्या को जन्म दिया। अम्बादत्त ने कन्या के नामकरण उत्सव में लोगों के विस्मय के लिये खुले हाथ धन खर्च कर के, अपना आदर्श दिखाकर आनन्द प्राप्त किया। पंडितों ने कन्या का नाम 'अरुणा' रखा। अम्बादत्त की बहन रेणुका ने मजाक में उसको कहा— 'प्रसन्नता दिखाने में मर्यादा का उल्लंघन मत करो, नहीं तो दूसरी प्रसूति में भी कन्या का मुख देखने को तैयार रहो'। अम्बादत्त—'लड़की और लड़के में क्या अन्तर है। क्या आप कन्या के रूप में पैदा न हुई थीं? इस प्रकार के विचारों में नारियां कैसे कूद पड़ती हैं। मैं कन्या और बालक में कोई भेद न समझता हूं'।

अम्बादत्त की पुत्री अरुणा शुक्लपक्ष में चन्द्रमा के समान बढ़ने लगी। परिवार के लोग एक दूसरे से आगे होकर उसे गोद में लेने को उत्कंठित रहते थे। वह भी प्यारी खेलों से तमाशा दिखाती हुई घर की शोभा को बढ़ाती थी। साढ़े तीन वर्ष के बाद अरुणा फिर गर्भवती हो गई। कुल के लोग पहले दिन से ही आशा लगाए, उसके गर्भ से पुत्रोत्पत्ति के लिये भगवान से प्रार्थना करने लगे।

विद्योत्तमा ने अपनी इच्छा पूरी करने के लिये इलाके के प्रसिद्ध भानुदत्त नाम के तांत्रिक से अभिमंत्रित करवा कर काली ऊन का धागा उस की कमर में बांध दिया अनिता का आठ महीने का गर्भ, पर्दे के पीछे छिपे हंसोड़ पात्र को देखने के लिये दर्शकों की जैसे कुलजनों की उत्सुकता को पल पल बढ़ाने

रेणुकाकृतप्रतिरोध एतद्वारं मोदकवितरणसाहसं न लेभे। अनिता मनस्य-चिन्तयत् "कुटिलोऽयं समाजः भाविमातृशक्तये द्रुह्यति । आस्ताम्, उदारविचारधरभर्तृमानसे न किञ्चिदन्तरं पुत्रीपुत्रयोः। नाहं तस्योपालम्भ-भाजनम्। पत्युरामोदे मे मोदः। अन्ये गर्ते पतन्तु।

अम्बादत्तः – "अनिते, त्वं द्वितीयकन्याजन्महेतोर् मा क्लिश्येथाः। पुत्रः पितरौ न स्वर्गमारोहयति न च कन्या तौ नाकान्निपातयति। पुत्रः केवलं स्वकुलं भूषयति परं कन्योभयकुले। रामः केवलं रघुवंशं भूषयामास परं सीता श्वशुरकुलेन सह मिथिलाधिपतिवंशमप्यलञ्चकार । अद्य पुत्राचरितैः पदं पदं क्लिश्यमाना महान्तोऽपि अवनतमस्तका धूलिमवलिहन्ति। कन्याजन्मवैराग्य-वारिधौ मा निमज्जतु भवती"। परमनिता पत्या समाश्वासिताऽपि पुत्राभाव-भरेण शिथिलाङ्गयष्टिः सुतालङ्कृताङ्काः प्रतिवासियुवतीः समीक्ष्य स्वभाग्यं भृशं निनिन्द।

ग्रामान्तिकमन्दिरे श्रीमद्भागवतकथाप्रवचनं प्राचलत् । ग्रामवासिनः श्रद्धापूरितमानसास्तत्रागच्छन्। विद्योत्तमा पुत्रं प्राह—"भवान् क्षणं-क्षणं कार्य-व्यापृतस्तिष्ठति। अधमर्णव्यवहारादेवोन्मुक्तिर्न सञ्जायते। कदाचिद् धार्मिक-कार्येष्वपि रुचिमादधातु श्रीमद्भागवतकथाश्रवणेन न केवलं पुण्याप्तिरपि तु भाग्योदयोऽप्याशास्यते। श्रीमद्भागवते वासुदेवलीला विराजन्ते। स्यात्, एतेनैव भवान् पुत्रमुखनिरीक्षणसुखमालभेत। एता आज्याभिघारितघृतवर्तिकाः। एष पुष्पहारोऽयं च तण्डुलग्रन्थिः। कथावाचककण्ठनिवेशितहारः, समर्पित-तण्डुलग्रन्थिः घृतवर्तिका आर्तिक्ये प्रज्वालयतु। अद्यतनजनवितरणप्रसादभार-मपि भवान् वहतु अहं भवन्मङ्गलाय प्रत्यहं प्रार्थनापराऽवतिष्ठे परं शरीरमलं स्वाभिषेकेण शुध्यति नापरकृतस्नानेन। पुरुषाः प्रायः शुष्कदण्डवन्नन्तुं न कामयन्ते। अतः नारीप्रार्थनायाः नराभ्यर्थनाधिकं फलति। भवतस्तातः पौत्र-मुखेक्षणवञ्चितः स्वर्गमारुरोह । अहमपि सांप्रतमारूढा सप्तपञ्चाशत्सोपानं ममायुषः। न जाने कदा मे श्वासा विरामं भजेयुः। अपूरितमनोरथानां मरणमपि-द्विमरणसमम्। अहं तु भवतोऽपरपरिणयस्यापि चिन्तयामि"।

अम्बादत्तो जननीप्रेरितः कथाश्रवणेप्सुः मन्दिरमुपगतो मात्रादेशं परिपूर्यै-काग्रमनसाप्रवचनाकर्णनसंलग्नो बभूव। पण्डितः प्रसङ्गतस्तनयस्य पितरौ प्रति कर्तव्यं ब्रुवन् मनुस्मृत्याः नवमाध्यायश्लोकमुद्धरन् पुत्रशब्दस्यैवं व्याख्या-मकरोत्—

लगा। नौमें महीने के ग्यारहवें दिन अनिता ने दूसरी कन्या को जन्म दिया और उस घर में उसका आधा आदर, बार बार ससुराल आते हुए दामाद का जैसे लुप्त हो गया। घर के लोग केवल व्यवहार की पूर्ति के लिये ही नौकर से जैसे उस से सीमित बात ही करते थे। पक्के मन वाला भी अम्बादत्त इस बार रेणुका के रोकने पर लड्डू बांटने का हौंसला न कर सका। अनिता मन में सोचने लगी "यह समाज बहुत कुटिल है। भावी मातृशक्ति से द्रोह करता है। कोई बात नहीं। मेरे पति के विचार उदार है। उसके मन में पुत्री-पुत्र का कोई भेद न है। उसका मुझे कोई उलाहना न है। पति की प्रसन्नता में मेरी प्रसन्नता है। बाकी भाड़ में जाएं'।

अम्बादत्त—'अनिता, दूसरी कन्या के जन्म के कारण तुम दुखी मत होना। पुत्र माता पिता को स्वर्ग न ले जाता है और न ही कन्या उन्हें स्वर्ग से नीचे गिराती है। पुत्र केवल अपने कुल को सजाता है परन्तु कन्या दोनों कुलों को। राम ने केवल रघुवंश को सजाया परन्तु सीता ने ससुर कुल के साथ महाराजा जनक के वंश को भी चार चांद लगाए। आज पुत्रों के आचरण से पैर पैर पर क्लेश भोगते हुए बड़े लोग भी नीचा सिर कर के धूलि चाटते हैं। कन्या जन्म के विरक्तिसमुद्र में तुम मत डूबो। परन्तु पति से आश्वासन मिलने पर भी पुत्र अभाव के भार से कृश शरीर वाली अनिता पुत्रों से सजी गोद वाली पड़ोस की युवतियों को देख कर अपने भाग्य की लगातार निन्दा करती थी।

ग्राम के पास के मन्दिर में श्रीमद् भागवत की कथा का प्रवचन हो रहा था। ग्रामवासी श्रद्धा से वहां जाते थे। विद्योत्तमा पुत्र को बोली—'आप पल-पल अपने ही काम में जुटे रहते हो। कर्जदारों के लेनदेन से ही आपका छुटकारा न होता है। कभी धार्मिक कामों में भी रुचि लिया करो। भागवत की कथा सुनने से केवल पुण्य ही नहीं बल्कि भाग्योदय भी होता है। इस में वासुदेव की लीलाओं का वर्णन है। हो सकता है इस से ही तुम्हें पुत्रमुख देखने का सौभाग्य मिल जाये। यह घी में भिगोई रूई की वत्तियां हैं। यह फूलों का हार है। और यह चावलों की गांठ। हार पंडित के गले में डाल कर चावल की गांठ भेंट कर देना और वत्तियां आरती में जगा देना। आज लोगों को प्रसाद भी अपनी ओर से बांटना। मैं तुम्हारे कल्याण के लिये हररोज प्रार्थना करती हूं परन्तु शरीर की मैल अपने स्नान ही से धुलती है किसी दूसरे के

पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात्पितरं त्रायते सुतः ।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ।

व्युत्पत्तिमिमां निशम्य अम्बादत्तमानसे विरेचकौषधग्रहणमनु उदरे यथा विचित्रक्षोभोऽजृम्भत् । असौ मनस्यचिन्तयत्—"मां पुन्नामनरकात् कः उद्धरिष्यति । अहं तु निष्पुत्रः । सुधियः सत्यं वदन्ति 'अपुत्राणां न गतिः' एतदर्थमेव महाराजदिलीपः सुदक्षिणासहायश्चिरं यावद् वसिष्ठकामधेनुं पर्यचरत् । ततश्च महाराजादशरथः पुत्रेष्टियज्ञमाचरत् । अहं पुत्रावाप्तये किमाचरेयम् । मात्राऽपरपरिणयस्यापि सङ्केतोऽकारि । किमनितायास्तृतीयप्रसवं प्रतीक्षेयोतवाऽपरोद्वाहं कुर्वीय ? तृतीयगर्भेऽपिचेत् सा पुत्रीं जनयेत्तदापरविवाहश्चिरायिष्यते । अहं धनाढ्यः, द्वितीयपाणिपीडनमपि न दुष्करम् । कश्चिदधमर्ण एव-ऋकतोन्मुक्तो मां जामातृत्वेनाङ्गीकरिष्यति । परं मे प्राणसमा, मधुरम्वदानिता किमनुभविष्यति । मम जननीमपि सा सश्रद्धं परिचरति[1] । तां सपत्नीयुतां कथं करिष्यामि । नारी सपत्नीं चूर्णनिर्मितामपि न सहते । किं सा स्नेहविभाजनं स्वीकरिष्यति" ? एवं तस्य विचिन्तयत एव तद्दिनीयप्रवचनं विरामं जगाम । पण्डितादेशेन श्रोतार आर्तिक्यार्थमुदतिष्ठन् । ध्यानमग्नमम्ब दत्तं दक्षिणोपविष्टो भक्तो जानुना सम्बोध्य 'उत्तिष्ठतु भवानार्तिक्यार्थम् । कथावसानं न परिचीयते ?" असौ सुप्तप्रबुद्धो यथा द्रुतमुत्थाय[2] जनस्वरे स्वकण्ठममेलयत् । ततश्च सप्रसादोगृहसरणिमाशिश्राय ।

मार्गे प्रजतस्तस्य सव्यश्रवणे पुन्नामनरकध्वनिरपसव्ये चापरोद्वाहनादोऽगुञ्जत् । अनवधानतावशात् त्रिवारं प्रस्तराहतपादाङ्गुष्ठोऽसौ मनस्यचिन्तयत्—"अहं कथाश्रवणार्थं किमर्थमायातः । मात्रादेशः कथं नावहेलितः[3] । श्रीमद्भागवतप्रवचनस्य षष्ठोऽयं दिवसः । धूर्तपण्डितो मामेव प्रत्यैक्षत पुत्रशब्दव्याख्यार्थम्" ? एवं सागरोत्थितमहातरङ्गाः मत्स्यग्राहिण उडुपं यथा[4] तद्धृदयोद्भूतभावास्तन्मस्तिष्कं विफलीकर्तुमिव प्रायतन्त । उच्चैः श्वसन्नसौ गृहं प्राप्तः प्राङ्गणस्थमातृकरनिहितप्रसादो भार्यामुवाच—"अनिते, पायय मां शीतलं जलम् । असह्योऽयं ज्येष्ठमासनिदाघः" । सापि खट्वोपवेशितकन्या द्रुतं जलमानीय हस्तचालितव्यजनेन भर्तुः स्वेदकणान् शोषयामास । ततो-

---

1. परिचरति सेवते । 2. द्रुतं शीघ्रम् ।
3. अवहेलितः—अनादृतः । 4. उडुपं—तरीं नौकाम् ।

नहाने से नहीं। पुरुष प्रायः सूखी लकड़ी के समान झुकना नहीं चाहते हैं। इस लिये नारी की प्रार्थना से पुरुष की अभ्यर्थना अधिक फल देती है। आप का पिता पोते का मुख देखे बिना स्वर्ग चला गया। मेरी आयु भी अब सतावन वर्ष की हो गई है ! पता नहीं कब प्राण निकल जाएं। अधूरे मनोरथ वाले लोगों का मरना भी दोबारा मरने के बराबर होता है। मैं तो तुम्हारे दूसरे विवाह के बारे में भी सोचती हूं।

अम्बादत्त माता के कथनानुसार मंदिर में जाकर उस के आदेश की पूर्ति कर एकाग्र मन से कथा सुनने बैठ गया। पंडित ने प्रसंग से माता-पिता के प्रति पुत्र के कर्त्तव्य की व्याख्या करते हुए मनुस्मृति के नौमें अध्याय का श्लोक उद्धृत किया : –

सुत माता-पिता की पुन्नाम नरक से रक्षा करता है इसीलिये ब्रह्मा ने उसे पुत्र की संज्ञा दी है।

इस व्युत्पत्ति को सुनकर अम्बादत्त के मन में, विरेचकऔषध लेने से पेट में जैसे एक विचित्र आन्दोलन मच गया। वह मन में सोचने लगा—पुन्नाम नरक से मेरी रक्षा कौन करेगा। मैं तो निष्पुत्र हूं। पंडितों ने सच कहा है 'पुत्रहीन की गति नहीं होती'। इसीलिये महाराजा दिलीप ने सुदक्षिणा के साथ वसिष्ठ की कामधेनु की देर तक सेवा की। महाराजा दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ किया। मैं पुत्रप्राप्ति के लिये क्या करूं। माता ने दूसरे विवाह का भी संकेत किया था। क्या अनिता के तीसरे प्रसव की प्रतीक्षा करूं या दूसरा विवाह ही कर लूं ? अगर उसके तीसरे गर्भ से भी कन्या पैदा हो तो दूसरे विवाह के लिये विलम्ब हो जायेगा। मैं सेठ हूं। दूसरा विवाह करना भी मेरे लिये कठिन नहीं। कर्ज से छूट देने पर कोई ऋणी ही मुझे अपनी लड़की दे देगा। पर मेरी प्राणप्यारी अनिता क्या सोचेगी। मेरी माता की भी वह निष्ठा से सेवा करती है। उसे सौकन वाला कैसे बनाऊंगा। नारी तो आटे से बनी सौकन को भी न सह सकती है। क्या वह प्यार के बटवारे को स्वीकार कर लेगी ? इस प्रकार उसके सोचते ही सोचते उस दिन का प्रवचन समाप्त हो गया। पंडित की आज्ञा से लोग आरती के लिये खड़े हो गये। ध्यानमग्न अम्बादत्त को उसकी दाईं ओर बैठे भक्त ने जानु से हिलाकर— आप आरती के लिये उठो, पता नहीं कथा समाप्त हो गई है'? उसने सोए से उठे हुए जैसे जल्दी उठकर लोगों के स्वर में स्वर मिला दिया। फिर प्रसाद लेकर घर को चल पड़ा।

रहस्यविशेषं भाषितुमिव पत्या निर्निमेषं निरीक्ष्यमाणानिता एवश्वश्रूआज्ञप्ता पाकशालां प्रविवेश ।

माताऽम्बादत्तं पप्रच्छ— 'अद्यतनप्रवचनविषयः क आसीत् ? पण्डितवाचि मधुसममाधुर्यम् । श्रोतारः आत्मानमपि विस्मरन्ति"। अम्बादत्तः— (क्षुब्धमानसः) अद्यतनप्रसङ्गो नरकाश्रित आसीत् । भवत्यापि श्रुतः पुन्नामनरकः"? सद्यः-प्रसूतप्रतिभा विद्योत्तमा (तदुक्तिलाभमाददाना) "हुं वत्स, पुन्नामनरको निकृष्टतमो भीतिप्रदश्च । एतस्मात्केवलं पुत्रस्त्रातुमर्हति । एतन्निमित्तमेवाहं तेऽपरपरिणयं कामये । त्वमनुकूलो भव । अनितामहं प्रबोधयिष्ये । मातरस्तनयानामाजीवनं मङ्गलकामनापराः । व्यासपुरवास्तव्यो देवदासस्ते पितृकालादेव नोऽधमर्णः । तस्य कन्यात्रयम् । ज्येष्ठा चतुर्विंशतिहायनापि साम्प्रतमनूढैव[1] । यौतुकार्थिनो निर्धनबाला अलवणं भोजनं यथा नाङ्गीकुर्वन्ति । तस्य भार्या रसना मे बहुमानदा । सा मे वचनं नोपेक्षिष्यते" । अम्बादत्तः—'परमनिता चेन्न मन्येत"? जननी -"पुत्र, अनिता नो निकेतनस्य ज्येष्ठसम्राज्ञी । अपरा एतस्या वचोऽनुसारिणी स्थास्यति । मा भव त्वं चिन्ताकुलः पुत्र । सम्पन्नं भवतः सदनम् । अत्र चटकादुग्धवर्जं[2] किमप्राप्यम् । उभे मोदमङ्गलयुते स्थास्यतः" । अम्बादत्तः—"परं चेत्सापि कन्यां जनयेत्तदा तृतीयवधूपरिवेषितमास्वादयिष्यते भवती" ? जननी —"पुत्र, मैवं भण । मङ्गलकर्मणि मा भूस्त्वमन्यथामनाः । अनुपमलावण्यानङ्कृतप्रमदा न तेऽप्यविदिता' रेणुका—(मातृवाचं द्रढयितुममोघवाणं विक्षिपन्ती ।) "तस्याः सन्ततिरपि तत्समसौन्दर्यं वक्ष्यति"। प्रमदानाम श्रुत्वा अम्बादत्तयौवनं जजागार । कतिचित्क्षणेभ्यो विस्मृतानितोऽसौ मनस्यचिन्तयत् "सत्यं कनकाङ्गयष्टिः सुन्दरी सा बाला । तन्मुखं चन्द्रं स्पर्धते । तया सहाऽपरपरिणयो नापत्करः । अनिता तत्कायदर्पणावलोकितप्रतिबिम्बा[3] मे उपक्रमं न निन्दिष्यति । मधुरव्यवहृतिपराऽप्यनिताम् अग्रजभगिनीं निबुध्य मे निलयं सपत्नीकलहवर्जम् अलङ्करिष्यति । अथ चेदहमुभयोः समव्यवहारपरस्तदा शरदि व्याल इव सपत्नीविवादः पातालं प्रयास्यति" ।

अपरेद्युर्निदाघमध्याह्ने शीतलकक्षपरिगतविद्योत्तमा अनितां प्राह—

---

1. अनूढा अविवाहिता ।
2. चटकादुग्धवर्जं—चटकायाः दुग्धं विना ।
3. तस्याः काय एव दर्पणं तस्मिन्नवलोकितं प्रतिबिम्बं प्रतिच्छाया यया सा ।

रास्ते में जाते हुए उसके दाएं कान में पुन्नाम नरक की ध्वनि और बाएं में दूसरे विवाह की आवाज आने लगी। ध्यान भंग होने से उसके पैर में तीन बार ठोकर लगी और वह मन में सोचने लगा ·'मैं कथा सुनने के लिये क्यों चला आया। माता की आज्ञा को ठुकराया क्यों नहीं। भागवत के प्रवचन का यह छठा दिन था। पुत्र शब्द की व्याख्या करने के लिये यह धूर्त पंडित मेरी ही प्रतीक्षा कर रहा था'? इस प्रकार समुद्र से उठी लहरें मछेरे की किश्ती को जैसे उसके हृदय से उमड़ते भाव उसके दिमाग को फेल करने का प्रयास करने लगे ऊंचे मे हांपता हुआ वह घर आया। प्रसाद को माता के हाथ पर रखकर पत्नी को बोला -'अनिता, पानी पिला। गर्मी बहुत तेज है'। वह भी कन्या को खाट पर बिठा कर जल ले आई और हाथ के पंखे से पति के पसीने को सुखाने लगी। फिर मानों किसी रहस्य को बताने के लिये ही पति के द्वारा बिना पलक गिराये आंखों से देखी जा रही अनिता सास की आज्ञा से रसोईघर चली गई।

माता ने अम्बादत्त से पूछा—'आज के प्रवचन का क्या विषय था। पण्डित की वाणी में शहद के समान मिठास है। श्रोता लोग अपने आपको भूल जाते हैं।' अम्बादत्त—(क्षुब्ध मन वाला) 'आज का प्रसंग नरक का था। क्या आप ने भी पुन्नाम नरक सुना है'? जल्दी प्रतिभा का उदय होने वाली विद्योत्तमा (उसके वचन का लाभ उठाती हुई) 'हां बच्चे, पुन्नाम नरक अति-निकृष्ट और भयानक होता है। इससे केवल पुत्र ही रक्षा कर सकता है। इसी लिये तो मैं तुम्हारे दूसरे विवाह की सोच रही हूं। तुम मान जाओ। मैं अनिता को समझा लूंगी। माताएं पुत्रों का सदा भला ही सोचती हैं। व्यासपुर के रहने वाला देवदास तुम्हारे पिता के समय से ही हमारा कर्जदार है। उसकी तीन कन्याएं हैं। बड़ी चौबीस वर्ष की भी अभी अविवाहित है। दहेज की चाहना वाले लोग नमक के बिना भोजन को जैसे गरीबों की कन्याओं को स्वीकार न करते हैं। उसकी पत्नी रसना मेरा बड़ा मान करती है। वह मेरी बात को नहीं टालेगी'। अम्बादत्त—'पर यदि अनिता न माने तो'। माता—'पुत्र अनिता हमारे घर पर पटरानी रहेगी और दूसरी उसकी आज्ञा पर चलेगी। तुम चिन्ता मत करो पुत्र। आपका घर हर प्रकार से भरा हुआ है। यहां चिडिया के दूध को छोड़कर भला और क्या चीज न मिल सकती है। दोनों बड़े मजे से रहेंगी'। अम्बादत्त—'परन्तु यदि उसके भी लड़की हो तो

"पुत्रि, अहं किञ्चिद्वक्तुं स्फुरिताधरा" । अनिता "अम्ब, भणतु भवती । मया क आदेशः पालनीयः" । विद्योत्तमा—"अनिते, विशालमस्मन्निकेतनम् । विस्तृतकेदारा नयनसीमातीताः । एको मे सुतः । अहं वार्द्धक्यधृतपदा । त्वमपि कर्मरता श्राम्यसि । काचित्ते सहचरी चेत् समायात्तदा कथं मन्यसे" । अनिता—(स्वेदक्लिन्नकाया वेपमाना) "किं भवती कन्याद्वयप्रजननान्मां दण्डयितुकामा"? विद्योत्तमा (तन्मुखे करं निवेश्य) "हा ! पुत्रि, एवं कथं भाषसे । त्वं मे प्राणप्रिया वधूः । अहं ते कार्यभारलाघवायैवेवं ब्रवीमि" । अनिता—"किं नो गेहे किङ्कराणां न्यूनता" ? विद्योत्तमा—"पुत्रि, अद्यत्वे तेऽपि लुण्टाकाः । तन्निरीक्षणं कः कुर्यात् । किं ते न विदितमेषा पाचिका कथमाज्यं शर्कराञ्च दुकूले निगूह्य गेहं प्रापयति ? अथ केदारकर्मकरकिङ्करास्तृणधान्यानि अस्मदनुक्ता एव गोष्ठान्यपहरन्ति ? अनिता—"मातः, एतत्सर्वं गुडलिप्तहालाहलम[1] । किमयं भवत्याः प्रस्तावोऽथवा मे भर्तुः" ? अहं प्रक्ष्यामि मे प्राणाधारम्" ।

विभावर्याम्[2] अनिता भर्तारं प्रति "किं भवन्तोऽपरपरिणयकामाः" ? अम्बादत्तः—"भवती चेदनुमन्यते" अनिता—"किं निमित्तम्" ? अम्बादत्तः—"भवत्याः प्रसादाय", अनिता—"किं सपत्नीं निरीक्ष्याहं मोदमाप्स्यामि" ? अम्बादत्तः 'सा त्वां दासीव परिचरिष्यति' । अनिता 'किं कन्याद्वयप्रसूतिहेतोर्वीतरागो भवान् मयि" ? अम्बादत्तः—"एवंविधसंशयकूपेमा निपातयात्मानम् । त्वं मेऽक्षिकनीनिका"[3] । अनिता—"किं पुत्रार्थी भवानपरां परिणिनीषति" ? अम्बादत्तः –"आत्मजं को न कामयते । असौ पुन्नामनरकात्त्रायते" । अनिता—"किमहं वन्ध्यात्वमाप्ता ?" अम्बादत्तः—"नहि, परं प्रारब्धकन्यापरम्परा सूत्रयन्त्रशलाकास्थतूलवर्तिकेव दीर्घायते" । अनिता—"कन्याप्रसङ्गे पूर्वधारणाः कथमस्तमिताः" ? अम्बादत्तः—"पुन्नामनरकभुजङ्गमो मण्डूकमिव ता अग्रसत्" ।

अनिता मनस्यचिन्तयत् –"भर्तुर्मानसे एवंविधपरिवर्तनं कथम् । श्रीमद्भागवतकथाश्रवणदिवसादन्यैव व्यवहृतिः । न बुध्ये तत्र मे स्नेहसूत्रविखण्डनाय केन कीदृशः शरः क्षिप्तः । एते पुराणवाचकाः कपोलकल्पितकथा उद्धृत्य

---

1. हालाहलं विषम् । 2 विभावर्या—रात्रौ ।
3. कनीनिका—तारका ।
'कनीनिकातारकेऽक्ष्णः स्यात् कनिष्ठाङ्गुलावपि' (इति मेदिनी)

क्या आप तीसरी बहू का परोसा खाओगी' ? माता—'पुत्र, ऐसा मत कहो। शुभ काम में ऐसे विचार न रखना चाहिये। अति सुन्दरी प्रमदा को तुम भी जानते ही हो'। रेणुका—(माता के वचन को मजबूत करने के लिये अमोघवाण चलाती हुई) 'उसकी सन्तान भी उसके समान ही सुन्दर होगी'। प्रमदा का नाम सुनकर अम्बादत्त का यौवन जाग उठा। कुछ क्षणों के लिये अनिता को भूलकर वह मन में सोचने लगा—"सच ही वह सोने की छड़ी जैसी सुन्दर लड़की है। उसका मुखड़ा चाँद की बराबरी करता है। उसके साथ दूसरी शादी होना कोई बुरी बात नहीं। उसके शरीर रूपी दर्पण में अपनी परछाईं देखकर अनिता मेरे इस उपक्रम की निन्दा न करेगी। मीठा वर्तात्र करने वाली वह भी अनिता को अपनी बड़ी बहन समझ कर शोकन की कलह से दूर मेरे घर को सजाएगी। फिर मैं यदि दोनों से एक जैसा बर्ताव करूंगा तो सोकन के झगड़े का प्रश्न ही पैदा न होता है।

दूसरे दिन जेठ की दोपहरी में ठण्डे कमरे में बैठी विद्योत्तमा अनिता को बोली—'पुत्री, मैं कुछ कहना चाहती हूं'। अनिता—'माता, आप बोलो, मुझे किस आदेश का पालन करना है' विद्योत्तमा—'अनिता, हमारा विशाल घर है। हमारे लम्बे-लम्बे खेत आंखों की सीमा से परे हैं। एक ही मेरा पुत्र है। मैं बूढ़ी हो रही हूँ। तुम भी काम करती-करती थक जाती हो। यदि आपकी कोई सहचरी आ जाए तो तुम कैसा मानती हो'। अनिता—(पसीने से भीगे शरीर वाली कांपती हुई) 'क्या आप दो कन्याओं को जन्म देने से मुझे दण्ड देना चाहती हो'? विद्योत्तमा (उसके मुंह पर हाथ रखकर) 'हाय पुत्री, ऐसा क्यों कहती हो। मैं तेरा काम का भार हल्का करने के लिये ही ऐसा कहती हूँ'। अनिता—'क्या हमारे घर में नौकरों की कमी है'? विद्योत्तमा—'पुत्री, आजकल के नौकर भी लुटेरे हैं। उन की देखभाल कौन करे। क्या तेरे को पता नहीं यह रसोइन किस प्रकार घी और खांड को दुपट्टे में छिपाकर घर ले जाती है? और खेतों में काम करने वाले नौकर घास और अनाज को हमारे बिना पूछे ही अपने गोवन्धन स्थान को ले जाते हैं'? अनिता—'माता, यह सब कुछ गुड़ में लिपटा जहर है। क्या यह प्रस्ताव आपका है या मेरे पति का? मैं अपने प्राणाधार को पूछूंगी।

रात को अनिता ने पति से पूछा—क्या आप दूसरी शादी करना चाहते हैं? अम्बादत्त—'यदि आपको अच्छा लगे तो'। अनिता—'किस लिये'?

लोकान् संशयवारिधौ निक्षिपन्ति। आस्तां तावत्। अयंचेद् विधिवदपरामुद्वाहयति, नाहमन्तरायं करिष्यामि। काममेतदेकपत्नीव्रतातिक्रमणं परं नायमनाचारोऽथभिचारो वा। अहं भारतीयनारी। पत्युः प्रसादाय सपत्नीमपि सहिष्ये। तस्या गर्भात्सूनुरवतरति चेन् मेऽपि श्रेय एव। अहमनुमोदिष्ये।

अपरवासरे विद्योत्तमा असफलछात्रा पुनः परीक्षार्थमुपस्थिता यथा अनितामुपगम्य प्राह 'पुत्रि, त्वमुदारहृदया प्राज्ञा वधूः। तव मधुमधुरवाक्षु श्रवणपतितासु मे पिपासापि शाम्यति। तव गुणगणविमोहितोऽम्बादत्त स्त्वां भृशं प्रशंसति। परम्—। अनिता (क्षुब्धा पूर्णमश्रुत्वेव) परं किम्, ममाङ्को न पुत्रालङ्कृतः? एष एव चेन्मे दोषः, भवती समानयत्वपरां सदनालङ्करणाय। अहं तितिक्षया नापरिचिता'।

परेऽह्नि विद्योत्तमा व्यासपुरे देवदाससदनाप्ता तद्भार्यारसनाकृतातिथ्या सुखदासनोपविष्टा तां प्राह- "देवदासः क्व गतः" ? रसना—'राजमार्गे परिश्रमकराणामुपस्थितिं निरीक्ष्य सायं प्रत्यावर्तिष्यते। भवताम् ऋणप्रत्यावर्तनचिन्ता नः बाधते"। विद्योत्तमा—"शनैः शनैः प्रत्यावर्तन्ताम्। वयम् ऋणिनो न पीडयामः। अहं जिज्ञासामि, प्रमदा क्वचित्सत्यापिता न वेति"? रसना—"मातर्, निर्धनानां कन्यां क स्त्रीकरोति। यौतुकनिमित्तं स्थानद्वये वार्ताभङ्गोऽजायत। असमर्थाः वयं किं कुर्याम। रिक्तहस्तो मुखे नयाति। चतुर्विंशतिहायना युवती मेऽनूढाऽऽत्मजा सदनेऽवतिष्ठते। अपरे द्वे अपि परिणयवयसि वर्तेते। अहं चिन्तया म्रियमाणा भवामि"। विद्योत्तमा —"प्रमदां देहि मे सुताय"। रसना—(विस्मयापन्ना) "हुं, भवत्याः सुतस्तु कन्यायुगलतातः! एतत्कथं सम्भविष्यति"। विद्योत्तमा—"रसने, अनिताकुक्षेर्नात्मजः सम्भाव्यते। अहं पौत्रभिक्षायै ते द्वारमुपयाता। मम सुतोऽम्बादत्तः साम्प्रतं द्वात्रिंशद्वर्षीयो युवा"। रसना—"परं सपत्नी चेन्मे सुतां न सहेत? विद्योत्तमा—मम वधूरनिता मधुरस्वभावा। तदनुमत्यैवैष उपक्रमः। जहातु भीतिं भवती। अङ्गीक्रियते चेद्, वयं पूर्ण-ऋणोन्मुक्तिपूर्वकं तेऽपरपुत्रीद्वयविवाहभारं सुतशिक्षाव्ययं च वक्ष्यामः।

अर्थाभावप्रताडितरसना तद्वचनानि निशम्य हर्षविस्फारितनयना तां प्राह—"भर्त्रा विहितपरामर्शाहमचिराद् भवतीमस्मन्मतावगतां करिष्ये"। विद्योत्तमा वित्तामोघास्त्रेण विजितकामा प्रमुदितमानसा उभयवधूप्रसादाय

अम्बादत्त—'आपकी प्रसन्नता के लिये'। अनिता—'क्या सौकन को देखकर मुझे प्रसन्नता मिलेगी? अम्बादत्त—'वह दासी के समान तेरी सेवा करेगी'। अनिता—क्या दो कन्याओं को जन्म देने से आप को मुझसे वैराग्य हो गया है? अम्बादत्त—'इस प्रकार के संशय में अपने को मत गिराओ। तुम मेरी आंख की पुतली हो' अनिता—'क्या पुत्र कीं इच्छा से आप दूसरी शादी के इच्छुक हो'? अम्बादत्त 'पुत्र को कौन नहीं चाहता है। वह पुन्नाम नरक से रक्षा करता है'। अनिता 'क्या मैं बन्ध्या हो गई हूँ'? अम्बादत्त 'नही, परन्तु कन्याओं की परम्परा जब प्रारम्भ होती है तो यह चर्खे की तकली पर चढ़ाई रूई की पोनी के समान लम्बी ही होती चली जाती हैं'। अनिता—'कन्या के बारे में पहले विचार कैसे समाप्त हो गये'? अम्बादत्त—'पुन्नाम नरक रूपी सांप मेंडक को जैसे उनको खा गया'।

अनिता मन में सोचने लगी—'पति के मन में इस प्रकार का परिवर्तन कैसे हो गया। भागवत की कथा सुनने के दिन से ही व्यवहार बदल गया। पता नहीं वहां मेरे स्नेहसूत्र को तोड़ने के लिये किस ने कैसा वाण फेंक दिया। यह कथावाचक मनघड़न्त कथाएं सुना कर लोगों को संशय सागर में गिरा देते हैं। कोई बात नहीं यदि यह विधिपूर्वक किसी दूसरी से शादी करना चाहता है तो मैं बाधा न डालूंगी। यह न अनाचार है न व्यभिचार है। मैं भारतीय नारी हूं। पति की प्रसन्नता के लिये सौकन को भी सह लूंगी। यदि उसके गर्भ से लड़का होता है तो इसमें मेरा भी कल्याण ही है। मैं अनुमोदन कर दूंगी'।

दूसरे दिन फेल छात्रा दूसरी बार परीक्षा देने के लिये उपस्थित हुई जैसे विद्योत्तमा अनिता को बोली—'पुत्री, तुम उदार हृदय वाली बुद्धिमती वहू हो। तेरी मीठी वाणी सुन कर मेरी प्यास भी शान्त हो जाती है। तेरे गुणों पर मोहित होकर अम्बादत्त लगातार तेरी प्रशंसा करता है। परन्तु'...। (पूरी बात को बिना सुने ही) अनिता 'परन्तु क्या, मेरी गोद पुत्र से हरी-भरी न है। यदि यही मेरा दोष है तो आप घर सजाने के लिये किसी दूसरी को ले आओ। मुझ में सहनशीलता है'।

दूसरे दिन विद्योत्तमा व्यासपुर में देवदास के घर जाकर उसकी पत्नी रसना से आतिथ्य पाकर सुखद आसन पर बैठी हुई उस को बोली—'देवदास कहां गया है?' रसना - सड़क पर मजदूरों की हाजरी देखकर सायं को

मया किं किं कर्त्तव्यमिति ध्यानमग्नाऽज्ञाताध्वक्लमा द्रुतमेव सदनमवाप्नोत् ।

प्रमदा मनस्यचिन्तयत् "विधातुर्विचित्रा गति. । अकिञ्चनानां सदने प्रायः कन्या अवतरन्ति । अहं द्वितीयोद्वाहकामं वरितुं गच्छामि । असावपि जीवितभार्यः । कीदृशीयं भाग्यविडम्बना । किमावां सहिष्यावहेऽन्योन्यमेकाऽपराम् ? दैवयोगादम्बादत्तः साम्प्रतं पूर्ववयसि वर्तते, अन्यथा मे यौवनं सलिलशून्यकासारे मत्स्य इव विपन्नं स्यात् । यद्यपि परोक्षरूपेणायं मे त्रिक्रयः परं नाहं कृतप्रतिरोधा निर्धनपितृमार्गेप्रक्षिप्तकण्टका भवितुमीहे" ।

विद्योत्तमाऽऽत्मजं प्रति "पुत्र, सिद्धं नः समीहितम् । रसनाऽनुकूलतामनायि मया । ऋणोन्मुक्तिः, अपर-कन्याद्वयोद्वाहव्ययभारः सुतशिक्षाप्रबन्धश्च एतत्त्रयं प्रतिज्ञातं मया" । अम्बादत्तः—(प्रमदाध्यानमग्नः) "एतत्सर्वं सुकरं सुखदञ्च । एतस्मिन् पुण्यमपि फलमपि । किं देवदासोऽप्यनुकूलमानसः" ? विद्योत्तमा—"असौ भार्यावचनं नान्यथा करिष्यति । वयमचिरात्सन्देशं प्राप्स्यामः" ।

सायं सदनागतभर्तारं शीर्षे सामर्थ्याधिकभारं वहन् पथिकः ग्रन्थिं द्रुतमवतारयितुमुत्को यथा रसना प्राह—"अद्यात्यद्भुतं श्रोष्यन्ति भवन्तः" । देवदासः—"वदतु भवती" । रसना—"अम्बादत्तजननी अस्मत्कुटीरधृतपदा । देवदासः -"किं कुसीदाहरणाय" ? रसना—"नहि नहि, सा प्रमदायै समागमत्" । देवदासः—(विस्मितः) असौ प्रमदामादित्सति ? कस्मै ?" रसना—"पूर्ववध्वाः पुत्रीद्वयजन्मखिन्नमानसा सा पौत्रमुखदिदृक्षया सुतापरपरिणयं कामयते" । देवदासः "परं प्रमदां सपत्नी-सङ्कटे कथं प्रक्षेप्स्यामः" . रसना—"भवान् सम्यक् विचिन्तयतु । युवद्वयेन नोऽभ्यर्थना पूर्वमेव तिरस्कृता । निर्यौतुककन्यां कः स्वीकरिष्यति । सा ऋणोन्मुक्तिं, कनिष्ठपुत्रीद्वयोद्वाहभारं भास्करस्य शिक्षाप्रबन्धञ्च प्रत्यजानात् । भवानेककः समर्जकः । महार्घतापिशाची निर्धनान् जिग्रसिषति । सप्तवंशान् यावत्-ऋणोन्मुक्ता न भविष्यामः । लवणेन शुष्ककरपट्टिकास्वादनपराः क्लान्ता वयम् । श्रेष्ठी अम्बादत्तः साम्प्रतं द्वात्रिंशद्वर्षीयः । श्रूयते पूर्वभार्या अनितापि मधुरप्रकृतिः । प्रमदा ससुखं कालं गमयिष्यति । हस्तागतं काञ्चनचञ्चुकं[1] शुकमिमं मा जहातु भवान् । मन्दिरे

1. काञ्चनस्य स्वर्णस्य चञ्चुः यस्य, तं काञ्चनचञ्चुकं धनाढ्य-मिति भावः ।

लौटेगा । आप का कर्ज लौटाने की हमें चिन्ता है । विद्योत्तमा—'धीरे-धीरे लौटा देना । हम ऋणियों को पीड़ित न करते हैं । मैं जानना चाहती हूं कि प्रमदा की सगाई कहीं कर दी है या नहीं' । रसना—'माता जी गरीबों की कन्या को कौन स्वीकार करता है । दहेज के लिये दो स्थान पर बात टूट गई । हम असमर्थ क्या करें । खाली हाथ मुंह में नहीं जाता । चौबीस वर्ष की मेरी युवती पुत्री अविवाहित घर में बैठी है । दूसरी भी दोनों विवाह के योग्य हो गई हैं । मैं चिन्ता से मर रही हूं' विद्योत्तमा—'प्रमदा को मेरे पुत्र के लिये दे दो । रसना (अचम्भे में) 'हैं, आप का पुत्र तो दो लड़कियों का पिता है । यह कैसे होगा' । विद्योत्तमा—'रसना, अनिता की कोख से पुत्र की संभावना न बनती है । मैं पोते की भिक्षा के लिये तेरे दरवाजे पर आई हूं । मेरा पुत्र अम्बादत्त अभी बत्तीस वर्ष का युवा है । रसना—'यदि सौकन मेरी पुत्री को न सहे ? विद्योत्तमा 'मेरी बहू अनिता का स्वभाव बहुत मीठा है । उसे पूछ कर ही हम ऐसा कर रहे हैं । आप डरो मत . यदि आप मान जाओ तो पूरे कर्ज से छूट, दूसरी दोनों पुत्रियों के विवाह के भार और आपके पुत्र की पढ़ाई का भार हम उठाएंगे' ।

गरीबी से लताड़ी रसना उस के वचनों को सुनकर प्रसन्नताभरी उसको बोली—'पति से सलाह करके हम आप को बता देंगे' । धन के अमोघ अस्त्र से विजय पा कर प्रसन्न मन वाली विद्योत्तमा 'दोनों बहुओं की प्रसन्नता के लिये मुझे क्या-क्या करना है' इस ध्यान में मग्न रास्ते की थकावट का बिना पता चले जल्दी ही घर पहुंच गई ।

प्रमदा मन में सोचने लगी—'विधाता की गति बड़ी विचित्र है । गरीबों के घर में प्रायः कन्याएं पैदा होती हैं । मैं एक दुहाजू को वरने जा रही हूं । दुहाजू भी ऐसा जिस की पहली पत्नी भी जीवित है । यह कैसी भाग्य की खेल है । क्या हम आपस में एक दूसरी को सह पाएंगी ? देवयोग से अम्बादत्त अभी पहली आयु में है नहीं तो जलहीन तालाब में मछली के समान मेरा यौवन ही संकट में पड़ जाता । यद्यपि परोक्षरूप से यह मेरा विक्रय है पर मैं गरीब माता-पिता के रास्ते में कांटे न बिछाना चाहती हूं' ।

विद्योत्तमा अम्बादत्त के प्रति—'पुत्र, हमारी इच्छा पूरी हो गई । रसना को मैंने मना लिया है । पूरे कर्ज से छूट, दूसरी दोनों कन्याओं के विवाह का भार और पुत्र की पढ़ाई का प्रबन्ध इन तीन बातों को पूरा करने के लिये मैंने

एव सङ्क्षिप्तकुलाचारमनु प्रमदा श्रेष्ठिगले जयमालां धारयिष्यति । न हिङ्गु न स्फटिका । अन्तर्मनसा निध्यायतु भवान्' । देवदासः—(कतिचित्क्षणान् विचिन्त्य) "भवत्यैचेद् रोचते, नाहमन्यथाकरः" । रसना—तर्हि श्व एव प्रयातु भवान् स्वयम् । दिवसमपिशुभम् । श्रेष्ठिनोऽभावानभिज्ञाः[1] । अन्यत्रापि प्रसङ्गः सम्भाव्यते । परकरसमर्पितसन्देशाश्चालनीकृतचूर्णसमाः" । देवदासः—"परमहं तेषामधमर्णः कथं मुखं दर्शयिष्यामि" । रसना - "पलायिता सा धारणाधुना । साम्प्रतं भवान् तेषां सम्मानार्होऽतिथिः । द्वारिकायां सुदामा यथा सत्करिष्यते तत्र मे भर्ता" ।

परेद्युर् विद्योत्तमाऽलिन्दस्था शिरोवेष्टनालङ्कृतशीर्षं यष्टिहस्तं समायान्तं देवदासमवलोक्य, संसृतिव्यवहारकुशला तं भाविवधूतातमनुभूय किञ्चित्कृतावगुण्ठना अग्रतो गत्वा "आयान्तु भवन्तः" इति ब्रुवाणा सादरं समानीय समलङ्कृतवेत्रासने उपवेशयामास । अम्बादत्तोऽपि झटिति समागत्य तत्पादावस्पृशत् । स्वकक्षगवाक्षान्निरीक्षमाणाऽनिता (मनसि) "अद्भुतोऽयं संसारः । विचित्रैव लीला स्वार्थस्य । एकयावगुण्ठनं कृतमपरेण पादस्पर्शः । एष स एवाधमर्णो देवदासो यो नः क्षेत्राहृतकाष्ठभारं सदनपृष्ठभागे निधाय तत्सहायान् मक्कीकग्रासान् गलेऽवतार्य सन्तोषमभजत् । हे प्रभो, विस्मयकरं विलसितं ते । लोकैरेवंविधनाट्यानि कथं नाटयसि । भवादृशसूत्रधारो भवानेव' । देवदासः—(अम्बादत्तकरस्पर्शरोमाञ्चितपादो गुद्गुदायमानहृदयो मनसि "अहो । ममोत्तर्णोऽद्य मे पादनतः । अत्यद्भुतं प्रियं प्रतिभाति मे । धन्या मे प्रमदा तनया यत्प्रभावादहमेवमाद्रिये । सा एतत्सदने नरपतिभवनसुलभसुखान्याप्स्यति" । विद्योत्तमा—(संयावपयःपात्रालङ्कृतकरा) "दूरमार्गयातः क्लान्तोभवान् । गृह्णातुक्षीरमिदम् । सकुशलोभवत्परिवारः ? प्रमदापि स्वस्था"? देवदासः—(तस्या भावमवबुध्य) भवदाशीर्वादसम्वर्धितप्रमदा कथं न स्वस्था स्यात् । वयं भवदाज्ञावशम्वदाः । जयमालामुहूर्तं, निर्धारयन्तु ।

विद्योत्तमा—(अपरिश्रमं प्रथमश्रेण्युत्तीर्णछात्रा यथाऽऽमोदाप्लावितस्वान्ता[1] मनसि) 'भगवत्प्रसादात्फलितो मे मनोरथः" । (प्रकाशम्) ज्योतिर्विदमापृच्छ्य सन्देशं प्रहेष्यामः" । (ततोऽभ्यन्तरात्पीतवस्त्रवेष्टित द्राक्षावाताद्राक्षोटशुष्कफलान्यादाय) "बालबालाभ्य उपहारमिमं स्वीकरोतु" । इत्यभिधाय तद्धस्तयोः समा-

---

1. आमोदेन प्रसन्नतया आप्लवितं स्वान्तं हृदयं यस्याः सा ।

कहा है' ।प्रमदा के ध्यान में मग्न अम्बादत्त—'यह सब कुछ आसानी से किया जा सकता है। इसमें पुण्य भी है और फल भी। क्या देवदास भी मान गया है'? विद्योत्तमा—'वह पत्नी के वचन को नहीं मोड़ेगा। हम शीघ्र ही संदेश सुनेंगे'।

सायं को घर में आए हुए पति को, सिर पर हिम्मत से अधिक भार उठाने वाला यात्री गठड़ी को जल्दी उतारने के लिये उत्कंठित जैसे रसना ने कहा—'आज आप अचम्भे की बात सुनेंगे'। देवदास—'हां सुनाओ'। रसना—'अम्बादत्त की माता आज हमारी कुटिया में आई थी'। देवदास—'क्या ब्याज लेने के लिये'? रसना 'नहीं, वह प्रमदा के लिये आई थी। देवदास—(अचम्भे में) 'वह प्रमदा को लेना चाहती है? किस के लिये'? रसना—'पहली बहू के दो पुत्रियां होने से खिन्न मन वाली वह पोते का मुख देखने की इच्छा से पुत्र का दूसरा विवाह करना चाहती है'। देवदास—'परन्तु प्रमदा को सौकन के संकट में कैसे गिराएंगे। रसना—'आप अच्छी तरह सोच लो। दो लड़कों ने हमारी प्रार्थना को पहले ही ठुकरा दिया है। बिना दहेज के कन्या को कौन स्वीकार करेगा। उसने कर्ज से छूट, लड़कियों का विवाह और भास्कर की शिक्षा के प्रबन्ध की बात मानी है। आप अकेले कमाने वाले हैं महंगाई की पिशाची गरीबों को निगल रही है। सात पीढ़ी तक कर्ज से छुटकारा न पा सकेंगे। नमक से सूखी रोटियां खाते खाते हम थक गये हैं। सेठ अम्बादत्त अभी बत्तीस वर्ष का है। सुना है पहली पत्नी अनिता का स्वभाव भी अच्छा है। प्रमदा सुख से समय बिताएगी। हाथ में आए सोने की चोंच वाले इस तोते को मत छोड़ो। मंदिर में ही संक्षिप्त कुलाचार के बाद प्रमदा सेठ के गले में जयमाला डाल देगी। न हींग लगे न फटकी। अच्छी तरह सोच लो'। देवदास—(कुछ क्षण सोच कर) 'यदि आप को अच्छा लगता है तो मुझे कोई आपत्ति न है'। रसना—तो आप कल ही स्वयं चले जाओ। दिन भी अच्छा है। सेठ लोगों को किसी चीज की कमी नहीं। कहीं दूसरी ओर भी बात हो सकती है। दूसरों के हाथ भेजे गये संदेश छानणी में डाले आटे के समान होते हैं'। देवदास—'पर मैं उनका कर्जदार हूं। कैसे मुंह दिखाऊंगा'। रसना- 'वह भावना अब चली गई। आप उनके सम्मान के योग्य अतिथि हैं। मेरे पति का द्वारिका में सुदामा का जैसे वहां सम्मान होगा।

दूसरे दिन संसार के व्यवहार में कुशल बरामदे में बैठी विद्योत्तमा ने

पंयत् । देवदासोऽपि लब्धनिधिरिव प्रसन्नमानसो गृहं न्यवर्तत ।

विद्योत्तमा—(पुत्रं प्रति) "अवालोकि मे प्रयत्नः ? साम्प्रतं मौहूर्तिकेन कृतमन्त्रणो भवान् अग्निर्मविधिपूरणप्रयत्नपरो भवतु" । अम्बादत्तः "मातः, ते प्राकृतिकप्रतिभया एतत्सदनभित्तयोऽपि नापरिचिताः । भवत्या पुनीतं कः पवित्रिष्यति । ससूक्ष्ममेव सकलं विधास्यामः" ।

देवदासः (सदनमाप्तो रसनां प्रति) प्रिये, तत्रावाप्तं रोमाञ्चकरमानं व्याख्यातुं शब्दकार्पण्यं[1] बाधते माम् । तत्र तु प्राङ्गणागतकाकमपि किङ्करा एव द्रावयन्ति । प्रमदा पूर्वजन्मसञ्चितशुभकर्मयोगादेव तत्र प्रवेशं लभमाना दृश्यते । अचिरात् सूचयिष्यन्ति ते नोऽग्निमविधिं पूरयितुम् ।

अथ शुभलग्नवेलायां विवाहमङ्गलसूत्रवसनालङ्करणालङ्कृता प्रमदा कलेवरस्थहाटकभूषणशोभां स्वप्रभया द्विगुणयन्ती यथाऽम्बादत्तनिकेतने पदं दधार । विद्योत्तमाऽनितामनःप्रसादाय पुनरावृत्तिमुपेक्ष्य तस्यै अपि तद्विधपरिधानालङ्करणानि प्राददात् । प्रमदाऽनितामपि श्वश्रूर्निर्विशेषं समाद्रियत । सा नवसमानीतधेनुर् गोष्ठे पूर्ववर्तमानायाः शृङ्गप्रहारवारणाय तदुच्छिष्टजलपात्रे सलिलं यथा तया सममेकस्थाल्यां भोक्तुं प्रायतत । अरुणावरुणे अङ्के आदाय मातृस्नेहं व्यज्ञापयत् । अम्बादत्तः षण्मासाभ्यन्तरे श्यालयोः सम्पन्नगेहे कृतपरिणयः श्यालशिक्षायै सावधिलेखायां सन्निवेशितवित्तः पणप्रियाणामुत्कृष्टादर्शं प्रास्तौत् ।

परिणयहायनावसानमासे[2] प्रमदा गर्भधरा विरराज । तामुदरस्थभ्रूणां निरीक्ष्य वीणानिनदं निशम्य भुजगी[3] यथा अनितायाहृदि ईर्ष्यापिशाची नर्तितुमारेभे । सा मनस्यचिन्तयत्—' एषाऽन्तर्वत्नीत्वमाप्ता । किमहं गर्भधारणाक्षमा ? मया साम्प्रतं ममायुषः त्रिंशत्तमसोपानोऽपि नारोहि । अहमेतन्निकेतने परित्यक्ता यथा भ्राम्यामि । श्वश्रूरपि मामुपेक्षमाणा प्रमदामेव स्नेहसलिलबिन्दुभिरभ्युक्षति । केवलमरुणावरुणामोहजालबद्धया मया प्राणा ध्रियन्ते ।

---

1. शब्दकार्पण्यं—शब्दाभावः ।
2. हायनावसानमासे—द्वादशमासे ।
3. भुजगी—सर्पिणी ।

पगड़ी पहने, हाथ में लाठी लिये देवदास को देखकर उसे आगे आने वाली बहू का पिता जानकर कुछ घूंघट निकाल कर, आगे जा कर 'आप आइये' ऐसा बोलती हुई ने आदर के साथ सजी कुर्सी पर बैठा दिया। अम्बादत्त ने भी झट आकर उसके पैर छू लिये। अपने कमरे की खिड़की से देखती हुई अनिता (मन में) यह संसार कितना विचित्र ! स्वार्थ की लीला अनोखी ही है। एक ने घूंघट निकाल लिया और दूसरे ने पैर छू लिये। यह वही देवदास कर्जदार है जो खेत से लाए लकड़ियों के भार को घर के पिछवाड़े रख कर छांछ के साथ मक्की की रोटी खा कर सन्तोष कर लेता था। हे प्रभु, तेरी लीला भी विचित्र है ! लोगों से इस प्रकार के नाटक कैसे करवाते हो। आप जैसे सूत्रधार आप ही है।' देवदास अम्बादत्त के हाथ छूने से रोमांचित पैरों वाला, हृदय में गुदगुदी युक्त (मन में) 'अरे, मेरे साहूकार ने आज पैरों से हाथ लगा दिया। मुझे यह बहुत प्यारा लग रहा है। मेरी पुत्री प्रमदा धन्य है जिस के कारण आज मेरा इतना आदर हुआ है। वह इस घर में राजघराने के सुख पाएगी'। विद्योत्तमा—(हाथ में हलवा और दूध का पात्र लिये हुए) 'आप दूर से आए थके हुए हैं। यह दूध ग्रहण करो। आप का परिवार कुशल से है? क्या प्रमदा भी स्वस्थ है' ? देवदास (उस के भाव को समझकर) 'आप के आशीर्वाद से पत्नी प्रमदा स्वस्थ क्यों न हो। हम आप के आज्ञाकारी हैं। जयमाला का मुहूर्त निश्चित करो'।

विद्योत्तमा (बिना परिश्रम के प्रथम श्रेणी में पास होने वाली छात्रा के समान प्रसन्न हृदय वाली मन में) 'भगवान की कृपा से मेरा मनोरथ सफल हो गया'। (प्रकट) ज्योतिषी को पूछ कर सन्देश भेज देंगे'। फिर अन्दर से पीले वस्त्र में बांधे दाख, बादाम, अखरोट आदि सूखे फल ला कर 'बालक-बालिकाओं के लिये यह उपहार स्वीकार करो' ऐसा कह कर उसके हाथ में गांठ थमा दी। देवदास भी जैसे उसे कोई खजाना मिल गया हो, प्रसन्न मन से घर को लौट गया।

विद्योत्तमा – (पुत्र के प्रति) 'देखा मेरा प्रयास ? अब ज्योतिषी को पूछ कर अगली विधि पूरा करने की ओर ध्यान दो'। अम्बादत्त—'माता, आप की स्वाभाविक प्रतिभा को इस घर की दीवारें भी जानती हैं। आप के छाने हुए को कौन छान सकता है। सब काम सूक्ष्म रूप से ही करेंगे'।

देवदास घर आकर रसना को बोला—'प्यारी वहां पर प्राप्त किये

अन्ततोऽहमपमानसन्तप्ता कदा यावज्जीवनं धरिष्ये। एवं विचिन्त्यास्वीकृतभोजनासौ दुकूलकोणावेष्टितमस्तका कोपभवने कैकेयीव प्रासादपूर्वकोणस्थकक्षे खट्वायां लुलोठ।

अम्बादत्तो विनिवर्तिताधमर्णव्यवहारः स्वागारं प्रति क्राम्यन् कक्षे तामालोक्य—भवत्यत्र किमर्थं लुण्ठिता। मस्तकं किमर्थं वसनवेष्टितम्? किं शीर्षवेदना? लक्ष्मीविलासरसवटिकां समानयामि। भवतीगृह्णातु, शिरोवेदना पलायिष्यते"। अनिता—(तत्करमपवारयन्ती) "मत्स्पर्शेन करः किमर्थं दूष्यते। नवीनाप्सराः सदनमलङ्करोति। तन्मस्तके तिलकं करोतु तामेव च धूपं धूपयतु। हृदयनिस्सृतां वाचा किमर्थं समाश्वासयति भवान्। एषा कुटिलनीतिः कुतः शिक्षिता। पुरुषाणां स्वार्थपरता लोकविश्रुता। प्रयातु भवान्। सुन्दरी प्रतीक्षते"। तद्वचनकण्टकविद्धहृदयोऽम्बादत्तो[1] मनस्यचिन्तयत्—"भार्याद्वयधारणकट्वनुभूतिरन्वभावि मयाद्याद्यवारम्। नौकाद्वयपदार्पणमिव पत्नीद्वयप्रसादो न सुकरः। साऽप्येनया सह भाषमाणं मां तिर्यङ्नेत्रेण पश्यति। प्रमदां गर्भधरां निरीक्ष्यैवैतद्धृदयं शूलविद्धम्। सा मया पुत्रमुखमालोकितं समानायि न वन्ध्यात्वे भोगाय"।

अनिता पञ्चदिवसान्यनाहारा केवलं सलिलबलेनैव क्षणान् व्यगमयत्। विद्योत्तमोपहारीकृतक्षीरं तदोष्ठसङ्गमप्तुं चिरं प्रत्यैक्षत। सा सान्निध्यमाप्ते अरुणावरुणे निर्निमित्तं भर्त्सयन्ती स्वान्तःकोपं बहिरुद्गिरन्ती मनस्यचिन्तयत्—"मयाबोधया निजः पन्थाः कण्टकाकीर्णो व्यधायि। पूर्वमेव दृढ़प्रतिरोधः कथं न कृतः। तस्करे सदनप्रविष्टे सावधानतायाः कोऽर्थः। कार्यविकृतौ बुद्धेरुदयो-निष्फलः"।

अम्बादत्तोऽनितान्नत्यागविकलो निशि मनस्यचिन्तयत्—"अनाहाराऽनिता क्षीणकाया मरणोन्मुखा, चेदेषा विगतासुः, 'अपरभार्यासहायश्रेष्ठिना पूर्वपत्नी हते' त्येवंविधलोकापवादात् कथमुन्मुक्तो भविष्यामि। प्रमदामपि लोकाः कलङ्कयिष्यन्ति। अहमेनां रहसि प्रबोधयिष्ये"। एवं विचिन्तयन् खट्वाधोधृतपात्राज्जलं निपीय दृढमनसाऽनिताकक्षं प्रविवेश। परं तत्र पदन्याससमकालमेव तस्य संयमबन्धः सलिलप्रवाहेण वालुकाभित्तिरिव, वायुवेगेन पादपशुष्कशाखेव

1. तस्याः वचनान्येव कण्टकास्तैः विद्धं हृदयं यस्य सः।

रोमांचकारी सम्मान को बताने के लिये मेरे पास शब्द न हैं। वहां तो आंगण में आए कौए को भी नौकर ही भगाते हैं। पूर्वजन्म के शुभ कर्मों के प्रभाव से ही प्रमदा वहां प्रवेश पा रही है। वह अग्रिम विधि पूरी करने के लिये शीघ्र ही हमें सूचित करेंगे'।

इसके बाद शुभ लग्न में विवाह के मंगलसूत्र और वस्त्रों से सजी प्रमदा शरीर पर पहने सोने के भूषणों की शोभा को मानों अपनी कान्ति से दुगुना बनाती हुई जैसे अम्बादत्त के घर में आ गई। विद्योत्तमा ने अनिता के मन की प्रसन्नता के लिये पुनरावृत्ति की चिन्ता न करते हुए उसके लिये भी उसी प्रकार के वस्त्र भूषण दिये। प्रमदा अनिता का भी सास के समान ही आदर करने लगी। वह नई लाई गई गौ गोष्ठ में पहली के सींगों की टक्कर से बचने के लिये उसके जूठे पात्र में पानी को जैसे अनिता के साथ एक ही थाली में भोजन करने लगी। अरुणा-वरुणा को गोदी में लेकर माता जैसा प्यार जताने लगी। अम्बादत्त ने छः महीने के अन्दर ही दोनों सालियों का सम्पन्न घर में विवाह करके और साले की शिक्षा के लिये सावधि लेखा में धन जमा करवाकर अपनी प्रतिज्ञाप्रियता का ऊंचा आदर्श प्रस्तुत किया।

विवाह से बारहवें महीने प्रमदा गर्भवती हो गई। उसे गर्भ वाली देखकर वीणा के शब्द को सुनकर सांपनी के समान अनिता के हृदय में ईर्ष्या रूपी पिशाची नाचने लग पड़ी। वह मन में सोचने लगी—'इसे गर्भ ठहर गया। क्या मैं इसे धारण करने में असमर्थ हूं? मैं अभी तीस वर्ष की भी न हुई हूं। इस घर में परित्यक्ता जैसी घूमती हूं। यह सास मुझे अनदेखी कर इसी को ही प्यार के छींटे देती है। केवल अरुणा-वरुणा के मोह में ही मैं जी रही हूं। आखिर मैं कब तक इस अपमान भरे जीवन को बिताऊंगी'। ऐसा सोचकर दुपट्टे से अपना माथा बांधकर कोपभवन में कैकेयी के समान घर के पूर्व कोण के कक्ष में खाट पर लेट गई।

अम्बादत्त कर्जदारों के लेन-देन से निवृत होकर अपने आवास को जाता हुआ कमरे में उसे देखकर बोला—'आप यहां क्यों लेटी हो। मस्तक क्यों बांधा है? क्या सिर में दर्द हो रहा है? मैं लक्ष्मीविलासरस की गोली लाता हूं। आप उस का सेवन करें। सिर दर्द एकदम भाग जायेगी'। अनिता—(उस के हाथ को पीछे हटाती हुई) 'मेरे स्पर्श से हाथ को मैला क्यों करते हो। नई अप्सरा घर में आई है। उसी के माथे तिलक लगाओ और उसी को

बभञ्ज। अनितायाः पूर्वसङ्गमानां स्मरन्नसौ कामेषुप्रहारमर्षणाक्षमः क्षणेषु तां विगतरोषामकरोत्। परमपरपलेष्वेव प्रमदासमक्षकृतपणभङ्गग्लानि-मारनतः[1] श्लथपदोऽसौ स्वकक्षमुपगम्य दुर्बलतायै आत्मानं धिक्कुर्वन् निद्रार्थं निष्फलं प्रयतमानो मनस्यचिन्तयत्—"मानवमानसमपि कियद् दुर्बलम्। अहमल्पक्षणेष्वेव विचलितमना अभवम्। परं किं गृहकलिमपनेतुमनिताप्रसा-दोऽनिवार्यो नासीत्? एतस्या भ्रूकुटिपातं चिरं यावत्कथमुपेक्षेय। त्रिकटकाले प्रतिज्ञाभङ्गोऽपि नापत्करः। सपत्नीकलहः स्फुलिङ्गसमः। समयेचेन् न शाम्येत, सकलसदनं दहति। एवं तस्य विविधयुक्तिभिरात्मानं दोषमुक्तं प्रकुर्वत एव कुक्कुटो वाक्कर्तु मारेभे।

विद्योत्तमाऽनितामपि गर्भालङ्कृतां समीक्ष्यामोदकल्लोलस्नाता उभाभ्यां गर्भवत्यनुकूलखाद्यानि प्रददाना प्रसवमासानगणयत्। अनिता सपत्नीसमतुला-धिरूढा धोतेर्ष्यामला प्रमदामपि स्वानुभवं व्यञ्जयन्ती गर्भपोषणविधिमशिक्षयत्। प्रमदा मनस्यचिन्तयत् - "भर्त्रा ममापुत्रप्रसूतिं सपत्नीसङ्गवर्जनात्मकः पणोना-पालि। परमास्तां तावत्। नाहमुपालस्ये स्वामिनम्। साऽपि अहमिवैतस्मै स्निह्यति। एषणा[2] सकलमनस्सु समा विराजते। अहं पुत्रार्थमानायिषि, बालो ममैव गर्भादवतरिष्यति"। अम्बादत्तः प्रमदासमक्षं स्वात्मानं कृतापराध-मिव मन्यमानोऽपि गर्भजन्यकलहद्रावणात् प्रमुदितः आसीत्।

अथ मासगणना दिवसेष्वापतत्। उभयगर्भयोः केवलं पक्षमात्रान्तरालः। विद्योत्तमोभयप्रसूतिनिमित्तं कक्षद्वयं विनिश्चित्य लेपनादिना सुसज्जितमालभत। भास्करे उच्चराशिमास्थिते अनुराधायां गुरौ प्रातः प्रसूतिकक्षपरिगतप्रमदा-भर्तृश्वश्रूकामनाविपरीतां कन्यां सुषुवे। तस्मिन्नेवाह्नि प्रसूतिगन्धगृहीतैवानि-तापि प्रसवपीडानिगडिताऽपरकक्षे शिशुमसूत। दिग्दिनानि पूर्वमेव गर्भ-विमोचनादपुष्टबालको लघु निःश्वसन्नपि-अर्धकलां यावन्नारोदीत्। एतदन्तराले सरिति निमज्जन् नरस्तृणावलम्बनाय यथा विकलविद्योत्तमा भ्रष्टवस्तु गवेषयितुमिव द्रुतश्वासवहेतस्ततो बभ्राम। बालके प्ररुदिते सति प्रसूतिसम-यसमवेतललनाः पितामही-अनुक्ता अपि गीतानि गातुं प्रारेभिरे। तत्कक्षगीत-ध्वनिपूरितकर्णा करुणामूर्तिरिव प्रमदाऽभावग्रस्ता यथा रोदितुमारभत। तां साश्रुनयनां समीक्ष्य तत्परिचारिका धात्री द्रुतं तत्रोपगम्य प्राह—"पुत्रि, किं

1. प्रमदासमक्षं कृतस्य पणस्य भङ्गस्तस्य ग्लानिभारेण नतः।
2. एषणा—इच्छा।

धूप करो। दिल से निकाली को वाणी से क्यों तसल्ली देते हो। यह कुटिल नीति कहां से सीखी। पुरुषों की स्वार्थपरता को सारा संसार जानता है। आप जाओ, सुन्दरी प्रतीक्षा में है'। उसके वचन रूपी कांटों से बिंधे हृदय वाला अम्बादत्त मन में सोचने लगा-- 'दो पत्नियां रखने का कड़वा अनुभव आज पहली बार मुझे हुआ है। दो किश्तियों पर पैर रखने के समान दो पत्नियों को प्रसन्न करना आसान नहीं। वह (प्रमदा) भी इस के साथ बोलते हुए मुझ को टेढ़ी आंख से देखती है। प्रमदा के गर्भ को देख कर ही इसके हृदय को कांटा लगा है। उसे मैं पुत्रमुख देखने के लिये लाया हूं, बांझ के रूप में भोग के लिये नहीं'।

अनिता ने पांच दिन भोजन न कर के केवल पानी के सहारे ही समय बिता दिया। विद्योत्तमा से दिया गया दूध उस के होठों का समागम पाने के लिये देर तक प्रतीक्षा करता रहा। वह पास आई अरुणा-वरुणा को बिना कारण ही झिड़कती हुई अपने क्रोध को बाहर निकालती हुई मन में सोचने लगी—'मुझ मूर्ख ने अपने रास्ते में अपने आप ही कांटे बिछा लिये। पहले ही मजबूत प्रतिरोध क्यों नहीं किया। जब चोर घर में घुस गया तो सावधानता का क्या लाभ। काम बिगड़ने पर अकल आने का कोई फल नहीं'।

अम्बादत्त अनिता के अन्नत्याग से व्याकुल रात को मन में सोचने लगा। 'भोजन करने से दुर्बल शरीर वाली अनिता मरने को तैयार है। अगर यह मर गई तो 'दूसरी पत्नी की सहायता से सेठ ने पहली पत्नी को मार दिया' इस प्रकार की लोकनिन्दा से कैसे छुटकारा पाऊंगा। लोग प्रमदा पर भी लाञ्छन लगाएंगे। मैं इसको एकान्त में समझाऊंगा'। इस प्रकार सोचते हुए उसने पलंग के नीचे रखे लोटे से जल पिया और पक्के मन के साथ अनिता के कमरे में चला गया। परन्तु वहां पैर रखने के साथ ही उसके संयम का बांध, पानी के प्रवाह से रेत की दीवार के समान और वायु वेग से पेड़ की टहनी के समान टूट गया। अनिता के पहले समागमों का स्मरण करता हुआ वह काम के बाणों के प्रहार को न सह सका और कुछ ही क्षणों में अनिता के कोप को शान्त कर दिया। किन्तु कुछ ही पलों के बाद प्रमदा के आगे की गई प्रतिज्ञा के भंग से ग्लानिभार से झुका, ढीले पैर अपने कमरे में आकर दुर्बलता के लिये अपने को फटकारता हुआ नींद के लिये निष्फल प्रयत्न करता हुआ मन में सोचने लगा—'मनुष्य का मन भी कितना दुर्बल है। मेरा मन कुछ ही क्षणों में चञ्चल हो गया। परन्तु घर का झगड़ा दूर करने के लिये क्या अनिता को प्रसन्न करना जरूरी न था? इसके कोप को कब तक अनदेखा करता। संकट के काल में प्रतिज्ञा भंग भी बुरा नहीं। सौकन की कलह चिनगारी के समान होती

किञ्चित्कष्टमनुभूयते" ? प्रमदा—"नहि, न किञ्चित्, स्वस्थाहम्" ।" तद्ग्रह-स्यमवबुध्य परमनोभावविज्ञानकुशला धात्री अधिकं सम्पृच्छ्य, चतुरपाचिका पिष्टपचनघृतकरपट्टिकामधिकतापेन यथा तद्वेदनावर्धनं नावाञ्छत् । प्रमदा मन्त्रौषधिरुद्धवीर्या भुजगी प्रस्तरक्षेपकं दंष्टुं यथा भर्तारं भर्त्संयितुं समयं प्रत्यैक्षत । विद्योत्तमा उभे अपि वध्वौ प्रसूत्यनन्तरबलवर्धकखाद्यानि भेदवर्जम-भोजयत् ।

जन्मन एकादशवासरे बालकबालिकयोः युगपदेव नामकरणसंस्कारा-योजनमक्रियत । पण्डिता बालकनाम 'जातवेदः' कन्यायाश्च 'करुणेति' निरधारयन् । अम्बादत्तं वर्धापयितुं सोपहारं समायाताः सहस्रं जनास्तेनापि सविधि सत्कृतास्तं प्रशंसन्तो गृहानि न्यवर्तन्त । असौ कुसीदोन्मुक्ताधमर्णेभ्यो बालककन्याभ्यामाशिषो लेभे ।

पक्षमनु कक्षोपस्थितभर्तारं समीक्ष्य वर्षर्तुक्षुद्रनदे जलप्रवाहो यथा प्रमदा-नयनाश्रुनिर्झरोऽङ्कस्थकन्यां स्नापयितुमारेभे । अम्बादत्तः—"प्रमदे, एतत् किम् ? तवाक्षिसलिलं सन्तापयति मे स्वान्तम् । त्वमेवं विह्वला कथम्" ? प्रमदा "मम विकलतया भवतः किं प्रयोजनम् । प्रागेवेषुविक्षतां मां मा बिध्यतु भवानधिकं व्यङ्ग्यबाणैः । अम्भोधेरिव भवतः स्वार्थस्य न पारावारे । मम लावण्याकृष्टेन भवता मे पित्रोर्निर्धनतालाभमादाय तृष्णोपशमनायैवाह-मानायिषि न पुत्रार्थम्" । अम्बादत्तः – "प्रमदे, नैवम् । प्रमदा– नैवम् ? भवान् सुतार्थीचिन् मां समानीतवांस्तदा मे कन्या कथम् । सपत्न्यै चात्मजः कथम् ।' अम्बादत्तः—'प्रमदे, एतद्भाग्याधीनम्' । प्रमदा—"भाग्यवादेचेद् विश्वासः, अहं किमर्थं प्रवञ्चिता । ममाग्रतः प्रतिज्ञातस्य स्मरतु भवान् । पुत्रार्थं मामानीय भवानेनां कथमुपगतः । किं कश्चिद्भद्रपुरुषः स्थालीद्वये युगपद् भोजनं स्वदते ? वस्तुतः मानवानां कामुकताविराम एव न सम्भाव्यते । कान्त, अहं भवत्सदना-स्थाधुना सर्वं सहिष्ये । काममहं विर्धनतनया परं ममोज्ज्वलचरिताग्रतो भवत्स-म्पन्नता धूलिसमा" अम्बादत्तः शतगुलिकाविद्धोऽपि प्राणधरप्राणी यथा मर्मान्तिकपीडायुतः किमपि भाषितुमक्षमः पृष्ठपादं प्रत्यावर्तत । असौ मनस्य-चिन्तयत् –"अविवेकः परमापदां पदम् । सेतुबन्धे भग्ने यथा विनाशलीला नृत्यति एवं त्यक्तधैर्यं नरं विपदः परितः परिवारयन्ति । नाहं धृतिमधारयं न च संयमं प्रादर्शयम् । मातृप्रेरितप्रसुप्तविवेकेन पुन्नामनरकभीतेन मया

है। इसे समय पर शान्त न किया जाए तो यह सारे घर को ही जला देती है'। इस प्रकार अनेक युक्तियों से अपने को दोषमुक्त करते हुए ही मुर्गे ने वाङ् देना आरम्भ कर दी।

विद्योत्तमा अनिता को भी गर्भवती देखकर प्रसन्नता से भरी दोनों के लिये गर्भिणी के अनुकूल खान-पान देती हुई प्रसूति के महीनों को गिनने लगी। अनिता सौकन के बराबर तराजू पर बैठने से दूर हुई ईर्ष्या वाली प्रमदा को भी गर्भपालन की विधि सिखाने लगी।

प्रमदा मन में सोचने लगी—'पति ने मेरे लड़का होने तक सौकन से समागम न करने की प्रतिज्ञा को निभाया नहीं। पर कोई बात नहीं। मैं इसके लिये स्वामी को उलाहना न दूंगी। वह भी मेरी ही तरह इससे प्यार करती हैं। इच्छाएं सब के मन की एक जैसी ही होती हैं। मुझे पुत्र के लिये लाया गया है, लड़का मेरे ही गर्भ से आएगा'। अम्बादत्त प्रमदा के सामने अपने को अपराधी जैसा मानता हुआ भी गर्भ से पैदा हुए कलह के भाग जाने से प्रसन्न था।

अब महीनों की गिनती दिनों में आ गई। दोनों के गर्भ में केवल पन्द्रह दिन का अन्तर था। विद्योत्तमा ने दोनों के प्रसव के लिये दो कमरे निश्चित कर सफेदी आदि करवाकर उन्हें सजा दिया। सूर्य के उच्च राशि में आ जाने पर गुरुवार अनुराधा नक्षत्र में प्रसव कक्ष में गई प्रमदा ने पति और सास की आशा के विपरीत कन्या को जन्म दिया। उसी दिन प्रसव की गन्ध लगने से अनिता को भी प्रसव पीड़ा ने जकड़ लिया और वह दूसरे कमरे में जाकर सो गई। दाई के आने से पहले ही उसने दूसरी नारियों के सामने बालक को जन्म दे दिया। दस दिन पूर्व ही प्रसव हो जाने से अपुष्ट बालक हल्का सांस लेता हुआ भी आधी घड़ी तक रोया नहीं। इस अन्तराल में नदी में डूबता हुआ मनुष्य तिनके के सहारे के लिये जैसे विद्योत्तमा मानों किसी खोई वस्तु को ढूंढने के लिये हांपती हुई इधर-उधर घूम रही थी। बालक के रोने पर प्रसव समय पर इकट्ठी हुई महिलाओं ने दादी के बिना कहे ही गीत-गाना आरम्भ कर दिया। उस कमरे की गीतध्वनि को सुनकर करुणा की मूर्ति जैसे मानों किसी अभाव से ग्रस्त प्रमदा रोने लग पड़ी। उसे डुसकता हुआ देखकर उसकी सेविका दाई एक दम उसके पास आ कर बोली—'पुत्री, क्या कोई कष्ट हो रहा है'? प्रमदा—'नहीं' कुछ नही, मैं ठीक हूँ'। उसके रहस्य को जानकर दूसरों के मनोविज्ञान मे चतुर दाई ने उससे अधिक पूछकर, कुशल रसोइन तावे पर रखी पकी चपाती को अधिक आंच से जैसे उसकी पीड़ा को बढ़ाना ठीक न समझा। प्रमदा, मंत्र और औषध से रुकी शक्ति वाली सर्पिणी पत्थर फेंकने वाले को डंग मारने के लिये जैसे पति को फटकारने लिये समय की प्रतीक्षा

साक्षात्कलहनिरयः[1] समुपार्जितः। एतत्कटूक्तिषु वारिदवृन्दे[2] भास्कर इव सत्यं शेते। यावन्नेयं पुत्रवती, एतस्याः कटु-वाचः सहर्षं सहिष्ये"। एवमसौ दक्षिण-वाताहतो वामं वामपवनेरितश्च दक्षिणं नमन् वेणुपादप इवैकस्याः कटाक्ष-संलिप्तवाग्भिरपरस्याश्च व्यङ्ग्योक्तिभिर् नततामाप्त उभयप्रसादाय प्रयतमानः समयं निनाय। विद्योत्तमापि तयोः सपत्नीविद्वेषवारणकामा जातवेदं प्रमदाङ्के करुणाञ्चानितोत्सङ्गे निवेश्य स्तन्यं पातुं प्रैरयत्।

भास्करसाक्ष्ये वत्सराणां सार्धदशकद्वयं प्रययौ। प्रमदा न पुनर्गर्भं दधार। एतदभावप्रताडितायास्तस्याः प्राकृतिकसुषमाऽस्ताचलप्रयाणपरभानोः प्रभेव शनैःशनैर् मन्दतामभजत्। तत्कपोलरक्तिमा श्वेततामयात् तस्याः खञ्जना-क्षिणी अन्तः प्रयाते तद्धृदयव्यथां स्पष्टं व्यञ्जयामासतुः। अरुणाकरुणावरुणा अधीतविद्याः सम्पन्नसदनपरिणीताः यदाकदागत्य तद्गृहं भूषयामासुः। जातवेदः स्नातकोपाध्यलङ्कृतः, पितामहीप्रेरिततातेन द्वाविंशतिवर्षेएव भार्यासहा-योऽकारि। सत्कुलगुणालङ्कृतप्रेरणा नाम वधूः श्वश्रूसपत्नीमपि मातरमिव-मन्यमाना तन्निकेतनसुषमां स्वर्गसमां विरचय्य पूर्वजानामाशिषो लेभे।

षष्ठिसान्निध्यमाप्तमम्बादत्तं भार्याद्वयसमागमात्समयात्पूर्वमेव क्षीणबलं, समाहूतवार्द्धक्यं रोगमृगयुसङ्घे[3] मुख्यमान्यतायुतः[4] पक्षाघाताखेटकः[5] स्वप्रमादार्जितदौर्बल्यं तमुचिताखेटं[6] मत्वा भुजगो मण्डूकं पुच्छेन यथा शिखया जग्राह। धन्वन्तरिसमायुर्वेदविशारदैः कस्तूरिभैरवरससिन्दूरवातचिन्तामणि-प्रभृति उच्चौषधैः, ततश्च पाश्चात्यपद्धतिचिकित्सकैर् मांसपेशिप्रविष्टसूची-मुखोद्गिलितद्रवौषधैः, नवनवप्रचलितसूचीवेधचिकित्सया च चिकित्सितोऽपि पूर्वावस्थामनुपपन्नोऽसौ मूत्रपुरीषपरायत्तः शय्यामाशिश्रिये। तच्चिन्तित-प्रतिकूलं धनानि तद्रोगनिवारणे मैत्रीं नादर्शयन्। वयसोऽशीतिपदमारूढा विद्योत्तमा एतदवस्थागतं सुतं समीक्ष्याश्रूणि मुञ्चती स्वायुषो लम्बतां निनिन्द।

---

1. निरयः नरकः।
2. वारिदवृन्दे—मेघेषु।
3. रोगा एव मृगयवः व्याधास्तेषां सङ्घे समूहे।
4. मुख्यमान्यतायुतः शिरोमणिः।
5. पक्षाघातः—अर्धाङ्गनिश्चेतनता।
6. आखिट्यन्ते त्रास्यन्ते प्राणिनोऽत्रेति 'हलश्चेति' घञि आखेटः।

करने लगी। विद्योत्तमा दोनों बहुओं को प्रसव के अनन्तर देने योग्य वलवर्धक पदार्थ बिना भेदभाव देने लगी।

जन्म के ग्यारहवें दिन बालक-वालिका के नामकरण संस्कार का इकट्ठा ही आयोजन किया गया। पण्डितों ने बालक का नाम 'जातवेद' और लड़की का नाम 'करुणा' रखा! अम्बादत्त को बधाई देने के लिये भेंट सहित आए हुए हजारों लोग उससे सत्कार पाकर, उसकी प्रशंसा करते हुए घरों को लौट गये।

पन्द्रह दिन के बाद कमरे में आए पति को देखकर वर्षा ऋतु के नाले में पानी के प्रवाह के समान प्रमदा की आंखों का अश्रुप्रवाह गोद में ली कन्या को नहलाने लग पड़ा। अम्बादत्त— प्रमदा यह क्या ? तेरी आंखों का पानी मेरे हृदय को संतप्त कर रहा है। तुम इतनी व्याकुल क्यों ? प्रमदा —'मेरी विकलता से आप को क्या प्रयोजन। पहले ही तीरों से घायल हुई मुझको अब व्यङ्ग्य वाणों से और मत बींधो। सागर के समान आप के स्वार्थ का कोई पारावार नहीं। मेरी सुन्दरता पर मोहित हुए आप मेरे माता-पिता की निर्धनता का लाभ उठाकर अपनी प्यास बुझाने के लिये ही मुझे लाए थे पुत्र के लिये नहीं'। अम्बादत्त - 'प्रमदा, ऐसा नहीं'। प्रमदा—'ऐसा नहीं'। ? यदि आप मुझे पुत्र के लिये लाए थे तो मेरे लिये कन्या कैसे और सौकन के लिये लड़का कैसे'? अम्बादत्त 'प्रमदा, यह भाग्य के आधीन है :

प्रमदा—'यदि भाग्यवाद पर विश्वास है तो मुझे क्यों ठगा गया। मेरे आगे की गई प्रतिज्ञा को याद करो। पुत्र के लिये आप मुझे लाकर इसके पास कैसे चले गये। क्या कोई भला आदमी एक ही समय में दो थाली में भोजन करता है? वास्तव में पुरुषों की कामुकता का अन्त ही नहीं दिखाई देता। पतिदेव, मैं आप के घर में अब सब कुछ सहन करूंगी। मैं भले ही गरीब की पुत्री हूं परन्तु मेरे उज्वल चरित्र के आगे आप का ठाठ-वाट धूलि के बराबर है। अम्बादत्त सो गोली लगने पर भी जीवित प्राणी के समान मर्मान्तिक पीड़ा का अनुभव करता हुआ कुछ भी बोलने में असमर्थ पिछले पैर ही लौट गया। वह मन में सोचने लगा—'बिना सोचे काम करना विपत्तियों का घर है। पुल का बांध टूट जाने पर जैसे विनाशलीला नाचती है उसी प्रकार खोये धीरज वाले मनुष्य को आपत्तियां चारों ओर से घेर लेती हैं। न मैंने धीरज किया और न ही संयम का पालन किया। माता की प्रेरणा से सोए ज्ञान वाले मुझ ने पुन्नाम नरक से डर कर यह कलह का नरक पैदा कर लिया। इसके कड़वे वचनों में बादलों के समूह में सूरज के समान सचाई छिपी हुई है। जब तक इस के लड़का नही हो जाता मैं कटु वाणी को खुशी से सहन करता रहूंगा'। इस प्रकार वह दाईं ओर की वायु से बाईं ओर को और बाईं ओर

भ्रातृस्नेहविह्वला रेणुकापि नयनसलिलेन कक्षतलं सिषेच । अवाप्ततातरुग्णतावृतास्तिस्रोऽपि तनयाः परिचर्यायै उपस्थिता बभूवुः । एका मूत्रविमोचने, अपरा पुरीषोत्सर्गे, तृतीया निष्ठीवने साहाय्यमाचरत् । वधूः प्रेरणा तन्मुखकृततर्जनीका गण्डूषमकारयत् । जातवेदोऽपि यदा कदा तत्कक्षमायातो नासामुन्नमयन् पितुः स्वास्थ्यवृत्तमपृच्छत् ।

एकदा कक्षोपस्थितसुतमम्बादत्तः साश्रुनयनो मन्दवाचि प्राह—"पुत्र, संयोगो हि वियोगस्य संसूचयति सम्भवम् । अहमधुना प्रयाणपरः । सदनभरस्ते स्कन्धयोः । यः पूर्वजानां यशो न क्षिणोति स एव सत्पुत्रः। पितरः सुताचरितं परजन्मन्यपि निरीक्षन्ते । ते पितामही वृद्धा । ये मातृपितरः स्वजीवने पुत्रमरणमवलोकन्ते, तद्व्यथाभारं ब्रह्मापि न बोद्धुं क्षमः । (रुदन्) वत्स, मे प्रिया जननी यथा कष्टं नानुभूयात्तथा भवन्तः सर्वे प्रयतन्ताम् । तव द्वे मातरौ, ज्येष्ठा कनिष्ठा च । कनिष्ठयापि ज्येष्ठासमं व्यवहरस्व । करुणाभगिनीमपि अरुणावरुणासमामनुजानीहि । त्वं मद्यमांसधूमपानादिकलङ्कविमुक्तः सत्सङ्गपरायणः । एवंविधास्ते सुकृतयः परलोकोन्मुखस्य मे व्यथितहृदयं सान्त्वयन्ति । अधमर्णव्यवहारे मा भूः क्रूरमनास्त्वम् । कालोऽयं परिवर्तितः । ये ऋणदातारः ऋणिनः आजीवनं दासान् मन्यन्ते तेऽद्यावमानननापात्रम् । पुत्र, त्वमत्र नाभावं द्रक्ष्यसि । अहं ते मङ्गलाय प्रयत्नपरोऽवातिष्ठे । त्वं दरिद्रनारायणभूतये[1] प्रयतस्व । सत्कर्माण्येव परलोकमित्राणि न धनानि । अहं कोटिसम्पत्समन्वितोऽपि (प्रसारितकरं प्रदर्श्य) रिक्तपाणिः[2] प्रयामि (ततः शिरसि हस्तंनिधाय) अहं ते शतायुः कामये । मम प्राणेषु निर्गतेषु माभूः विकलस्त्वं वत्स, मा जहीहि धैर्यम् । ततो वामभागेऽनुभूततीव्रवेदनः पुत्रशीर्षाद्धस्तमपवार्य 'हे' ति वदन् पार्श्वं प्रत्यवर्तयत् । जातवेदस्तातोक्तं सादरं सङ्गृह्य सत्पुत्रपरिचयं प्रास्तौत् । तनयाय कृतं तदुपदेशमाकर्ण्य तत्रस्थाः सर्वेऽश्रूणि मुमुचुः ।

---

1. भूतये—मङ्गलाय ।
2. रिक्तपाणिः—शून्यहस्तः ।

की हवा से दाइ ओर को झुकते हुए बांस के पौदे के समान एक की कटाक्ष भरी वाणी से और दूसरी के व्यङ्ग्य वचनों से झुकता हुआ दोनों की प्रसन्नता के लिये प्रयत्न करता हुआ समय बिताने लगा। विद्योत्तमा भी उन के सौकन वैर को दूर करने की इच्छा से जातवेद को प्रमदा की गोद में और करुणा को अनिता की गोद में रखकर दूध पिलाने को कहती थी।

सूर्य की गवाही में पच्चीस वर्ष बीत गये। प्रमदा को फिर गर्भ न ठहरा। इस अभाव से प्रताड़ित उसकी स्वाभाविक कान्ति, अस्ताचल जा रहे सूरज के प्रकाश के समान धीरे धीरे मन्द पड़ने लगी। उसके गालों की लाली सफेदी में बदल गई। उस की खञ्जन पक्षी जैसी आंखें अन्दर को धंसी हुई उस की हृदय की पीड़ा को प्रकट करती थीं। अरुणा, वरुणा, करुणा शिक्षा प्राप्त करने के बाद सम्पन्न घरों में विवाही हुई कभी कभी आकर उस घर की शोभा को बढ़ाती थीं। बी. ए. पास जातवेद की शादी दादी के कहने से अम्बादत्त ने बाइसवें वर्ष में ही कर दी। श्रेष्ठ कुल के गुणों वाली बहू प्रेरणा सास की सौकन को भी माता के समान मानती हुई उस घर की शोभा स्वर्ग समान बनाती हुई बुजुर्गों का आशीर्वाद लेने लगी।

साठ वर्ष के पास पहुंचे अम्बादत्त ने दो पत्नियों के समागम से समय से पहले ही बुढ़ापा बुला लिया रोग-रूपी शिकारियों की टोली में मूर्धन्य (सरगना) माने जाने वाले पक्षाघात शिकारी ने अपनी भूल से दुर्बल बने उस को उचित शिकार समझ कर, सांप मेंडक को पूंछ से जैसे चोटी से पकड़ लिया। धन्वन्तरि के समान आयुर्वेद के पंडितों द्वारा कस्तूरी भैरव, रस सिन्दूर, वातचिन्तामणि उच्च औषधियों से और पाश्चात्य पद्धति के डाक्टरों द्वारा अनेक प्रकार के इंजेक्शनों से तथा नवप्रचलित सूचीवेध चिकित्सा के द्वारा भी वह पहली अवस्था में न आ सका और मल-मूत्र छोड़ने में पराधीन बिस्तर पर हो गया। उस के सोचे के प्रतिकूल रोगनिवारण में धन उस के सहायक न बन सके। अस्सी वर्ष की विद्योत्तमा अपने पुत्र की यह अवस्था देख कर रोती हुई अपनी लम्बी आयु को कोसने लगी। भाई के स्नेह से व्याकुल रेणुका भी आंखों के पानी से कक्षतल को धोने लगी। पिता की बीमारी का समाचार पा कर तीनों लड़कियां सेवा के लिये आ गईं। एक मूत्र करवाने में, दूसरी पुरीष उत्सर्ग में, तीसरी थूकने में सहायता करती थी। बहू प्रेरणा उस के मुख में तर्जनी कर के कुल्ला करवाती थी। जातवेद भी कभी-कभी उस कमरे में आकर पिता के स्वास्थ्य के बारे में पूछ लेता था।

एक बार कमरे में आए पुत्र को आंखों मे आंसू लिये अम्बादत्त ने मन्द आवाज में कहा—'पुत्र, जहां संयोग वहां वियोग अवश्य होता है। मैं अब

आत्मजोपदेशद्विकलानन्तरमेव विच्छिन्नखट्वामैत्रेयसम्बन्धः[1] पक्षाघाताखेटकेन चूषितसकलरुधिरः, भूतलशय्याश्रितोऽम्बादत्तो मनस्यचिन्तयत्—"परलोकसद्गतिमाप्तुकामः, पुन्नामनरकभीतोऽहं तनयार्थं प्रमदामानयम्। परं तत्समस्तयौवनं निपीयापि तां सुतालङ्कृतामीक्षितुं न प्राभवम्। अद्य प्राणावसानकालेऽपि एष ऋणभारो मे मरणव्यथां द्विगुणयति। सुखदुःखाम्भोधिरयं संसारः। इहैव नाकः[2] इहैव निरयः[3]। अहं पुरुषशरीरे मलमूत्रविमोचनपरतन्त्रो नरकार्णवनिमग्नो भवामि। एष एव पुन्नामनरकः। एतस्मात्पुत्रस्त्रायते पुत्री वैतदद्य सर्वसमक्षम्"। एवं विचिन्तयन् बान्धवकरग्राहितगोपुच्छः पुरतः स्थितप्रमदामक्षिपूरं निरीक्ष्य विगतचैतन्योऽनन्तकालविश्रान्तये नेत्रे न्यमीलयत्।

* * *

1. विच्छिन्नः भग्नः खट्वया पल्यङ्केन मैत्रेयसम्बन्धः मित्रता यस्य सः। भूतलशय्यागत इति भावः।
2. कं सुखं तद्विरुद्धमकं दुःखं, नास्त्यकमत्रेति नाकः स्वर्गः।
3. निर्गतः अयात् शुभादिति निरयः नरकः।

जाने वाला हूं। घर का भार तुम्हारे कन्धों पर है। जो पूर्वजों के यश को स्थायी रखता है वही अच्छा पुत्र समझा जाता है। माता-पिता पुत्र के आचरण को दूसरे जन्म में भी देखते हैं। तुम्हारी दादी बूढ़ी है। जो माता-पिता अपने जीवन में पुत्र का मरण देखते हैं उन की पीड़ा को ब्रह्मा भी नहीं जान सकता। (रोता हुआ) बच्चे, आप सब ने ऐसा प्रयत्न करना जिस से मेरी माता दुखी न हो। तुम्हारी दो माताएं है—बड़ी और छोटी। छोटी से भी बड़ी के समान व्यवहार करना। करुणा बहन को भी अरुणा-वरुणा के समान समझना। तुम मद्य, मांस, धूम्रपानादि कलंक से रहित हो इस प्रकार के तेरे अच्छे काम परलोक जा रहे मेरे पीड़ित हृदय को सांत्वना दे रहे हैं। कर्जदारों के लेन-देन में तुम ने क्रूर न बनना। अब समय बदल चुका है। जो ऋण देने वाले कर्जदारों को जीवन भर दास मानते हैं वह आज अपमान के पात्र हैं : पुत्र, तुम यहां किसी चीज की कभी न पाओ गे। मैं तुम्हारी भलाई के लिसे सदा प्रयत्न में रहा हूं। तुम ने दरिद्रनारायण के कल्यारण के लिये प्रयास करना। भले काम ही परलोक में सहायक होते हैं। मैं करोड़ो सम्पत्ति का मालिक होता हुआ भी आज (फैलाए हाथ को दिखा कर) खाली हाथ जा रहा हूं। (फ़िर सिर पर हाथ रख कर) मैं तुम्हारी सौ वर्ष की आयु की कामना करता हूं। मेरे प्राण निकलने पर तुमने घबराना नहीं पुत्र, धीरज मत छोड़ना। फिर बाएं भाग में तीव्र पीड़ा होने के कारण उस ने पुत्र के सिर से हाथ उठा लिया और 'हाय' कहते हुए पासा बदल लिया। जातवेद ने पिता के वचन को आदर के साथ ग्रहण कर अच्छे पुत्र का परिचय दिया। पुत्र के लिये किये उपदेश को सुन कर वहां बैठे सभी रोने लग पड़े।

पुत्र को उपदेश के दो घड़ी बाद ही अम्बादत्त का खाट से सम्बन्ध टूट गया। पक्षाघात शिकारी से चूसे गये सारे खून वाला वह भूतल शय्या पर आ गया और मन में सोचने लगा—'परलोक में सद्‌गति पाने के लिये पुन्नाम नरक से डरा हुआ मैं पुत्र के लिये प्रमदा को लाया था। परन्तु उस के सारे यौवन को पीकर भी मैं उसे पुत्र न दे सका। आज प्राणों के अन्त में भी यह ऋण का भार मेरी मरने की पीड़ा को दुगुना कर रहा है। यह संसार सुख-दुख का सागर है। यहीं स्वर्ग है, यहीं नरक है। मैं पुरुष के शरीर में मलमूत्र छोड़ने में पराधीन नरक समुद्र में पड़ा हुआ हूं। यही पुन्नाम का नरक है। इस से पुत्र रक्षा करता है या पुत्री यह आज सब के सामने हैं। यह सोचते हुए उस के हाथ में बन्धुओं ने गौ की पूंछ थमादी थी। उसने सामने खड़ी प्रमदा को आंख भर कर देखा। उस की चेतना चली गई और अनन्त काल के विश्राम के लिये अपने नेत्र बन्द कर लिये।

❁❁❁

सुतशाप:

दक्षिणस्यां ब्रह्मगिरिशिखरे आसीदेकः पुण्याश्रमः । तत्र वीतरागः, अननुभूतगृहस्थसुखः, विजितेन्द्रियः, षडरिवर्गापरिचितः, सकलशास्त्रतत्त्वज्ञः, विशालभालः, फलाहारानुप्राणितप्राणः[1], अस्थिमात्रशरीरः जन्ममरणबन्धनविमुक्तिकामः, नयनतेजसाश्रमान्धकारमपहरन्निव पीयूषपाणिर्नाम महात्मा न्यवसत् । तत्समीपमात्मज्ञानब्रह्मज्ञानद्वै[2]ताद्वैतावादजिज्ञासवो बहवो जनाः समागत्य विगतसंशयास्तं प्रशंसन्तो गृहाणि न्यवर्तन्त ।

एकदासौ पुण्याश्रमसन्निधौ गिरिप्रस्रवणसलिलेषु कृताभिषेकः, निवर्तमानः पादपतितशुकं कुटीरमानिन्ये । सृष्टो मानवसमशुकेतिहासपरिचितः, दयोपेतो महात्मा पयोबिन्दुभिरपगतबलमं 'भगवन्, नमाभ्यह' मिति मन्दवाचि भाषमाणं तमपृच्छत्—"शुक, किं ते नाम, का ते माता कश्च पिता । कुतः समायातस्त्वम् । शुकयोनिं कथमुपगत इति वृत्तजातं निगद्य परिहरतु नः कौतूहलम् । एते आगन्तुका अपि ते नरवाचं निशम्य जनितकुतूहला अधीरास्तवेतिहासं श्रोतुम् ।

शुकः प्राह—"भगवन्, भवन्तश्चेन्मयि कृतानुग्रहा, अहमुद्यतो मम जीवनरहस्यं भवत्समक्षं पटलीकर्तुम् । ममाभिधानं श्रुतवेदः । विदर्भेषु पण्डितमण्डल्यङ्कृतोऽस्त्येको देवपुरो नाम ग्रामः । तत्र विष्णुशर्मा नाम विप्रः प्रतिवसति । तस्य वसुमती नाम आर्या परमसाध्वी नारीसमवाये लब्धप्रतिष्ठास्ते । भर्तुश्चत्वारिंशत्—हायनेऽपि अलब्धापत्या विकलमानसा

---

1. फलाहारधृतप्राणः ।
2. द्विधा इतं द्वीतं तस्य भावः द्वैतम् (स्वार्थे अण्) 'किं शास्त्रं श्रवणेन यस्य गलति द्वैतान्धकारोत्करः' ।

पुत्र को शाप

दक्षिण में ब्रह्मगिरि शिखर पर एक पुण्याश्रम था। वहां रागहीन, गृहस्थसुख से दूर, इन्द्रियों को जीतने वाला, काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, ईर्ष्या से अपरिचित, सब शास्त्रों के तत्त्व को जानने वाला, बड़े मस्तक वाला, फल से ही प्राणों को धारण करने वाला, हड्डियों का ढांचा, जन्म-मरण के बंधन से मुक्ति चाहने वाला, नेत्रों के तेज से आश्रम के अन्धकार को दूर करता हुआ जैसे पीयूषपाणी नाम का महात्मा रहता था उसके पास आत्म-ज्ञान, ब्रह्मज्ञान, द्वैत अद्वैतवाद के जिज्ञासु बहुत से लोग आकर शंका मिटाकर उसकी प्रशंसा करते हुए घरों को लौटते थे।

एक बार पुण्याश्रम के पास पर्वत के झरनों के पानी में स्नान करके वापस लौटता हुआ वह पैरों में पड़े तोते को कुटिया में ले आया। संसार में मनुष्य के समान तोते के इतिहास से परिचित दयालु महात्मा ने जल की बूंदों से दूर हुई थकावट वाले 'भगवान, मैं नमस्कार करता हूं' इस प्रकार धीमी वाणी में बोलते हुए उस तोते को पूछा—'शुक, तुम्हारा क्या नाम है, माता-पिता का क्या नाम है, कहां से आये हो और तोते की योनि कैसे प्राप्त हुई इस प्रकार अपने सारे इतिहास को बताकर हमारी जिज्ञासा को पूरा करो। यह आगन्तुक भी आप की मनुष्य जैसी वाणी सुनकर कौतुक से भरे आपका इतिहास सुनने के लिये अधीर हैं।

तोता बोला—'भगवन, यदि आपकी मुझ पर कृपा है तो मैं अपने जीवन का पूरा रहस्य आप को बताता हूं। विदर्भ में पंडितमंडली से अलंकृत देवपुर नाम का ग्राम है। वहां विष्णुशर्मा नाम का ब्राह्मण रहता है। उसकी वसुमती नाम पत्नी का महिलाओं में बड़ा आदर था। पति को बियालीस वर्ष की आयु में भी सन्तान न होने से व्याकुल वह बोली—'पतिदेव, हम पुत्रहीन हैं। पिण्डदान कौन करेगा। उसके बिना मनुष्य की सद्गति नहीं होती। मैं देर से आपके दूसरे विवाह के लिये कहती हूं। परन्तु आप मानते नहीं। लोग दूसरे के पुत्र को भी दत्तकरूप में लेकर सुख पाते हैं। यदि आप मान जाएं तो मैं प्रयत्न करूं। विष्णुशर्मा 'कैसे'? वसुमती—'नन्दी ग्राम के निवासी सेवादास

पतिं प्राह—पतिदेव, आवां निष्पुत्रौ। पिण्डदानं कः करिष्यति। मरणमनु तद् विना न सद्गतिर् मानवानाम्। अहं चिराद् भवदपरपरिणयप्रयत्नपरा परं नाद्रियते मे वाग् भवद्भिः। लोका अपरतनयानपि दत्तकरूपेणात्मसात्प्रकुर्वाणाः सुखं लभन्ते। भवन्तश्चेदनुमन्येरन्-अहं प्रयतेय।' विष्णुशर्मा—'कथम् ? वसुमती 'नन्दीग्रामवास्तव्यसेवादासपत्नी यशोदा चतुस्तनयालङ्कृता पुनरपि गर्भिणी सन्निहितप्रसवाऽऽगामिशिशुं मे दातुं प्रतिजानाति। तस्याश्चेद्बालकः, आवामादास्यावः। विष्णुशर्मा 'प्रिये, औरसस्नेहः परजातात्कथम्'। वसुमती 'तस्मिन् नौ जन्मजातपितृत्वभावनामाप्तुमहमेकदिवसीयमेवानेष्यामि'। विष्णुशर्मा—'भवत्यैचेद् रोचते न मे कश्चित्प्रतिरोधः'।

विष्णुशर्मा षट्शास्त्रनिष्णातः, वेदवेदाङ्गपारगः, श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासविज्ञः, व्याकरणेऽपरपाणिनिरिव, गृहस्थाश्रमे निवसन्नपि तपःस्थलवासी यथाऽपररहस्यं ब्रुवाणः, अगैरिकेयोऽपि काषायवसनापन्नमहात्मसमसूक्ष्मेक्षणक्षमः, शास्त्रार्थेषु अननुभूतपराजयः, वेदोपनिषत्प्रवचनेषु लब्धख्यातिः, प्रश्नोत्तरार्थमायातमनांसि अन्तर्यामीव निबुध्यमानः, अनुक्तेऽपि त्रिकालवेत्ता यथार्थं सङ्गृह्णानः, सरस्वतीसमधिष्ठितवाग्[1] विदर्भाणां कीर्तिपुञ्जो यथा ज्ञायते। परं सुरम्यपुष्पेषु कण्टको यथा, सलिलवर्षणसुखदवारिदेषु अशनिरिव, चन्द्रमसि कलङ्कवन्नास्ति सोऽप्यनवगुणः[2]। तद् भालत्रिवलिवलये कोपो गुहायां मृगारिरिव सुगुप्तं विराजते। तच्चरणारविन्दोपस्थितशिष्याः भीतभीतास्तदुक्तार्थान् सादरं गृह्णन्ति। दुर्वाससो यथा तद्वाचि शापशङ्कितं निबुध्यमानजनास्तदादेशं नतमस्तका अङ्गीकुर्वन्ति। वसुमती लब्धावसरा भर्तारं शापवाचः वारयन्ती लोकप्रियावतिष्ठते।

---

1. सरस्वत्या समधिष्ठिता वाक् वाणी यस्य सः।
2. अनवगुणः—दोषमुक्तः।

की पत्नी यशोदा चार पुत्रों वाली आजकल फिर निकट प्रसव वाली अपने बच्चे को मुझे देने को कहती है। यदि लड़का होगा तो हम ले आएंगे' विष्णुशर्मा—'प्रिये, औरस पुत्र का प्यार दूसरी की कोख से जन्मे से कहां'। वसुमती—'उस में हमारी जन्मजात भावना को पूरा करने के लिये मैं उसे पहले दिन ही ले आऊंगी'। विष्णुशर्मा—'यदि आप को अच्छा लगता है तो मैं बाधक न बनूंगा'

विष्णुशर्मा छः शास्त्रों का ज्ञाता, वेदवेदांग को जानने वाला श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास का ज्ञाता, व्याकरण में मानों जैसे दूसरा पाणिनि, गृहस्थाश्रम में रहता हुआ भी तपःस्थल वासी की तरह दूसरों के रहस्य को समझने वाला, भगवां वस्त्र न पहने भी काषाय वस्त्र पहने महात्माओं के समान सूक्ष्म बातों को देखने वाला, शास्त्रार्थ में सदा विजयी, वेद-उपनिषत् प्रवचनों में प्रसिद्धिप्राप्त, प्रश्नोत्तर के लिये आये लोगों के मन को अन्तर्यामी के समान जानने वाला, बिना कहे भी त्रिकालवेत्ता जैसे अर्थ को ग्रहण करने वाला, जिह्वा पर सरस्वती को धारण करने वाला विदर्भ का कीर्ति समूह जैसे जाना जाता है। परन्तु सुन्दर फूलों में कांटे के समान, पानी बरसाने वाले सुखद बादलों में बिजली के समान तथा चन्द्रमा में कलंक के समान वह भी दोषहीन नहीं। उसके मस्तक के त्रिवलिकंकण, में क्रोध गुफा में शेर के समान गुप्त रूप से बैठा रहता है। उसके चरणों में आए शिष्य डरे हुए जैसे उसके बताए अर्थ को ग्रहण करते हैं। दुर्वासा की जैसे उसकी वाणी में शाप-शक्ति को जानते हुए लोग उसकी आज्ञा को सिर झुकाकर स्वीकार करते हैं। वसुमती अवसर पाकर पति को शापवाणी से हटाती हुई लोकप्रिय मानी जाती है। श्रावणी पूर्णिमा के दिन वसुमती आधी रात में पैदा हुए मुझको घड़ी के अन्दर ही अपने घर लाकर प्रसूतिपीड़ाओं के बिना ही मानों जैसे उसके प्रसव ही हुआ हो, चांदी की तारों से सजे लाल वस्त्र से मस्तक को लपेट कर मुझे छाती से लगाकर सरसों के तेल के दीपक से प्रकाशित कमरे में रखे पलंग पर लेट गई।

प्रभात में वसुमती के पुत्र होने का समाचार सारे क्षेत्र में फैल गया। सैंकड़ों लोग विष्णुशर्मा को बधाई देने के लिये आने लगे। महिलाएं दिन रात गीत गाने लगीं। वसुमती अपने स्तन से निकली दूध की धारा को देखकर सुखद आश्चर्य को मानती हुई मुझ रोते हुए को स्तन्यपान से सान्त्वना देने लगी। ग्यारहवें दिन नामकरण संस्कार में अच्छे वस्त्र-भूषणों से सजी हुई वसुमती

श्रावणीपूर्णिमायां वसुमती निशीथजातं मां कलाभ्यन्तरे स्वसदनमानीयाज्ञातप्रसववेदनापि जातप्रसूतिर्यथा रजतसूत्रालङ्कृतरक्तवसनावेष्टितभाला मां वक्षसालिङ्ग्य सर्षपतैलदीपप्रकाशितकक्षगतपल्यङ्के लुलोठ। प्रभाते वसुमतीशिशुजननसमाचारः सकलक्षेत्रे प्रासरत्। शतं जना विष्णुशर्माणं वर्धापयितुं समाययुः। महिला दिवानिशं गीतान्यगायन्। वसुमती स्तननिस्सृतपयोधारामालोक्य सुखदाश्चर्यं मन्यमाना रुदन्तं मां स्तन्यपानेनासान्त्वयत्। एकादशेऽह्नि नामकरणसंस्कारे सुवसनभूषणालङ्कृतवसुमती मामङ्के धारयन्ती प्रसवशुद्धये पण्डितपाणेर्गोमूत्रमाददानाऽऽनन्दसागरकृताभिषेका यथा मामुत्सङ्गगतं पुनः पुनरैक्षत। पण्डितो मे मुखेऽपि हरितदूर्वादलैर् धेनुमूत्रबिन्दूनपातयत्। तदा सोष्ठप्रचालनं मां रुदन्तमवलोक्य मे माता वसुमती मन्दस्मितं प्रादर्शयत्। पण्डिता मे ग्रहस्थितिं चिरं ध्यायन्तः परस्परं श्रवणेषु गुणगुणायन्तो मे तातं संशये न्यक्षिपन्। ततस्तातपृष्टः एकोऽभाषत-'भवदग्रतो नः प्रतिभा भास्करप्रकाशे खद्योताभा[1] यथा न स्थानमर्हति, तथाप्यहं किञ्चिद् विवक्षुर्भवामि'। विष्णुशर्मा—'वदन्तु भवन्तः'। ततोऽसौ कर्गलखण्डे विलिख्य तातं मे प्रादर्शयत्—'एष धुरन्धरपण्डितः सन् कस्यचिच्छापविद्धः शुकयोनिमुपगतः कतिचित्समानन्तरं पुनर्नरशरीरधरः सदनाप्तो विदर्भेषु ख्यातिमाप्स्यति। मम तातः शिरः प्रकम्प्य तदनुमोदनकरोऽभाषत—अहमुपचारेणानिष्टमिदं प्रतिरोत्स्यामि'। पण्डिता मे नाम 'श्रुतवेदः' इति निरधारयन्।

विष्णुशर्मनिकेतनेऽहं राजभवनसमसुखान्यन्वभवम्। धात्री प्रत्यहं तैलाभ्यङ्गमनु मां कवोष्णजलस्नापितं नववसनालङ्कृतं कुदृष्टिवारणाय मस्तकोणकृतकृष्णतिलकं वसुमत्यङ्केऽधारयत्। अहमपि लब्धनिधिरिव तया पुनः पुनरीक्ष्यमाणः कृतस्तन्यपानो दोलाधृतश्चिरमस्वपम्। तातो मामङ्कगतं वेद-ऋचोऽश्रावयत्। अहं बालखेलाभिः पितरौ प्रसादयन् सलिलाभिषिक्ततरुरिव दिनं दिनं ववृधे। पञ्चमहायने विष्णुशर्मा मे मुखात् संस्कृतश्लोकान् वाचयन् लोकान् विस्मापयन्[2] नवमेऽब्दे यज्ञोपवीतसंस्कारसंस्कृतं मामष्टाध्या

---

1. खद्योतः--प्रकाशयानजीवः (ज्योतिरिङ्गणः)
2. विस्मापयन्-विस्मये पातयन्।

'विस्मापयन् विस्मितमात्मवृत्तौ सिंहोरुसत्त्वं निजगाद सिंहः'
(रघुवंशम्)

मुझे गोद में लेकर प्रसव शुद्धि के लिये पंडित के हाथ से गोमूत्र को लेती हुई मानों आनन्द सागर में स्नान किये हुए जैसे गोद में लिये मुझे बार-बार देख रही थी। पंडित ने मेरे मुख में भी हरी दूब से गोमूत्र के बिन्दु गिराये तब होंठ चलाने के साथ-साथ मुझे रोता हुआ देखकर वसुमती मुस्कराई थी। पंडितों ने मेरी ग्रहस्थिति को देर तक सोचते हुए परस्पर कानों में गुण-गुणाते हुए मेरे पिता को संशय में डाल दिया। तब पिता के पूछने पर एक बोला—'आप के आगे हमारी बुद्धि सूर्य के प्रकाश में जुगनू की चमक के समान स्थान न पा सकती है। तो भी मैं कुछ कहना चाहता हूं'। विष्णु शर्मा –'आप बोलिये'। तब उसने कागज के एक टुकड़े पर लिखकर मेरे पिता को दिखाया—'यह धुरन्धर पंडित बनकर किसी के शाप से तोते की योनि में पड़कर कुछ वर्षों के बाद फिर नर शरीर को धारण कर घर में आया हुआ विदर्भ में प्रसिद्धि पाएगा'। मेरे पिता ने सिर हिलाकर उसका अनुमोदन करते हुए कहा—'मैं उपचार के द्वारा इस अनिष्ट को रोक लूंगा'। पंडितों ने मेरा नाम 'श्रुतवेद' रखा।

विष्णुशर्मा के घर में मुझे राजभवन के समान सुख मिलने लगा। दाई हर रोज मालिस के बाद मुझे कोसे जल से नहला कर अच्छे वस्त्र पहना कर बुरी नजर हटाने के लिये मेरे माथे के कोणे में काला तिलक लगा कर वसुमती की गोद में रख देती थी। मैं भी जैसे मुझे कोई संपदा मिल गई हो, उससे बार बार देखा जा रहा, स्तन्यपान कर के झूले में देर तक सोया करता था। अपनी बाल खेलाओं से माता पिता को प्रसन्न करता हुआ मैं पानी से सींचे पेड़ के समान दिन दिन बड़ा होने लगा। पांचवें वर्ष में विष्णु शर्मा मेरे मुख से संस्कृत के श्लोक बुला कर लोगों को विस्मय में डालता हुआ, नौमें वर्ष में मेरा यज्ञोपवीत संस्कार करवा कर मुझे अष्टाध्यायी पढ़ाने लग पड़ा सोलहवें वर्ष में मैं सारे शास्त्र पढ़कर शास्त्रार्थों में पिता की सहायता करने लगा।

एक बार प्यार भरी वसुमती, लकड़ी की चौकी पर बैठे हुए कठोपनिषद् पढ़ते हुए मुझ को बोली –'बच्चे, तुम मेरे प्राणों से प्यारे पुत्र हो। तुम्हारा मुखड़ा देखने में दो घड़ी का व्यवधान भी मुझ से सहा न जाता है। मैं तुम्हें एक रहस्य बताती हूं'। मैं—'हां माता जी, आप बोलो। माता के वचन शहद से भी मीठे होते हैं'। वसुमती—'पुत्र, तुम मेरे औरस पुत्र न हो। तो भी तुम मुझे माता और मैं तुम्हें पुत्र समझती हूं'। मैं सुन कर अचम्भे में

यीमध्यापयितुं प्रारेभे। षोडशहायनोऽहमधीतसकलशास्त्रः शास्त्रार्थेषु पितृ-सहायकोऽवातिष्ठे ।

एकदा वसुमती करधृतकठोपनिषदं काष्ठासनस्थं मां स्नेहविह्वलाऽभाषत –'पुत्र, त्वं मे प्राणसमः सुतः । तव मुखावलोकने द्विकलान्तरालोऽपि मेऽसह्यो जायते । अहं ते रहस्यमेकं ब्रवीमि । अहं—'मातर्, भणतु, भणतु भवती । जननीवचांसि मधुनोऽपि मधुरतराणि'। वसुमती—'पुत्र, त्वं न मे औरसःसुतस्तथापि त्वं मां मातरमहञ्च त्वां पुत्रं बुध्ये' । अहं निशम्य विस्मितः 'हुं मातर् भवती मां नासूत ? नाहं ते स्तन्यपुष्टस्तनयः ? नहि जननि, नहि । त्वमुपहासपरा' । वसुमती-(मनसि) 'हा । मया किं कृतम् । निजे पादे स्वयं कुठाराघातः'। ततस्तथ्यनिगूहनेप्सया मां वक्षसाऽऽलिङ्ग्य (प्रकाशम्) 'आं, वत्स, त्वं मे स्तन्यवर्धित उदरजः सुतः । अहं ते जन्मदात्री पुत्र'. । एवं भाषमाणा सा मे मस्तकं चुचुम्ब ।

मातृशब्दैर् मे मस्तिष्कतन्तवः शल्यचिकित्सा-कर्तिकास्पर्शेन यथा विशृङ्खलतामिव प्रययुः । लुप्तनिधिं गवेषयितुं यथा विकलोऽहं मचिन्तयम्—'भवतु न वा भवतु । नाहं वसुमत्याः कुक्षिप्रसूतात्मजः। नन्दीग्रामवासिनी यशोदा मां निर्निमित्तं स्पृशन्ती निर्निमेषं कथमवलोकते । मां निरीक्ष्यानायासं तन्नयनयोरश्रूणि कथं प्रादुर्भवन्ति। किमहं तदुदराज्जातः ? वसुमतीवचः वसनान्तर्गतघासलम्बकमिव मामविराममतुदत् । मां विरक्तमालोक्यात्मबलेनावगतवृत्तोऽपि विष्णुशर्मा वसुमतीं प्राह —'श्रुतवेदः किमर्थमुदासीन इवालोक्यते । किं त्वयाऽभाणि कटु किञ्चित्' ? वसुमती—(निजमानसिकदौर्बल्याहता भर्तृ-कोपभीता वेपमाना--'मया प्रमादवशाद्रहस्यं विवृतं यत्त्वं न मे औरसात्मजः' । विष्णुशर्मा—(नयनतेजसा तां दग्धुकाम इव) 'त्वया जडया जडताश्रिता । न वाच्यावाच्यविवेकस्ते । सुधियः सत्यं वदन्ति—'वचो न नार्या हृदये स्थिरं स्यात्' । ततस्तातो मे संशयवारणाय मां विविधं प्राबोधयत। मम वैराग्यवारणाय पितरौ अष्टादशाब्दे मां भार्यासहायमकुरुताम् । मम पत्नी सुन्दरी प्रज्ञावती श्वशुरपरिचर्यापरायणा शुभगुणगणभूषिता श्वशुरालये भूरि भूरि प्रशंसां लेभे ।

ग्रहस्थितिजनितकुसङ्गयोगादहं मद्यमांससंलिप्तो यामिन्यां चिरादायातस्तातप्रताडनामुपेक्षमाणः पुनरपि तथाचरन् सभार्यपित्रोः मानसकण्टकोऽजाये ।

'हैं, माता तुम ने मुझे जन्म न दिया है ? मैं तुम्हारे स्तन के दूध से पला पुत्र न हूं ? नहीं माता नहीं, तुम मजाक करती हो'। वसुमती—(मन में) 'हाय मैंने क्या किया। अपने पैर में आप ही कुल्हाड़ी मार ली'। फिर सचाई को छिपाने की इच्छा से मुझे छाती से लगाकर (प्रकट) 'हां बच्चे, तुम मेरी कोख से पैदा हुए और मेरे ही स्तन के दूध से पले पुत्र हो। पुत्र. मैं ही तुम्हें जन्म देने वाली हूं'। इस प्रकार कहते हुए उसने मेरे माथे को चूम लिया।

माता के शब्दों से मेरे दिमाग के तन्तु आपरेशन की कैंची के स्पर्श से जैसे बिखर गये। खोये खजाने को ढूंढने के लिये जैसे व्याकुल हुआ मैं मन में सोचने लगा—'हो न हो मैं वसुमती की कोख से जन्मा पुत्र न हूं। नन्दी ग्राम की यशोदा मुझे बिना कारण ही छूती हुई बिना पलक झपके क्यों देखती है। मुझे देखकर उस की आंखों से अनायास ही आंसू कैसे निकल आते हैं। क्या मैं उसके पेट से पैदा हुआ हूं'? वसुमती का वचन कपड़े के बीच घुसे घास के लम्ब (कांटा) के समान मुझे लगातार चुभने लगा, मुझे विरक्त देख कर आत्मबल से सारा समाचार जान कर विष्णुशर्मा वसुमती को बोला 'श्रुतवेद उदास क्यों है। क्या तुम ने उसे कुछ कड़वा बोला है'? वसुमती—(अपनी मानसिक दुर्बलता से प्रताड़ित, पति के कोप के भय से कांपती हुई) 'मैंने भूल से रहस्य खोल दिया कि तुम मेरे औरस पुत्र न हो'। विष्णुशर्मा (नेत्रों के तेज से मानों उसको जलाता हुआ जैसे) 'तुझ मूर्ख ने मूर्खता की। तुझे वाच्य अवाच्य का ज्ञान नहीं। पण्डित लोग सच कहते हैं नारी के हृदय में बात नहीं टिकती है'। फिर पिता मेरा संदेह दूर करने के लिये मुझे अनेक प्रकार से समझाने लगा। मेरी उदासी दूर करने के लिए माता-पिता ने अठारहवें वर्ष में ही मेरी शादी कर दी। शुभ गुणों से विभूषित, सास-ससुर की सेवा में लगी मेरी सुन्दर पत्नी प्रज्ञावती ने सुसराल में बहुत प्रशंसा पाई।

ग्रहों के स्थिति के प्रभाव से कुसंग में पड़ा मैं मद्य-मांस के मोह से ग्रस्त रात को देर से घर आया हुआ पिता की प्रताड़ना की अनदेखी कर बार-बार वैसा करता हुआ पत्नी और माता पिता के मन का कांटा बन गया। एक बार मद्यपान से चेतनाहीन उसी प्रकार के मित्रों द्वारा घर पहुंचाया हुआ मैं, प्रज्ञावती और माता-पिता के दुख का कारण बना। शराब पीने के उन्माद से ग्रस्त, खाली हाथ मैंने एक बार अपनी पत्नी के चूड़ामणि को नगर में सुनार के पास

एकदा मद्यपाननिश्चेतनोऽहं तथाविधसहचरैः सदनं प्रापितः प्रज्ञावत्यै पितृभ्याञ्च दुःखमजनयम् । मद्यपिपासोन्मादग्रस्तोऽहमेकदा पणकशून्यो मे भार्याचूडामणिं नगरे पश्यतोहरपार्श्वे व्यक्रीणाम् । अपरमासे पितृनिलयगमनोद्यतप्रज्ञावती अनुपलब्धचूडामणिर् विलपन्ती मे पितरौ न्यवेदयत् । तातो योगबलेनावगतरहस्यः सुवर्णकारानीतचूडामणिं प्रज्ञावत्यै प्रददानो मामभर्त्सयत् । मम पत्नी प्रज्ञावती पूर्ववयसि वर्तमानापि भारतीयनार्या उदात्तचरितं प्रदर्शयन्ती मे धूमपानजनितरदनमालिन्यं, मद्यपाननिस्सृतदुर्गन्धं, मांसभक्षणाशुचितां, निशीथागमनं स्तेयताञ्च गिरिराजशिला वर्षर्तुधारासारप्रताडनां यथा मौनेनासहत ।

एकदा समांसपिण्डे मयि सदनप्रविष्टे मे पित्रोः क्षोभस्य नास्तां पारावारे । मां शप्तुमुद्यतं तातं जननी परमायासेन न्यवारयत् । पिता मे प्रसूं प्राह—'वसुमति, एष कण्टकसमसुतः श्रुतवेदो मे यशसि कलङ्क इव । एवंविधमद्यपायिभर्तृसङ्गे परकीयतनया अपि दुःखं भुञ्जन्ति । प्रज्ञावती एतत्सहाया कथं कालं नेष्यति' । वसुमती 'भर्तः, भवन्तो न केवलं सकलशास्त्रतत्त्वज्ञा अपितु त्रिकालवेत्तारोऽपि . एतज्जन्मपत्रं निरीक्ष्य सद्बुद्धये उपायचिन्तनपरा भवन्तु' । विष्णुशर्मा—'ग्रहकुटिलगतिवारणार्थं विहितयत्ना विफलतामाप्ताः । तव रहस्यविवृतिकालादेवास्य बुद्धिर्मालिन्यमाश्रिता । अयं चेन्न सन्मार्गमायातः, अहमेनं शपिष्ये' । वसुमती—'हा' भवान् कीदृशस्तातः । स्वात्मजमेव शप्तुमुद्यतः ? विष्णुशर्मा 'सुतशापे किमद्भुतं निरीक्षसे ? वसुमति, स्वीयानामपराधनिगूहनेनैव[1] राज्येषु दुर्वृत्तानि प्रसरन्ति । गेहपालितः कुक्कुरश्चेत् दंष्टुमायाति, किमसौ क्षमार्हः ?

अपरवासरे सुरापणे निपीतमद्योऽहं विलुप्तमतिरुच्चावचं भाषमाणो मार्गे विडालाक्रान्तप्राणशुकहस्तः सदनाप्तः प्रज्ञावतीं निर्निमित्तं प्रताडयितुमारभे ।

---

1. अपराधनिगूहनेन—अपराधगोपनेन ।

बेच दिया। दूसरे महीने मायके (पितृघर) जाने को तैयार प्रज्ञावती चूणामणि को न पाकर रोने लगी और माता-पिता को बता दिया। पिता ने योगबल से जानकर सुवर्णकार से चूणामणि को लाकर प्रज्ञावती को दे दिया और मुझे बहुत फटकारा। मेरी पत्नी प्रज्ञावती प्रथम अवस्था में वर्तमान भी भारतीय नारी के उत्कृष्ट चरित्र को दिखाती हुई मेरी धूम्रपान से पैदा हुई दान्तों की मलिनता को, मद्यपान से निकलती दुर्गन्ध को, मांसभक्षण की अपवित्रता को, आधी रात में आने को और चोरी को पहाड़ की शिला वर्षा ऋतु की मुसलाधार वर्षा की प्रताड़ना को जैसे चुपचाप सहती रही।

एक बार मांसपिण्ड के साथ मेरे घर आने पर माता-पिता के क्षोभ का कोई पारावार न था। मुझे शाप देने को तैयार पिता को माता ने बड़ी कठिनाई से रोका। पिता ने मेरी माता को कहा—'वसुमती, यह कांटे जैसा श्रुतवेद मेरी कीर्ति में कलंक जैसा है। इस प्रकार शराबी पतियों के साथ दूसरों की लड़कियां भी दुःख भोगती हैं। प्रज्ञावती इसके साथ कैसे समय बिताएगी'। वसुमती—"पतिदेव, आप केवल सब शास्त्रों के ज्ञाता ही नहीं बल्कि तीनों कालों के ज्ञाता भी हैं। इसके जन्म पत्र को देखकर इसकी सदबुद्धि के लिये प्रयत्न करें'। विष्णुशर्मा—'ग्रहो की कुटिल चाल के निवारण के लिये किये गए सभी प्रयास निष्फल हो गये। जब से तुमने रहस्य खोला है, इसकी बुद्धि मलिन हो गई है। यदि यह ठीक रास्ते पर न आया तो मैं इसे शाप दे दूंगा'। वसुमती—'हाय, आप कैसे पिता हैं। अपने पुत्र को ही शाप देने को तैयार हो'? विष्णुशर्मा—'पुत्र को शाप देने में तुम क्या आश्चर्य देखती हो'? वसुमती, अपने लोगों के अपराध को छिपाने से ही राज्यों में बुराइंयां फैलती हैं। घर का पालतू कुत्ता यदि काटने को आए तो क्या उसे क्षमा कर देना चाहिये'।

दूसरे दिन शराब की दुकान पर मद्यपान करके भ्रष्ट बुद्धि वाला ऊंच-नीच कहता हुआ मैं रास्ते में बिलाव के आक्रमण से प्राणशेष तोते को हांथ में लेकर घर आया और प्रज्ञावती को बिना कारण ही पीटना आरम्भ कर दिया। मेरे अपराध को देखकर गुस्से में पिता के होठ फड़कने लगे और आंखे लाल हो गई। उसने मुझे इस प्रकार शाप दे दिया—'तुम इस समय हाथ में तोता ले कर आए हो इस लिये तुम तोते की योनि में चले जाओ। जन्म क्षणों से लेकर इस समय तक का सारा वृत्तान्त दूसरों को सुनाने के लिये तुम्हारे स्मृतिपटल में स्थिर रहेगा। विवाह के समय पत्नी के प्रति सप्तसदी की प्रतिज्ञाओं को

अवलोकितापराधस्तातः कोपप्रस्फुरिताधरो रक्तलोचनः पुनः पुनः प्रमादपरं मामेवमशपत—'त्वमेतत् क्षणेषु शुकहस्तः, अतोऽवाप्नुहि कीरयोनिम्। जन्मक्षणेभ्य एतदवधीयमुदन्तजातमपरान् श्रावयितुं ते स्मृतिपटले स्थिरं स्थास्यति। त्वं परिणयक्षणेषु भार्यायै सप्तपदीप्रतिज्ञातं न पर्यपालयः, अतो यदा कश्चिद् भारतपण्डितस्तद्भिन्नबृहत्सप्तपदीं[1] त्वां श्रावयिष्यति तदा शापोन्मुक्तो नरकलेवरधरस्त्वं सदनाप्तो मातरं भार्याञ्च पुनरवलोकमानो विदर्भेषु अहमिव ख्यातिमाप्स्यसि। ततोऽहं तेषां पश्यतामेव नररूपं विहाय शुकयोनिमाप्तो भार्याजनन्योर्विलापश्रवणेप्सया तातोद्यानपादपे सुगुप्तमास्थितः। अपरशुकोऽपि पित्रा कमण्डलुजलाभ्युक्षितगात्रोऽधिगतप्राण-उड्डीय स्वेच्छं प्रययौ।

मम शुकयोनितामवलोक्य माता वसुमती भृशं विलपन्ती तातमुपालभत—'भवान्न केवलं क्रूरस्तातोऽपितु निष्करुणभर्ताऽपि। प्रस्तरहृदयो भवान् मामपि शपताम्। नाहं क्षमा सुतवियुक्ता प्राणान् धर्तुम्।' विष्णुशर्मा—'वसुमति, मम सदनं न विश्रमस्थली। एतत्पूतं सरस्वतीमन्दिरम्। प्रिये, पश्य। असौ समयः साम्प्रतं दूरस्थो यदाऽऽचार्या निपीतमदिराः देवेतरमतिमाश्रिताः, विद्यामन्दिरधृतपदाः, मद्यावद्यगन्धदूषितकक्षाः, शिष्यमनोगतमादरं लघयन्तः, जघन्यादर्शं प्रस्तुवन्तः, अन्तेवासिधमनीषु मद्यानुकरणकीटाणून् प्रवेशयन्तो देशमिमं दूषयिष्यन्ति'। ततो वसुमती गोपनीयानावरणोपालम्भभीता हृदयं संस्तभ्य मानसव्यथां केवलमश्रुभिर्बहिः प्रवाहयितुं प्रयत्नपराऽत्रातिष्ठत। मम भार्या प्रज्ञावती श्वशुरपादपतिताऽश्रुप्रवाहक्षालिततच्चरणा व्यलपत्—'हे तात, अहं भर्तारं विना कथं जीविष्यामि। असौ पुनरधिगतमानवदेहः कदाऽऽगमिष्यति। पितृदेव, मामपि शपन्तां भवन्तो येनाहं सारिका सती स्वामिमार्गमनुसरेयम्'। अनलप्रचण्डतापतप्तं लोहं यथा पुत्रवधूनयनसलिलसंतापद्रवितहृदयो विष्णुशर्मा प्राह—'पुत्रि, समाश्वसिहि। तवाभीलं[2] निरीक्ष्यैव ममायमारम्भः। तव

1. बृह—वृद्धौ अस्मात् वर्तमाने "पृषद्बृहन्महत्" इति अति प्रत्ययान्तोनिपात्यते। "विशंकटं पृथु बृहद्विशालं पृथुलं महत्" (इत्यमरः) बृहत् इति दन्त्योष्ठ्यादिप्रयोगोऽपि बहुलं दृश्यते। बृहू उद्यमने (तुदादिगणीयः)

2. आभीलं—कष्टम्

तुम ने पूरा न किया इसलिये जब कोई भारत का पण्डित उससे भिन्न बृहत्सप्त-पदी तुम्हें सुनाएगा तो तुम शाप से छूटकर नर शरीर में घर आकर माता और पत्नी को देखते हुए विदर्भ में मेरे ही समान प्रसिद्धि पाओगे' । फिर मैं उनके देखते ही देखते मनुष्य रूप छोड़कर तोता बन गया और अपनी पत्नी तथा माता के विलाप सुनने के लिये पि ा ी बगीचों के पेड़ पर गुप्त रूप से बैठ गया। दूसरा तोता भी पिता के द्वारा कमण्डलु जल के छींटों से आये प्राणों वाला अपनी इच्छा से उड़कर चला गया।

मेरी शुक योनि को देखकर माता वसुमती लगातार विलाप करती हुई पिता को उलाहना देने लगी—'आप केवल क्रूर पिता ही नहीं बल्कि निर्दयी पति भी हैं। आपका हृदय पत्थर का है, मुझे भी शाप दे दो। मैं पुत्र के बिना जीवित न रह सकती हूं' । विष्णुशर्मा—'वसुमती, मेरा घर विश्राम का स्थल नहीं, यह पवित्र सरस्वती मंदिर है। प्रिये ! वह समय अभी दूर है जब गुरु लोग शराब पीकर देवताओं से भिन्न बुद्धि को लिये हुए, विद्या मन्दिर में प्रवेश करके मद्य की घिनौनी गन्ध से कमरों को दूषित करते हुए, शिष्यों के मन में अपनी गरिमा को घटाते हुए, घटिया आदर्श दिखाते हुए, शिष्यों की नाड़ियों में शराब और नकल के कीटाणुओं को धकेलते हुए इस देश को दूषित करेंगे' । तब वसुमती रहस्य के खोलने के उलाहना से डरी हुई दिल थाम कर मन की पीड़ा को केवल आंसुओं से ही बाहर निकालने का प्रयत्न करने लगी। मेरी पत्नी प्रज्ञावती ससुर के पैरों पर गिरी, आंसुओं के प्रवाह से उस के चरणों को धोती हुई विलाप करने लगी—'हे पिता जी, मैं पति के बिना कैसे जीऊंगी। वह फिर मानव शरीर पा कर कब लौटेगा। हे पितृदेव, आप मुझे भी शाप दे दो जिस से मैं सारिका बन कर पति के मार्ग पर चली जाऊं' । आग के प्रचण्ड ताप से तपे लोहे के समान, बहू के नेत्रजल के संताप से पिघले दिल वाला विष्णुशर्मा बोला—''पुत्री, धीरज कर। तेरे संकट को देख कर ही मैंने यह सब कुछ किया है। तेरा पति देश में अनेक महात्माओं के दर्शन से असुर बुद्धि को छोड़ कर देवताओं की बुद्धि को धारण कर सात साल के बाद मनुष्य के शरीर में तेरे पास आ जाएगा' । फिर ससुर के चरणों पर से उठी हुई वह मन में सोचने लगी—'कोई बात नहीं, मेरा ससुर महर्षि के समान तीनों कालों का ज्ञाता है। सात वर्षों का समय कोई बहुत लम्बा नहीं। उर्मिला ने लक्ष्मण के वियोग में चौदह वर्ष बिताए थे। मैं

भर्ता देशे विविधमहात्मसङ्गप्रभावविमुक्तासुरमतिर् विबुधबुद्धिमाश्रितः सप्त-वत्सराननु नरकायधरस्ते समीपमायास्यति' ततः श्वशुरचरणोत्थिता साऽचिन्तयत् —'आस्तां तावत् । मम श्वशुरो महर्षिसमस्त्रिकालज्ञः । सप्तसमानां नायं दीर्घकालः । उर्मिला सौमित्रिविरहे चतुर्दशहायनान्यनयत् । अहमपि तद्वदेव श्वशुरसेवापरा, एकवेणीधरा, भूतलशय्याश्रिता, एकाहारा पत्युः पुनरागमनाय देवानाराधयन्ती सप्तशरद्वियोगं सहिष्ये" ।

कतिचित्क्षणान् विश्रम्य शुकः पुनः प्राह —"एवमाकर्णितभार्याजननीविलापोऽहं मे तातमन्दिरं नमस्कृत्य खगयात्रां प्रारभे। महात्मन् सागरसरित्तटेषु गिरिशिखरकन्दरोपत्यकाधित्यकासु विजनवनेषु, मठेषु, कोटिकोटिजनवन्दनीयतीर्थेषु विराजमानाः सकलाश्रमा मयाऽवागाहिषत । गैरिकवसनालङ्कृतब्रह्मचारिणः, वानप्रस्थिनः, संन्यासिनः, पञ्चाग्नितपस्यारताः, द्वादशवर्षाणि एकपदभूमिस्पर्शव्रतधराः, त्रिकालसंध्योपासनापणं प्रपालयन्तः, सस्वरं वेदमन्त्रोच्चारणपराः, निखिलवेदाङ्गज्ञानधराः, ब्राह्मतीर्थमात्रसलिलेन[1] पिपासां शमयन्तः, मण्डलमहामण्डलेश्वराः मया सकरुणं प्रार्थिता अपि मे विवाहवर्जितबृहत्सप्तपदीमुदाहर्तुं नापारयन् । विगतवत्सरे विन्ध्याचलतटगतमठाधीशो मृगुदासो मामाह —"त्वं षण्मासान् ममाश्रमद्वारस्थ आगन्तुकानां मधुरवाग्भिः स्वागतं व्याहरन् बृहत्सप्तपदीश्रवणाधिकारी स्थास्यसि' । अहमाशाग्रहग्रस्तस्तथैवाचरम् । परं पण्यमादाय नदीपारमनयता नाविकेन यथा तेन प्रतारितोऽहं पुनर् यात्रापरो भवामि । भगवन्, सप्तसमा अविरामं शीतातपौ, उपलपातं, झंझावातान्, क्षुधातृषे सहमानः क्लान्तोऽहं साम्प्रतम् । प्राणा भारभूता मे । न जाने, मे विरहविकला युवती भार्या मम वृद्धपितरौ परिचरितुं जीविता न वेति । अहञ्चेन्नरशरीरधरः, मे पित्रोराज्ञाकारितां भार्यायाश्च श्रेष्ठभर्तृत्वं प्रतिजानामि । भगवन्, बृहत्सप्तपद्युपदेशेनोद्धर मां सङ्कटसागरात ।"

ततः करुणालिप्तमानसो महात्मा पीयूषपाणिः कलामात्रं विचिन्त्य कीरमाह — 'मयाङ्गीकृता तेऽभ्यर्थना । अहमाश्रमाद्बहिरुद्यानदाडिमपादपतले सप्तपदक्रमपरस्ते बृहत्सप्तपदीमुपदेक्ष्यामि' । ततो महात्मानमनु शुकोऽपरे चाश्रमस्थजनाः बहिः प्रययुः । महात्मा गोमयेन एकैकपदक्रमान्तरालविनिर्मित-

---

1. अङ्गुष्ठमूलगतं-ब्राह्मतीर्थम्

भी उसी प्रकार सास-ससुर की सेवा करती हुई, एक वेणी को धारणा करने वाली, धरती पर सोती हुई एक समय भोजन कर के पति के पुनरागमन के लिये देवताओं की आराधना करती हुई सात वर्ष का वियोग सहन कर लूंगी'।

कुछ क्षण विश्राम करके तोता फिर बोला 'इस प्रकार माता और पत्नी का विलाप सुन कर पिता के घर को नमस्कार कर के मैंने अपनी पक्षी की यात्रा प्रारम्भ कर दी। महात्मा जी, सागर और नदियों के तटों पर, पहाड़ों की चोटियों की गुफाओं में, ऊंची-नीची तलहटियों में विजन वनों में, मठों में, करोड़ों लोगों के वन्दनीय तीर्थों में विराजमान सारे आश्रमों को मैंने देखा। भगवां वस्त्र पहने ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी, संन्यासी, पंचाग्नि तपने वाले, बारह वर्ष एक पैर से खड़े होने का व्रत रखने वाले, तीन काल संध्या करने वाले, वेदमंत्रों का सस्वर उच्चारण करने वाले, सारे वेदांगों का ज्ञान रखने वाले, ब्राह्मतीर्थ में समाए पानी मात्र से प्यास बुझाने वाले, मण्डलमहामण्डलेश्वर दया के साथ प्रार्थना किये हुए भी विवाह से भिन्न सप्तपदी मुझे न बता सके। पिछले वर्ष विन्ध्याचल तट में वर्तमान मठ के स्वामी मृगुदास ने मुझे कहा—'तुम छः महीने तक मेरे आश्रम के द्वार पर खड़े आने वालों का मीठी वाणी से स्वागत करते हुए बृहत् सप्तपदी सुनने के अधिकारी बनोगे'। आशा में जकड़े हुए मैंने वैसा ही किया परन्तु महसूल ले कर नदी पार न ले जाने वाले मल्लाह से जैसे उस से ठगा हुआ मैं फिर अपनी यात्रा पर हूं। भगवन, सात साल लगातार शीत-धूप, ओलों का गिरना, वर्षा के साथ तूफान, भूख-प्यास को सहता हुआ मैं अब थक चुका हूं मेरे प्राण भारी हो रहे हैं। मालूम नहीं, मेरे वियोग में विकल मेरी युवती पत्नी माता-पिता की सेवा करने के लिये जीवित है या नहीं। यदि मैं नर शरीर में आ गया तो मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं अपने माता-पिता का आज्ञाकारी पुत्र और अपनी पत्नी का श्रेष्ठ पति बन कर रहूंगा। भगवन्, बृहत् सप्तपदी सुना कर संकट सागर से मेरा उद्धार करो।

तब करुणा भरे मन वाले महात्मा पीयूष पाणि ने घड़ी भर सोच कर तोते को कहा—"मैंने तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार कर ली। मैं आश्रम के बाहर बगीचे के अनार के पेड़ के नीचे सात कदम चलता हुआ तुम्हें बृहत् सप्तपदी का उपदेश दूंगा। तब महात्मा के पीछे तोता और आश्रम के सभी लोग बाहर

सप्तरेखः कीरमाह "अत्र प्रथमरेखायां स्थिरो भव। अहं ते बृहत्सप्तपद्याः प्रथमपदं ब्रवीमि"। शुके प्रथमरेखास्थे महात्मा प्राह—

"अतलं वितलञ्चाथ सुतलञ्च रसातलम्।
तलातलं ततः प्रोक्तं षष्ठञ्चाथ महातलम्॥ 1॥
पातालो निखिलाधस्तात् सप्तमो गणितो बुधैः।
अधोऽधो धरणीञ्चैते लोकाः सप्त प्रकीर्तिताः॥ 2॥
एतद्बृहत्सप्तपद्याः सप्तपदात्मकं प्रथमं पदम्।
अग्रिमपदं श्रोतुं द्वितीयरेखायामायाहि।"

शुके द्वितीयरेखास्थे महात्मा प्राह—

"भूर्लोकस्तुभुवर्लोक स्वर्लोकोऽथतृतीयकः।
महर्लोको जनर्लोक स्तपर्लोकस्ततोऽग्रिमः[1]॥ 1॥
सप्तमः सत्यलोकोऽसौ ब्रह्मलोकोऽपि भाष्यते।
धरामुपरि शोभन्ते सप्तलोकास्तपस्विनाम्॥ ।
सदाचारेण सम्पन्नाः पित्रो सेवापरायणाः।
लोकानेतान् प्रयान्त्येवं शुभकर्मविभूषिताः॥ 3॥
एतत्सप्तपदात्मकं बृहत्सप्तपद्या द्वितीयपदम्।
तृतीयरेखास्थिताय ते तृतीयपदं भणामि।"

कीरे तृतीयरेखागते महात्मा एवमाह—

"क्षीरोदो लवणोदश्च दधिमण्डोदसंज्ञकः।
इक्षुरसोदनामाथ स्वादूदः पञ्चमो मतः॥ 1॥
घृतोदोरससङ्ख्याकः सुरोदः सप्तमो मतः।
भेदाः सप्त समुद्रस्य सुधीभिः परिकीर्तिताः॥ 2॥
एवं यश्च विजानाति भेदान् प्राज्ञः सरित्पतेः।
जलबाधा न बाधन्ते मतिमन्तञ्च तं नरम्॥ 3॥

एतत्सप्तपदात्मकं बृहत्सप्तपद्यास्तृतीयं पदम् सम्प्रति चतुर्थरेखायां चतुर्थपदमाकर्णय"। शुके तत्रागते महात्मा प्राह—

"निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवताः।
पञ्चमश्चेत्यमी सप्त तन्त्रीकण्ठोत्थिताः स्वराः॥ 1॥

---

1. छान्दसप्रयोगः। (तपर्लोकः)

आ गये। महात्मा ने गोबर से एक एक पदक्रम के अन्तर से सात रेखाएं बना कर तोते को कहा—' यहां पहली रेखा पर खड़े हो जाओ मैं तुम्हें बृहत् सप्तपदी का पहला पद बताता हूं। तोते के प्रथम रेखा पर आ जाने पर महात्मा बोला· 'अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, छठा महातल और सबसे नीचे सातवां—पाताल है। धरती के नीचे यह सात लोक वर्तमान हैं। यह सात पदों वाला बृहत्सप्तपदी का पहला पद हैं।

'अब अगला पद सुनने के लिये दूसरी रेखा पर आओ'। तोते के दूसरी रेखा में आ जाने पर महात्मा फिर बोला—''भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनर्लोक, तपर्लोक और सातवां सत्यलोक जिसे बृह्मलोक भी कहते हैं। धरती के ऊपर यह तपस्वियों के सात लोक हैं। सदाचार से युक्त माता-पिता की सेवा करने वाले, अच्छे कर्मों से अलंकृत लोग इन सात लोकों को प्राप्त करते हैं। यह सात पदों वाला बृहत्सप्तपदी का दूसरा पद है।

अब तीसरी रेखा पर आओ मैं तुम्हें तीसरा पद बताता हूं'। तोते के तीसरी रेखा में आ जाने पर महात्मा ने कहा :—

''क्षीरोद, लवणोद, दधिमंडोद, इक्षुरसोद. स्वादूद, घृतोद और सुरोद विद्वानों ने समुद्र के यह सात भेद बताये हैं जो आदमी सागर के इन सात भेदों को जानता है उस बुद्धिमान को कभी जलबाधाएं पीड़ित न करती है। यह सातपद वाला बृहत् सप्तपदी का तीसरा पद है। अब चौथी रेखा पर आओ मैं तुम्हें चौथा पद बताता हूं।'

तोते के ऐसा करने पर महात्मा बोला --'निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम, धैवत और पञ्चम यह तन्त्री कण्ठ से निकलने वाले सात स्वर हैं। संसार में जो विद्वान इन सात स्वरों को जानता है वह संगीत के संसार में सदा मान पाता है। यह सात पदों वाला बृहत् सप्तपदी का चौथा पद है। अब पंचम रेखा पर पांचवां पद सुनाता हूं।' तोते को पंचम रेखा पर देखकर महात्मा बोला : 'काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिगनी और विश्वदासा यह आग की सात जिह्वाएं हैं। इनकी सहायता से ही यह पदार्थों को खाता है; इस रहस्य को जो जानता है उसे आग की बाधाएं पीड़ित न करती हैं। यह सात पद वाला बृहत् सप्तपदी का पांचवां पद है। अब छठी रेखा पर मैं छठा पद बताता हूं'। तोते के वहां आने पर महात्मा बोला :—'अयोध्या, मथुरा, काशी, माया, अवन्तिका, द्वारिका,

एवं यश्चविजानाति स्वरभेदान्सुधीर्भुवि ।
सङ्गीतसंसृतौ तस्य गौरवं वर्धतेऽनिशम् ।। २ ।।

एतत्सप्तपदात्मकं बृहत्सप्तपद्याश्चतुर्थपदम् । अधुना पञ्चमस्थः पञ्चमं शृणु" । शुके पञ्चमरेखास्थेऽसौ प्राह—

"काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता चाथ सुधूम्रवर्णा ।
स्फुलिङ्गनी षष्ठपदस्थितेयं सा विश्वदासा पदसप्तमस्था ।।१।।
वह्नेरिमाः सप्त भवन्ति जिह्वा एतत्सहायः स्वदते पदार्थान् ।
एवं विजानाति च यो रहस्यमाग्नेयबाधा न भवन्ति तस्य ।।२।।

एतत्सप्तपदात्मकं बृहत्सप्तपद्याः पञ्चमं पदम् । षष्ठरेखास्थः षष्ठं शृणु" कीरे तत्रागतेऽसौ प्राह -

"अयोध्या मथुरा काशी माया चावन्तिका शुभा ।
द्वारिकासंयुता काञ्ची पुर्यः सप्त प्रकीर्तिताः ।।१।।
एतासां दर्शनं पुण्यं नरः कुर्यात् पुनः पुनः ।
विमुक्तः सर्वकष्टेभ्यो लभते मोक्षमुत्तमम् ।।२।।

एतत्सप्तपदात्मकं बृहत्सप्तपद्याः षष्ठं पदम् । साम्प्रतं सप्तमरेखास्थोऽन्तिमपदं विजानीहि" । सरिन्मध्ये निमज्जन्, दयालुना रज्जुबलेन तटान्तिकं प्रापितो नरो यथा नयनदीप्तियुतःशुको द्रुतमुत्प्लुत्य सप्तमरेखामारुरोह । ततो महात्मा पीयूषपाणिरभाषत—

"अवीतन्त्रीतरीलक्ष्मी-धीह्रीश्रीणामुणादिषु ।
सप्तस्त्री—लिङ्गशब्दानां सुलोपो नैव विद्यते ।।१।।
जानन्नेवं नरः प्राज्ञो विद्वत्संसदमाश्रितः ।
पाणिनिना समो भूत्वा विजयं लभते ध्रुवम् ।।२।।
एतत्सप्तपदात्मकं बृहत्सप्तपद्याः सप्तमं पदम्" ।

एवं बृहत्सप्तपदीश्रवणसमपलमेवासौ तत्रस्थानां विस्मयाय विहगरूपविमुक्तोऽधिगतमानवाकृतिः पीयूषपाणिमहात्मानं नमस्कृत्य मातृपितृभार्यादिदृक्षुः सदनसरणिमाशिश्राय । सप्तदिवसान्यविरामं[1] प्रचलन्नसौ वाष्पयानधृतपदः नरो निकेतनकक्षकोणविस्मृतसुवर्णाङ्गुलीकस्य यथा शापकाले तातवाचामाध्याने[2]

1. अविरामं—सातत्येन ।
2. आध्याने—स्मृतौ ।

और काञ्ची यह सात पुरियां हैं। जो मनुष्य इनका बार बार दर्शन करता है वह सब कष्टों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करता है। यह सात पद वाला बृहत् सप्तपदी का छठा पद है। अब अन्तिम रेखा पर स्थित होकर सातवें पद को सुनो'। नदी में डूबता हुआ, किसी दयालु के द्वारा रस्सी से खींचकर तट के पास पहुंचाया हुआ मनुष्य जैसे नेत्रों में चमक लिये तोता जल्दी उछल कर सातवीं रेखा पर आ गया। तब महात्मा पीयूषपाणि बोला :—

'अवी, तन्त्री, तरी, लक्ष्मी, धी, ह्री, श्री इन सात स्त्रीलिङ्ग शब्दों के सु का लोप नहीं होता है। जो बुद्धिमान इस बात को जानता है वह पाणिनि के बराबर होकर विद्वानों की सभा में सदा विजय पाता है। यह सात पद वाला बृहत् सप्तपदी का सातवां पद है'।

इस प्रकार बृहत् सप्तपदी के सुनने के साथ ही साथ वह वह वहां खड़े लोगों के विस्मय के लिये पक्षी का रूप छोड़ कर मनुष्य का देह धारण कर पीयूषपाणी महात्मा को नमस्कार कर के माता-पिता और पत्नी को देखने की इच्छा वाला घर के रास्ते पर चल पड़ा। सात दिन लगातार चलता हुआ वह गाड़ी पर पैर रखे मनुष्य को घर के कमरे के कोणे में भूली सोने की अंगूठी की याद आ जाने से जैसे शाप के समय में पिता के वचनों का अकस्मात् ध्यान आने पर व्याकुल हुआ मन में सोचने लगा—'मैं सात वर्ष के बाद घर पहुंच कर क्या मैं अपने विद्वान पिता को देख पाऊंगा? शाप क्षणों में उसने कहा था—'शापान्त में नर शरीर धारण कर माता और पत्नी को देखोगे' पिता की वाणी में 'मुझ को' यह शब्द कैसे लुप्त हो गया। क्या मेरा पिता आज जीवित न है? मैं उसके उपकारों से कैसे उऋण हो पाऊंगा। हे भगवान, मुझे कृतघ्नता के पाप कुंड में मत गिराओ। मुझे बेसहारा मत बनाओ भगवान, मत बनाओ'। इस प्रकार चिन्ता से व्याकुल वह रस्सी से छूटी गौ को पकड़ने के लिये ग्वाला जैसे जल्दी जल्दी दोड़ने लगा।

बुढ़ापे में रखे पैर वाला अधिक क्रोध से जन्मे रक्तचाप के साथ साथ श्वासकास रोग से जकड़ा, क्षीणशक्ति, भूतल पर सोया हुआ, मानों श्रुतवेद को देखने के लिये ही प्राणों को धारण कर रहा जैसे विष्णु शर्मा मन में सोचने लगा—'पता नहीं मेरा प्यारा पुत्र श्रुतवेद शापान्त के लिये बृहत्सप्तपदी सुनने की इच्छा से किस किस के दरवाजे को खटखटा रहा है। सात साल का लम्बा समय बीतने पर भी वह लौटा नहीं। क्या भारत का कोई भी पंडित बृहत्

विकलो मनस्यचिन्तयत्—"अहं सप्ताब्दाननु पितृनिलयात्तः किं मे विद्वज्जनकं निरीक्षिष्ये ? शापक्षणेषु तेनोक्तम्—शापान्ते पुनर् नरकायधरस्त्वं मातरं भार्यञ्च द्रक्ष्यसि । तातवाचि 'मामिति' शब्दः कथं प्रलुप्तः । किं मे पिता नाद्य प्राणवान् ? अहं तदुपकृत्यानृण्यं कथं लप्स्ये । हे भगवन् मा मां निपातय कृतघ्नतापापकुण्डे । मा विधेहि मामम्हायं भगवन, मा विधेहि" । एतच्चिन्ता-विह्वलोऽसौ रज्जुमुक्तधेनुं ग्रहीतुं गोपा यथा द्रुतपदं दधाव ।

वार्धक्यधृतपदः, कोपाधिक्यप्रसूतरक्तचाप नुगश्वासकासरोगालिङ्गितः, क्षीणबलो, भूतलशय्याश्रितः, श्रुतवेदं द्रष्टुमिवासून् धारयन् विष्णुशर्मा मनस्यचिन्तयत् - "न जाने, मे प्रियसुतः श्रुतवेदः शापावसानाय बृहत्सप्तपदी-श्रवणेच्छुकः कस्य कस्य द्वारं खटखटायते । सप्तसमानां दीर्घकालेऽतीतेऽपि नासौ निववृते । किं भारतस्य न कोऽपि पण्डितो बृहत्सप्तपदीं वक्तुं क्षमः । किं संस्कृतिविहीनराज्योदयभीतिग्रस्ता विद्वत्तैव देशात्पलायिता ? मया कुपितेनाशपि मे सुतः । कथं न प्रयासो व्यधायि मया तत्प्रकृतिपारेवतंनस्य । मम परलोकप्रयाणमार्गविरोधायाविरामं प्रवहन्नयनसलिलकणैर् दुस्तरसरितं निर्मिमाणा यथा वृद्धाऽसहाया वसुमती कथं कालं नेष्यात । मम परिचर्यापरा प्रज्ञया विजितहृदया वधूः प्रज्ञावती भर्तृविरहे दिनं दिनं क्षीणाङ्गयष्टिः सञ्जायते । मयेयं सप्तवर्षाण्यनु पतिदर्शनायाऽऽश्वासिता अद्यायं वचोभङ्गो देहावसानक्षणेषु वर्धयते मे मरणवेदनाम्' ।

ततः शुक्रयोन्युमुक्तं प्राङ्गणधृतपदं श्रुतवेदं निरीक्ष्य "श्रुतवेदः समायातः, श्रुतवेदः समायातः" लोकै रेवं कोलाहलोऽकारि । असावपि द्रुतं मरणशय्यागत-पितृचरणस्थितः, प्रज्ञावत्याऽवगुण्ठनकोणेनावलोक्यमानः, मनसि स्वागसां क्षमां याचमानः, मार्गनिस्सृताश्रुमलिनमुखमपरनयनसलिलकणैः क्षालयितुकामो यथा पितरं निर्निमेषनयनोऽपश्यत् ।

विष्णुशर्मा निर्वाणोन्मुखदोपशिखाऽन्तिमप्रकाशं प्रदर्श्य यथा बलादुन्मी-लितनयनः सुतं सतृष्णं समीक्ष्यापगतशुक्रशापतापभारः, पूरितप्रज्ञावतीसमाश्वासन-वचास्तया श्रावितगीतात्मसन्देशो, वसुमत्या साश्रुनयनाभ्यां निरीक्ष्यमाणः, प्रदेशियजनमानसेऽविस्मरणीयस्मृतीः सन्त्यजन्नवरुद्धहृदयस्पन्दनः परलोके प्रमृणाऽद्वैततामाप्तुं नयने न्यमीलयत् ।

***

सप्तपदी न बता सकता है ? क्या संस्कृति से हीन राज्य के उदय होने से डरी विद्वत्ता ही देश से भाग गई ? मैंने गुस्से में अपने पुत्र को शाप दे दिया। उस का स्वभाव बदलने का प्रयास क्यों नहीं किया। मेरे परलोक के रास्ते को रोकने के लिये लगातार बहते हुए नेत्रों के आंसुओं से मानों दुस्तर नदी को बना रही जैसे बूढ़ी बेसहारा वसुमती कैसे समय बिताएगी। मेरी सेवा में लगी बुद्धि से जीते हृदय वाली बहू प्रज्ञावती पति के वियोग में दिन दिन दुर्बल होती जा रही है। मैंने इसे सात वर्ष के बाद पति को देखने का आश्वासन दिया था। आज यह वचनभंग देह के अन्तिम क्षणों में मेरे मरने की पीड़ा को बढ़ा रहा है'।

फिर तोते की योनि से छूटे आंगण में पहुंचे श्रुतवेद को देख कर 'श्रुतवेद आ गया, श्रुतवेद आ गया' इस प्रकार लोगों ने शोर मचाया। वह भी जल्दी मृत्युशय्या पर लेटे पिता के चरणों में खड़ा हुआ, प्रज्ञावती द्वारा घूंघट के कोणे से देखा जा रहा, रास्ते में निकले आंसुओं से मैले मुंह को मानों नेत्रों के दूसरे जलकणों से धोने की इच्छा वाला जैसे, अपने अपराधों की क्षमा मांगता हुआ पिता को बिना पलक झुकाये आंखों से देखने लगा।

विष्णुशर्मा ने बुझने को तैयार दीपशिखा अन्तिम प्रकाश को दिखा कर जैसे नेत्रों को जोर से खोल कर अपने पुत्र को तृष्णा के साथ देख कर शाप के संताप से मुक्त हो कर, प्रज्ञावती के आश्वासन वचन को पूरा कर के उस से सुनाये गीता के आत्मसंदेश को सुनते हुए, वसुमती द्वारा आंसु भरे नेत्रों से से देखे जा रहे, क्षेत्रीय लोगों के मन में न भूलने वाली स्मृतियां छोड़ते हुए, रुकी हुई हृदय की गति वाले ने परलोक में प्रभु से एकाकार होने के लिये नेत्र बन्द कर लिये।

***

प्रणेतुरन्या रचनाः

1. राष्ट्रपथप्रदर्शनम् — अष्टादशाध्यायनिबद्धं मौलिकसंस्कृतकाव्यम् ।
2. तर्जनी — एकादशाध्याययुतं मौलिकसंस्कृतकाव्यम् ।
3. मधुवर्षणम् — सप्तसर्गान्वितं मौलिकसंस्कृतकाव्यम् ।
4. वत्सला — षडङ्कनिबद्धं मौलिकसंस्कृतनाटकम् ।
5. तृणजातकम् — एकाङ्कि मौलिकसंस्कृतनाटकम् ।
6. वियोगवल्लरी — संस्कृतोपन्यासः ।
7. बृहत्सप्तपदी - मौलिककथासाहित्यम् (प्रस्तुतपुस्तकम्)

लघुकृतयः

8. छायाविलासः
9. अनारकली
10. रेलमन्त्री

पाठ्यपुस्तकानि

11. रक्षासंस्कृतव्याकरणम् — (महाविद्यालयस्तरंयावत्)
12. संस्कृतकल्पतरुः — (त्रयोभागाः)

अनुवादसाहित्यम् (पहाड़ीभाषायाम्)

13. स्वप्नवासवदत्तम् — (गद्यस्य गद्ये पद्यस्य पद्येऽनुवादः)
14. विक्रमोर्वशीयम् — (गद्यस्य गद्ये पद्यस्य पद्येऽनुवादः)